गांधी और सावरकर

अवधेश कुमार आर्य

गांधी और सावरकर

eISBN: 978-93-5261-670-1

© लेखकाधीन

प्रकाशक: डायमंड पॉकेट बुक्स (प्रा.) लि.
X-30 ओखला इंडस्ट्रियल एरिया, फेज-II
नई दिल्ली- 110020
फोन : 011-40712100
ई-मेल : ebooks@dpb.in
वेबसाइट : www.diamondbook.in
संस्करण : 2016
Gandhi & Savarkar
By - Rakesh Kumar Arya

भूमिका

गांधी और सावरकर भारतीय स्वातंत्र्य समर के दो ऐसे नायक हैं, जिनका अपना-अपना महत्त्व है। गांधी को जब गोडसे की गोलियों ने सदा-सदा के लिए शांत किया तो मरने से पहले गोडसे ने भी गांधी की देशसेवा को 'नमस्ते' किया था, पर गांधी के देश विरोधीस्वरूप को 'गोली' मार दी थी। गोडसे को इस रूप में देखने से पता चल जाएगा कि गांधी अपनी जगह कितने सही थे?

गांधी भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में सत्य, अहिंसा, प्रेम और बंधुत्व को आधार बनाकर आगे बढ□ना चाहते थे। निश्चित रूप से उनके ये गुण अत्यंत पवित्र थे और कुछ ऐसे थे कि जिन पर अमल करते हुए गांधी को देखकर सारे विश्व को ही गौरव होना चाहिए था। जहां तक भारत की बात है, तो भारत में तो युद्ध में भी शिक्षाप्रद नैतिक नियमों को आधार बनाकर दोनों पक्ष नैतिक युद्ध लड□ते रहने के आदिकाल से पक्षधर और अनुयायी रहे हैं। जब महाभारत का युद्ध प्रारम्भ होने जा रहा था तो उस समय भी दोनों पक्षों ने मिल बैठकर नियम बनाए थे। उनमें ये नियम भी सम्मिलित थे कि यदि कोई व्यक्ति निहत्था है तो उस पर प्राणघातक हमला नहीं किया जाएगा, हथियारों की आपूर्ति करने वाले लोगों (जो कौरवों के लिए पांडव पक्ष से निकलते हुए और पांडवों के लिए कौरव पक्ष से निकलते हुए हथियार ले जाते थे) को नहीं मारा जाएगा।

महाभारत में दुर्योधन जैसा व्यक्ति भी कितना नैतिक और धर्मी था, इस बात का पता तब चलता है, जब हम देखते हैं कि उसने भी इन नियमों का पालन किया था। एक अभिमन्यु के लिए नियम तोड□ा गया तो उसे अधर्म माना गया। उस नियम के टूटते ही यह सिद्ध हो गया था कि अब धर्म पूर्णत: पांडवों के साथ हो गया है, जिससे अब जीत भी उन्हीं की होगी।

जब गांधी जी भारत के स्वतंत्रता संग्राम में कांग्रेस का मार्गदर्शन कर रहे थे तो उस समय की परिस्थितियों में युद्ध में नैतिकता के प्रदर्शन का समय लद चुका था। उस समय का 'दुर्योधन' ऐसा था, जो युद्ध में नियम या नैतिकता को वर्जित मानता था। उस समय का दुर्योधन 'प्यार में और वार में, सब कुछ जायज' मानता था। दुर्योधान को घेर कर मारने के लिए पांडवों ने भी 'शठे शाठयम समाचरेत' वाली नीति अपनायी, अर्थात युद्ध में नैतिक नियमों को मानने की अपनी परंपरागत शैली या मान्यता में परिवर्तन का।

ऐसा ही परिवर्तन स्वतंत्रता आंदोलन में भी देखने को मिला और हमारे सभी क्रांतिकारी योद्धा सशस्त्र क्रांति में विश्वास रखकर अंग्रेजों को देश से बाहर निकालने का संघर्ष कर रहे थे। गांधी तब भी हमारे सशस्त्र क्रांतिकारी योद्धाओं को युद्ध में नैतिक नियमों का पुजारी बनने की शिक्षा दे रहे थे। यहाँ तक की अंग्रेज यदि हमारे अभिमन्यु को (चंद्रशेखर आजाद आदि क्रांतिकारियों को) घेर कर भी मार रहे थे तो भी गांधी की नैतिकता इतनी लाचार हो गयी थी कि वह तब भी अभिमन्यु को दोषी और उसे मारने वालों को निर्दोष घोषित कर रही थी। इसी बात से सावरकर जैसे लोग गांधी से असहमत थे। वह गांधी की युद्ध में नैतिक नियमों की

बात को तो स्वीकार करते थे, परंतु उसके लिए उनकी शर्त यही थी कि विरोधी पक्ष भी इस बात से सहमत होना चाहिए कि वह भी युद्ध में नैतिक नियमों का पक्षधर रहे। उनका तर्क था कि शत्रु के पास जैसा हथियार हो, उसे वैसे ही हथियार से घेरना चाहिए। भारत की यह भी परंपरा रही है कि भाला वाला, भाले वाले से और धनुष वाला, धनुष वाले से लड□ता आया है। इसलिए अंग्रेजों के साथ युद्ध में या तो हमें उनकी तरह सशस्त्र होना चाहिए था या फिर उन्हें अपनी तरह नि:शस्त्र करना चाहिए। गांधी का मानना था कि अंग्रेज चाहे जो करें पर हम नि:शस्त्र ही रहेंगे। यह तर्क भारतीय युद्ध परंपरा और भारतीय संस्कृति के भी विपरीत था। गांधी का 'कृष्ण' वह स्वयं थे, इसलिए उनका 'कृष्ण' उनके विरुद्ध बोल नहीं पा रहा था। जबकि हमारे क्रांतिकारियों का कृष्ण उन्हें सशस्त्र अंग्रेजों के विरुद्ध सशस्त्र क्रांति करने का आह्वान कर रहा था। गांधी और सावरकर के चिंतन और युद्ध संबंधी उनकी धारणा में यही मौलिक अंतर था। इसी मौलिक अंतर ने उन्हें ऐसी दो नदियां बना दी, जो विपरीत दिशा में बहती रहीं।

गांधी अपने जिन मूल्यों को लेकर आगे बढ□, उनसे न तो देश को आजादी मिली और न मिलनी थी। बर्मा जैसे कई देश ऐसे रहे हैं, जहां से अंग्रेजों को बिना स्थानीय लोगों के संघर्ष के ही निकलना और उन्हें स्वतंत्र करना पड□ा था। तब गांधी की अहिंसा को कैसे इस देश कि आजादी को दिलाने के लिए एकमात्र कारण के रूप में स्थापित किया जा सकता है? गांधी की अहिंसा को इस देश की स्वतंत्रता के लिए एकमात्र कारण मानने से एक और बड□ी समस्या यह आती है कि इससे हमारे देश के क्रांतिकारियों का सदियों का वह संघर्ष मूल्यहीन और कांतिहीन हो जाता है, जिसे वह तुर्कों, मुगलों व अंग्रेजों से करते आ रहे थे और जिसके लिए उन्होंने अनेकों बलिदान दिये थे। गांधी के समकालीन उन बलिदानों की परंपरा के क्रांतिकारी भगत सिंह, चंद्रशेखर आजाद, बिस्मिल, अशफाक उल्ला खान, नेताजी सुभाष चंद्र बोस जैसे अनेक योद्धा थे। गांधी जी इन क्रांतिकारियों से घृणा करते थे और जब वे ऐसा करते थे तो मानो वे भारत के सदियों के बलिदानी परम्परा से ही घृणा करते थे। इसलिए उनके लिए 'अकबर महान' था और महाराणा 'गद्दार' थे।

गांधी की इस सोच के विपरीत सावरकर इतिहास के विद्वान थे, उन्होंने भारतीय इतिहास की पुनर्व्याख्या की और उनका क्रांतिकारी, बलिदानी और गौरवमयी पक्ष अपने लोगों के सामने कुछ इस प्रकार प्रस्तुत किया कि उसे पढ□कर लोगों के दिल मचल उठे और बाजुएँ फड□क उठीं। उन्होंने गांधी के शिष्य नेहरू की भारतीय इतिहास की निराशाजनक व्याख्या में कभी भी रुचि नहीं ली। सावरकर ने इतिहास कि अपनी व्याख्या के अनुसार देश में सशस्त्र सेनाओं की उपस्थिति को आवश्यक माना और उनके लिए परमाणु बम रखने को भी उचित माना। इसके विपरीत गांधी और नेहरू की छत्रछाया में जिस नि:शस्त्र भारत ने आगे बढ□ना आरंभ किया, उसने ऐसी निराशाजनक परिस्थितियां उत्पन्न की कि 1947 के पाक अधिकृत कश्मीर से लेकर 1962 में चीन द्वारा कब्जायी गयी भारत भूमि तक के कई अपमानजनक क्षणों को अपनी आँखों से देखा। नि:शस्त्र भारत को संसार के सामने अपमान का घूंट पीना पड□ा। यह गांधी की अहिंसा की हार थी। कथित रूप से उनकी अहिंसा से मिली आजादी की हम रक्षा नहीं कर पाये। हमें तभी बुद्धि आ जानी चाहिए थी कि आजादी न तो अहिंसा से प्राप्त हो सकती है और न ही अहिंसा से इसकी रक्षा हो सकती है। स्वतंत्रता की देवी लाल रक्त का

सिंदूर लगाकर अपना खप्पर भरती है और इसी से वह अपनी रक्षा कर पाती है। इस व्यावहारिक पक्ष पर सावरकर स्पष्ट थे। उन्होंने 1947 में ही भारत को परमाणु शक्ति सम्पन्न देश बनाने की वकालत की। वह कहा करते थे कि भारत को परमाणु शक्ति सम्पन्न देश बनकर 'युद्ध' की बात करनी चाहिए और बुद्ध को अर्थात अहिंसावादी नीति को त्याग देना चाहिए। यदि सावरकर की इस नीति को अपनाकर भारत का तत्कालीन नेतृत्व आगे बढ□ता तो 1962 में चीन और 1965 व 1971 में पाकिस्तान भारत को युद्ध की चुनौती ही न दे पाते।

दुर्भाग्यवश गांधी के शिष्य नेहरू ने सावरकर की बात नहीं मानी और गांधीवाद के काल्पनिक आदर्शवाद के आलोक में आगे बढ□ते गए। इस गांधीवाद ने हमें जमकर धोया और हमें खून के आँसू रोने के लिए विवश कर दिया।

गांधी पर लोगों ने उनके महिलाओं से सम्बन्धों को लेकर भी गंभीर आरोप लगाए हैं, जबकि सावरकर पर कोई ऐसा आरोप नहीं लगाया गया। यद्यपि इस पुस्तक में इस विषय पर कोई आलेख नहीं है, परंतु जब गांधी और सावरकर के तुलनात्मक अध्ययन की बात हो तो दोनों नायकों को हर दृष्टिकोण से देखना और परीक्षण की कसौटी पर कसना आवश्यक है।

गांधी कभी इस देश की महान ऐतिहासिक विरासत और सांस्कृतिक धरोहर को सुंदर ढंग से सहेजकर रखते हुए उसे हिंदू इतिहास और हिंदू संस्कृति या आर्य संस्कृति का नाम नहीं दे पाये। उन्हें डर लगा रहा कि इससे दूसरे संप्रदाय के लोग बिगड□ जाएंगे। इस डर ने उन्हें अपने आप को ही 'गौरवमय' सिद्ध करने से रोका। फलस्वरूप उनके कारण देश में इतिहास को साझा इतिहास और देश की संस्कृति को साझा संस्कृति के रूप में पढ□ने का प्रचलन बढ□ा, जिससे हिंदू इतिहास और वैदिक संस्कृति को भूलकर तुर्कों व मुगलों के काल का महिमामंडन आरंभ हो गया। कुछ उत्साही और देशद्रोही इतिहास लेखकों ने अति उत्साह का परिचय दिया। उन्होंने इतिहास से हिंदू नायकों को निकाल कर बाहर करने की धृष्टता भी कर डाली। इसके विपरीत सावरकर देश की नब्ज को जानकर उसके गौरवमयी अतीत को वर्तमान पीढ□ी के लिए प्रकाश स्तम्भ बनाकर उस पर उज्ज्वल भविष्य की बुलंद इमारत बनाने के पक्षधर थे। सचमुच उनका दृष्टिकोण व्यावहारिक और अधिक देशभक्तिपूर्ण था।

अधिकांश बातों पर गांधीजी या तो अस्पष्ट थे या फिर एक बार कुछ कहकर 'यू-टर्न' लेते नजर आते थे। जैसे श्रीराम को वह काल्पनिक मानते थे, वह जीवन भर अपने इतिहास नायकों को समझ नहीं पाये और इसी प्रकार पाकिस्तान को लेकर वह पहले कहते रहे कि पाकिस्तान मेरी लाश पर बनेगा, परंतु बाद में अपने कहे से पीछे हट गए। ऐसे अनेकों उदाहरण हैं, जब उन्होंने अपनी कही हुई बातों से 'यू-टर्न' लिया।

गांधी बहुत ही जिद्दी थे, वह अपने सत्याग्रहों को कई बार देश और धर्म के खिलाफ जाकर कांग्रेस से या देश से अपनी जिद को पूरा करने के लिए प्रयोग करते थे। जबकि सावरकर अपने आप में दृढ□निश्चयी थे। वह संकल्प के धनी थे, एक बार संकल्प ले किया तो ले लिया, फिर पीछे हटने का नाम नहीं था। वह अपने संकल्पों को अपना जीवनव्रत समझकर जीते थे, जबकि गांधी जी अपने जिदभरे 'संकल्पों' को दूसरों को अपने सामने झुकाने के लिए जीते थे। उन्होंने पाकिस्तान को 55 करोड□ रुपया दिलाने की जिद करते हुए भारत

सरकार को अपने सामने झुकाने में सफलता प्राप्त कर ली, परंतु उनका यह कृत्य किसी भी देशभक्त को अच्छा नहीं लगा था।

प्रस्तुत पुस्तक में 'गांधी और सावरकर' के व्यक्तित्व और कृतित्व का तुलनात्मक अध्ययन करते हुए ऐसे ही अनेकों तथ्यों को उकेरने का सफल प्रयास किया गया है। जिन्हें आज की युवा पीढ□ी को समझने की आवश्यकता है।

मैंने पुस्तक का आद्योपांत अध्ययन किया है। लेखक का प्रयास प्रशंसनीय है। श्री राकेश आर्य ने अपने लेखन से एक प्रकार की वैचारिक क्रांति का सूत्रपात किया गया है। मैं चाहता हूँ कि उनका यह अभियान और तेज चले और आगे बढ□कर एक आँधी का रूप ले ले, जिससे भारतीय संस्कृति और धर्म के विषय में व्याप्त गंदगी भरे परिवेश को समाप्त किया जा सके और हमारे इतिहास नायकों के साथ किए गए अन्याय का पर्दाफाश हो सके। मेरा शुभाशीर्वाद सदा लेखक के साथ है। कल्याणमस्तु।

24 अक्टूबर, 2016

—आचार्य सत्यप्रकाश
(धर्माचार्य प्रमुख 'उगता भारत प्रकाशन विभाग')

लेखकीय निवेदन

देश को स्वतंत्रता मिली तो स्वतंत्र भारत के नायकों ने देश की स्वाधीनता के क्रांतिकारी आंदोलन और उसके नायकों की जानबूझकर उपेक्षा करते हुए उन्हें इतिहास में उचित स्थान नहीं दिया। यह बड□ा अजीब बात है कि देश के जिन धर्मनिरपेक्ष नेताओं के हाथ में देश का नेतृत्व आया, वे विभिन्न पंथों में तो पारस्परिक समन्वय बनाने के लिए यह तर्क देते नहीं थकते कि सब पंथ एक जैसे ही हैं, और भगवान तक पहुंचने के विभिन्न मार्ग हैं इन्हीं लोगों ने भारत की आजादी की क्रांतिकारी विचारधारा के नायकों को यह मानकर भी सम्मान नहीं दिया कि अंतत: उन लोगों का उद्देश्य भी तो भारत को स्वतंत्र कराना ही था। लोकतंत्र में आपके मतभेद हो सकते हैं, यह तो माना जा सकता है-पर आपकी प्रतिभा का गला घोटें या आपकी प्रतिभा का उचित सम्मान भी न करें, या आपके पुरुषार्थ को इतिहास में उचित स्थान न दे, या इतिहास की लेखनी को भी हथकड□ी-बेड□ी लगाकर कैद में डाल दे - यह तो लोकतंत्र में नहीं हो सकता।

दुर्भाग्य की बात है कि भारत के लोकतंत्र में ऐसा हुआ है। इस लोकतंत्र ने गांधी, नेहरू और उनकी कांग्रेस का चारण बनना स्वीकार कर लिया और अपनी आत्मा को बेचकर हमारे क्रांतिकारियों को कूड□दान में फेंक दिया। इस प्रकार की अशोभनीय और अलोकतांत्रिक प्रक्रिया का शिकार होने वालों में वीर सावरकर प्रमुख नेता हैं। जिस व्यक्ति ने अपना सारा जीवन भारत के क्रांतिकारी आंदोलन की विचारधारा को समर्पित किया और भारत के इतिहास, धर्म और संस्कृति के लिए आजीवन संघर्षरत रहा।

लोकतंत्र में विचारों की स्वतंत्रता इसलिए दी जाती है कि कोई एक दल या एक व्यक्ति अपनी मनमानी न कर सके दूसरे यह भी कि एक व्यक्ति या एक दल हो सकता है किसी बिन्दु पर अपनी मनमानी करके राष्ट्र का अनजाने में अहित कर जाए, तब उसके लिए आवश्यक है कि वह दूसरे पक्ष अर्थात विपक्ष के विचार भी जान ले, यदि राष्ट्रहित में विपक्ष के विचार उचित हैं तो उन्हें मान भी ले। लोकतंत्र की पवित्र भावना यही है और भाषण व अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का वास्तविक उद्देश्य भी यही है।

देश का दुर्भाग्य रहा कि हमारे लोकतांत्रिक नेताओं ने विपक्ष की किसी बात को मानने से इनकार कर दिया। यदि संसद में प्रधानमंत्री का बहुमत है तो उसने एक राष्ट्र नायक की भांति नहीं, अपितु अधिनायक की भांति आचरण करना आरंभ कर दिया। इस अधिनायकवाद के सावरकर जैसे लोगों ने ब्रिटिशकाल में भी विरोध किया था। जब उन्हें यह स्वतंत्र भारत में भी खड□ा दिखाई दिया तो उन्होंने समझ लिया कि लड□ाई अभी समाप्त नहीं हुई है, अपितु एक अधिनायकवाद के स्थान पर दूसरा अधिनायकवाद आ गया है, जिसे देशी लोकतांत्रिक अधिनायकवाद कहा जा सकता है।

इस देशी लोकतांत्रिक अधिनायकवाद के जनक नि:संदेह गांधीजी थे। बात उल्टी सी लग सकती है, पर सच यही है कि गांधीजी अपने आप में बहुत ही हठी, जिद्दी और स्वेच्छाचारी थे।

वे जितनी बार भी अनशन पर बैठे, उतनी ही बार अपनी किसी बेतुकी मांग को पूरा कराके ही उठे। उनकी ऐसी अंतिम जिद उनके जनवरी 1948 में किये गये उस अनशन से पूरी की गयी थी-जिसमें उन्होंने पाकिस्तान को 55 करोड□ रुपया दिलाया था। गांधीजी को अपनी जिदों को मनवा-मनवाकर नायक से अधिनायक बनते हुए नेहरू जी ने बड□ी निकटता से देखा था। इसलिए उन्होंने अपने 'अधिनायक' का अनुकरण किया और वह भी 'लोकनायक' न बनकर 'अधिनायक' बन गये। 'जनगणमन से अधिनायक जय हे'... बुलवाते रहे और अपने आप में मगन होते रहे।

इस पुस्तक में उन बिंदुओं पर प्रकाश डाला गया है कि जिन पर गांधी जी से सावरकर जी कहीं अधिक स्पष्ट थे, या जिन्हें सावरकर ने गांधीजी की अपेक्षा कहीं अधिक गंभीरता व स्पष्टता से उठाया था। इसके उपरांत भी नेहरूकाल से ही कांग्रेस ने वीर सावरकर के साथ अन्याय करना आरंभ किया और उन्हें वह सम्मान नहीं दिया, जो उन्हें मिलना चाहिए था। यद्यपि शास्त्रीजी ने देश का प्रधानमंत्री बनने पर सावरकर को मानधन देना आरंभ किया और श्रीमती गांधी ने भी सावरकर के देहावसान के समय उनके प्रति विशेष सम्मान प्रदर्शित किया, पर तब तक बहुत देर हो चुकी थी। बस संतोष इसी बात का है कि हम इस देश की जनता ने अपने नायकों से अलग हटकर सावरकर जी को सदा ही एक लोकनायक माना।

पुस्तक के प्रकाशन में, मैं ईश अनुकंपा और अपने बड□ों के आशीर्वाद, इष्ट मित्र, बंधु-बांधवों एवं 'उगता भारत' के अपने सभी सहयोगियों सहित प्रकाशक श्री नरेन्द्र वर्माजी का हार्दिक आभार व्यक्त करता हूं, जिन्होंने यह पुस्तक छापना स्वीकार किया और आपके हाथों तक इसे पहुंचाने में अपना प्रेरणादायी मार्गदर्शन दिया। अपने पाठकों के प्रति भी अति सम्मानभाव प्रकट करता हूं, जिनका प्रेरणादायी प्रोत्साहन सदा मेरे साथ रहता है।

पुस्तक के सभी लेख पूर्व में 'उगता भारत' समाचार पत्र में प्रकाशित होते रहे हैं, जिन पर पाठकों ने बड□ी सकारात्मक प्रतिक्रिया और प्रोत्साहन प्रदान किया था। मैंने यह पुस्तक किसी पूर्वाग्रह से ग्रस्त होकर या किसी व्यक्ति विशेष की भावनाओं को चोट पहुंचाने के दृष्टिकोण से नहीं लिखी गयी है, अपितु सत्य को अपने पाठकों और देशवासियों के समक्ष लाने के उद्देश्य से ही लिखी है। आशा है कि मेरे प्रयास को आप सभी सकारात्मक दृष्टिकोण से लेंगे।

– राकेश कुमार आर्य

आर्य बन्धु एसोसिएट्स,
तहसील कंपाउंड दादरी,
ग्रेटर नोएडा-203207
संपर्क: 9911169917

विषय सूची

1. 'बुद्ध नहीं युद्ध' के उद्घोषक : सावरकर
2. सावरकर ने नेहरू पर जीत दर्ज की
3. नेहरू के कारण चीन से हारे
4. सावरकर के वारिस बने नरेन्द्र मोदी
5. सावरकर को साम्प्रदायिक कहना अज्ञानता
6. हिंदू संगठन - गांधीजी, स्वामी श्रद्धानंद और सावरकर
7. सावरकर का हिन्दी प्रेम
8. राजधर्म बनाम रामराज्य
9. गांधी का राष्ट्रघाती 'हिंदुस्तानी' प्रेम
10. गांधी और भारतीय स्वतंत्रता
11. गंगा-जमुनी संस्कृति
12. क्रांतिकारियों के विरोधी थे गांधी
13. सुभाषचंद्र के मार्गदर्शक सावरकर
14. हिंदी, हिंदू, हिंदुस्तान के उद्घोषक
15. शास्त्री ने दिया सावरकर को मानधन
16. सावरकर, नेहरू और उनका इतिहास
17. क्रांति पर गांधी और सावरकर का चिंतन
18. भगत सिंह की फांसी और गांधी
19. हिंदुत्व और हिंदुस्तान की कहानी
20. गांधी और सावरकर की कार्य शैली
21. गांधी से चार गुणा अधिक जेल में रहे सावरकर
22. 1857 की क्रांति पर सावरकर का चिंतन
23. देशजागरण ही स्वधर्म : सावरकर
24. हिंदी के अनन्य भक्त
25. हिंदूनिष्ठ राजनीति : गांधी और सावरकर
26. हिंदुत्व के प्रति निष्ठा
27. ग्रामीण भारत, गांधी और सावरकर

28. स्वदेशी चिंतन
29. संविधान की ये धाराएं किसकी देन हैं?
30. राष्ट्रविरोधियों के खिलाफ चिंतन

'बुद्ध नहीं युद्ध' के उद्घोषक : सावरकर

बात 10 मई, 1957 की है। सारा देश 1857 की क्रांति की शताब्दी मना रहा था। दिल्ली में रामलीला मैदान में तब एक भव्य कार्यक्रम हुआ था। हिंदू महासभा के नेता वीर सावरकर यद्यपि उस समय कुछ अस्वस्थ थे, परंतु उसके उपरांत भी वह इस ऐतिहासिक समारोह में उपस्थित हुए थे। वह देश के पहले व्यक्ति थे, जिन्होंने 1857 के संघर्ष को गदर या विद्रोह न कहकर 'भारतीयों का प्रथम स्वतंत्रता समर' कहा था। इसलिए उस समय दिल्ली के लोगों ने उनका अभूतपूर्व स्वागत किया था।

रामलीला मैदान में उन्होंने लोगों को संबोधित करते हुए कहा था-'हमारे सम्मुख दो आदर्श हैं। एक आदर्श है बुद्ध का, दूसरा है युद्ध का। हमें दोनों में से एक को अपनाना होगा। यह हमारी दूरदर्शिता पर निर्भर है कि हम बुद्ध की आत्मघाती नीति को अपनायें या युद्ध की विजयप्रदायिनी वीर नीति को।'

1957 तक हमारे तत्कालीन नेतृत्व के चीन के साथ संबंधों की परछाईं दिखने लगी थी और क्रांतिवीर सावरकर को स्पष्ट होने लगा था कि चीन के इरादे नेक नहीं हैं। उसके प्रति हमारी सरकार और हमारे नेता नेहरू जिस नीति का अनुकरण कर रहे हैं, वह विस्तारवादी और साम्राज्यवादी चीन के साथ भारत के राष्ट्रीय हितों के दृष्टिगत उचित नहीं कही जा सकती। इसलिए 1947 में जब स्वतंत्रता मिल चुकी थी तो भी 1957 में सावरकर बुद्ध (छदम अहिंसावाद, जिससे राष्ट्र का अहित होता है) और युद्ध (अपने राष्ट्रीय हितों के लिए मजबूती से उठ खड□ होने) में से किसी एक को चुनने की बात कह रहे थे।

11 मई, 1957 को वीर सावरकर ने दिल्ली में हिंदू महासभा के कार्यकर्ताओं को संबोधित करते हुए कहा था-'आप लोग धन्यवाद के पात्र हैं कि आज की विषम और विपरीत परिस्थितियों में भी हिंदू ध्वज के नीचे डटे खड□ हैं। गत 20 वर्षों में जिन्होंने मुझको नेता मानकर अपमान और दरिद्रता को सहकर भी हिंदू समाज को बलवान बनाने के हेतु कष्ट उठाये, उन्हें मैं कुछ नहीं दे सका। अपना सब कुछ बलिदान करके भी आप मेरे साथ हैं। आपकी दृढ□ता, अडिगता और सिद्धांत निष्ठा देखकर मैं प्रसन्न हूं। इस हिंदू ध्वज को कंधों पर रखकर आगे बढि□ये। मैं जानता हूं कि यह संघर्ष आसान नहीं है, लेकिन मैं पूर्ण आशावादी हूं, निराशावादी नहीं। आप लोग पूर्ण आशा और विश्वास के साथ आगे बढि□येगा। अंतिम विजय हमारी है।'

आज जब देश को तोड□ने के लिए तथा देश में साम्प्रदायिक विष फैलाकर हिंदुत्व के विनाश की योजनाएं बनाकर 'लव जेहाद' या आतंकवाद फैलाकर देश को संकटों में डाला जा रहा है, तब स्वातंत्र्य वीर सावरकर का उपरोक्त उद्बोधन आज भी उतना ही प्रासंगिक है, जितना उस समय था।

सावरकर देश की सुरक्षा के लिए 'राजनीति का हिंदूकरण और हिंदुओं का सैनिकीकरण' करने के पक्ष में थे, इसके लिए उन्होंने संघर्ष किया। अपने ढंग से तत्कालीन नेतृत्व को भी सजग किया कि बुद्ध के मार्ग को छोड□कर आंखें खोलते हुए सामने खड□ सच को देखो

और देश के सैनिकीकरण की योजना पर काम करो। गोआ को पुर्तगालियों के नियंत्रण से मुक्त कराने का उद्घोष सबसे पहले वीर सावरकर ने ही किया था। 1955 में मेरठ से सत्याग्रहियों का एक जत्था गोआ जाते समय मार्ग में बंबई / ककर वीर सावरकर से आशीर्वाद लेने पहुंचा, तो उन्होंने जत्थे के उपनेता और दैनिक प्रभात (मेरठ) के यशस्वी संपादक श्री वि.सं. विनोद से कहा था- 'आप क्रांति भूमि मेरठ से इतनी दूर गोआ को मुक्त कराने की अभिलाषा से गोलियां खाने, बलिदान देने आये हो, यह आप लोगों की देशभक्ति का परिचायक है, किंतु सशस्त्र पुर्तगाली दानवों के सम्मुख आप नि:शस्त्र, खाली हाथ, मरने को जाओ, यह नीति न मैंने कभी ठीक समझी, न अब ठीक समझता हूं। जब आप लोगों के हृदय में बलिदान देने की भावना है, तो आप लोग हाथों में राइफलें लेकर क्यों नहीं जाते? शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित होकर जाओ और शत्रु को मारकर मर जाओ।' तब उन्होंने कुछ देर रुककर पुन: जो कुछ कहा था, वह बहुत ही महत्त्वपूर्ण बात है। उन्होंने कहा-'गोआ की मुक्ति का काम तो सरकार को सेना को सौंप देना चाहिए। सशस्त्र सैन्य कार्यवाही से ही गोआ मुक्त होगा। सत्याग्रह के स्थान पर शस्त्राग्रह से ही सफलता मिलेगी।'

1961 में जब सरकार द्वारा गोआ में सैन्य कार्यवाही करके ही उसे मुक्त कराया जा सका, तब वीर सावरकर की 1955 की भविष्यवाणी स्वत: सत्य सिद्ध हो गयी। 1962 ई. में चीन के हाथों देश के नेतृत्व की गलतियों के कारण देश को भारी अपमान झेलना पड□ा और चीन हमारा बड□ा भूभाग भी छीनकर ले गया। वीर सावरकर को यह सब देखकर असीम पीड□ा हुई थी। अपने वीर सावरकर सदन (बंबई) की एक कोठरी में पड□ इस स्वातंत्र्य वीर सावरकर को उस समय असीम वेदना ने घेर लिया था। उन्होंने बड□ ही पीड□ादायक शब्दों में अपनी वेदना को यूं प्रकट किया था-'काश अहिंसा, पंचशील और विश्वशांति के भ्रम में फंसे ये शासनाधिकारी मेरे सुझाव को मानकर सबसे पहले राष्ट्र का सैनिकीकरण कर देते तो आज हमारी वीर व पराक्रमी सेना चीनियों को पीकिंग तक खदेड□ कर उनका मद चूर-चूर कर डालती, किंतु अहिंसा और विश्वशांति की काल्पनिक उड□ान भरने वाले ये महापुरुष (नेहरू की ओर संकेत है) न जाने कब तक देश के सम्मान को अहिंसा की कसौटी पर कसकर परीक्षण करते रहेंगे?'

ये नेहरू ही थे, जो अपनी भूलों पर पछताये और उन्हें चीन के हाथों मिली पराजय से इतना आघात लगा कि वे पक्षाघात से पीडि□त हो गये। 1962 के पश्चात उनका स्वास्थ्य गिरता गया और उनके अंतिम दिनों में एक अवसर ऐसा भी आया कि जब 'आराम हराम' है, का उद्घोष करने वाले नेहरू केवल आराम कर रहे थे, और उस काल में देश का कोई नेता नहीं था। वह काम करने की स्थिति में नहीं थे और कांग्रेस उनके जीते जी उनके स्थान पर नेता चुनने की स्थिति में नहीं थी। यदि नेहरू, सावरकर की चेतावनी को समझ लेते तो उन्हें इन दुर्दिनों से न गुजरना पड□ता जिनके कारण उनका स्वयं का व देश का स्वास्थ्य खराब हुआ। सचमुच सनक व्यक्ति के लिए आत्मघाती सिद्ध होती है। हर सिद्धांत की अपनी सीमायें हैं, जिनका अतिक्रमण नहीं होना चाहिए।

कांग्रेस के नेतृत्व की इन भूलों पर सावरकर बहुत खिन्न थे। वह ये नहीं समझ पा रहे थे कि जब चीन जैसे देश अणुबम बनाने की बात कर रहे हैं, तो उस समय भारत 'अणुबम नहीं बनाएंगे' की रट क्यों लगा रहा है? क्या इस विशाल देश को अपनी सुरक्षा की कोई

आवश्यकता नहीं है? वह नहीं चाहते थे कि इतने बड□ देश की सीमाओं को और इसके महान नागरिकों को रामभरोसे छोड□कर चला जाए। इसलिए उन्होंने ऐसे नेताओं को और उनकी नीतियों को लताड□ा, जो देश के भविष्य की चिंता छोड□ ख्याली पुलाव पका रहे थे। उन्होंने कहा था-'भारत के शासनाधिकारियों को यह अच्छी प्रकार समझ लेना चाहिए कि आज के युग में 'जिसकी सेना शक्ति उसका राज सुरक्षित' है का सिद्धांत ही व्यावहारिक है। यदि हमारे शत्रु चीन के पास अणुबम है, हाइड्रोजन बम है, तो हमें उसके मुकाबले के लिए उससे भी अधिक शक्तिशाली बमों के निर्माण के लिए प्रयत्नशील रहना चाहिए। 'हम अणुबम कदापि न बनायेंगे' की घोषणा मूर्खता और कायरता का ही परिचायक है।'

कांग्रेसी सरकार और कांग्रेसी नेता की आंखें खुलीं और उसने कुछ महत्त्वपूर्ण निर्णय लिये। देश के कम्युनिस्ट रक्षामंत्री कृष्णामेनन को उनके पद से हटाया गया और महाराष्ट्र के नेता यशवन्तराव चह्वाण को देश का नया रक्षामंत्री बनाया गया। तब सावरकर जी ने उन्हें बधाई संदेश भेजा और कहा-'आप वीर भूमि महाराष्ट्र से हैं। अत: मुझे विश्वास है कि आपके दृढ□ नेतृत्व में हमारा रक्षा विभाग अविलंब शक्तिशाली व दृढ□ नीति अपनाकर राष्ट्र की स्वाधीनता की रक्षा में पूर्ण समर्थ होगा।'

सरकार ने अब सेना बढ□ाने की भी घोषणा की और सैन्य सामग्री बनाने के कारखाने भी स्थापित करने आरंभ किये। तब वीर सावरकर ने देश में कम-से- कम 25 लाख सैनिकों की नियमित सेना बनाने और उसे आधुनिकतम शस्त्रास्त्रों से लैस करने की बात कही थी।

जब 1965 में पाकिस्तान ने भारत पर आक्रमण किया तो भारत की बढ□त लेती सेना को देखकर वह बहुत प्रसन्न थे। वह उस समय शय्या पर थे। उनके कमरे की दीवार पर भारत का मानचित्र लटका हुआ था। तब उस पर अंगुली रखकर कहने लगे-'इस जगह शत्रु हमारे जाल में घिर जाएगा। तनिक तेजी से यदि हमारी विजयवाहिनी सेना बढ□ी और बस एक बार लाहौर हाथ में आ गया, तो फिर रावलपिंडी क्या काबुल तक हम मंजिल पा सकते हैं।' अखण्ड भारत का सपना बुनने वाले वीर सावरकर को अपनी विजयवाहिनी सेना के बढ□ते कदमों को देखकर लगा था कि अब उनके अखण्ड भारत का सपना साकार होने ही वाला है। इसलिए उन्होंने घोषणा कर दी थी कि मेरी अंत्येष्टि सिन्धु नदी के तट पर हो, पर जब ताशकंद समझौते के समय रणक्षेत्र में मिली विजय को मंच पराजय में बदल दिया गया तो- वीर सावरकर की वंदना फिर फूट पड□ी-'हजारों वीर सैनिकों ने अपना बलिदान देकर जो विजयश्री प्राप्त की, उसे ये गांधीवादी नेता गंवा देंगे। अब इनसे किंचित भी आशा करना व्यर्थ है।'

आर्य समाज अपने राष्ट्रवादी चिंतन के लिए प्रसिद्ध रहा है। आज की विषम परिस्थितियों में स्वामी श्रद्धानंद के 'हिंदू संगठन' के सपने को साकार करने के लिए इस संगठन को राष्ट्रनिर्माण के लिए हिंदू महासभा का साथ देना चाहिए। चुनौतियां आज भी हैं और कल भी रहेंगी। मोदी सावरकर के सपने की एक आशा की किरण हैं, परंतु फिर भी व्यक्ति शांत हैं, जबकि राष्ट्र सनातन है, सनातन की रक्षा सनातन नीतियों से ही हो सकती है। इसलिए एक ऐसी कार्ययोजना पर कार्य करने की आवश्यकता है जिससे नेता भटकें नहीं और राष्ट्रीय हितों की कहीं उपेक्षा न करें। इस कार्य योजना पर काम करने के लिए जो भी मैदान में आता है, उसी का स्वागत है। इस कार्य योजना के दृष्टिगत वीर सावरकर की भारतीय राजनीति में

प्रासंगिकता सदा बनी रहेगी। 'बुद्ध नहीं युद्ध' की उनकी नीति का सार यही है।

सावरकर ने नेहरू पर जीत दर्ज की

2014 में संपन्न हुए लोकसभा चुनावों में कांग्रेस को अपमानजनक हार का सामना करना पड□ा है। इस हार से पहुंचे सदमे से सोनिया गांधी, राहुल गांधी और कांग्रेस के अन्य नेता अभी उभर नहीं पाए हैं। देश के लिए कांग्रेस का हार जाना बुरी बात नहीं है, बुरी बात है देश में अब सक्षम विपक्ष का अभाव हो जाना। सत्ता पक्ष पर लगाम कसने के लिए अपने तर्कबाण चलाकर सत्तापक्ष को अपनी बात मनवाने का दायित्व कांग्रेस में अब किसके पास होगा? देखने वाली बात होगी कि मोदी इस स्थिति का अपने लिए कैसे उपयोग करते हैं? क्या वह मनमानी करेंगे या विपक्ष को बलवती किये रखने के लिए अपनी बात का सकारात्मक विरोध करने की छूट स्वयं अपने दल के लोगों को भी देंगे?

अब अपने विषय पर आते हैं। आजकल जहां भी दो-चार जागरूक नागरिक बैठे होते हैं, उन सब में थोड□ी देर की गपशप के पश्चात चर्चा का विषय यही बनता है कि लोकसभा चुनावों में कांग्रेस क्यों हारी? इस पर कांग्रेस नीत संप्रग-2 के शासन में मची भ्रष्टाचार की लूट, मनमोहन का 'रिमोट कंट्रोल' से चलना, महंगाई आदि वही चर्चाएं होती हैं, जिनसे हम सब परिचित हैं।

मुझे लगता है कि कांग्रेस क्यों हारी-इस विषय पर विचार करके इसका सही उत्तर खोजने के लिए हमें पहले इस बात पर विचार करना चाहिए कि कांग्रेस बार-बार जीतती क्यों रही? यदि इस प्रश्न पर विचार करेंगे तो हमें सही उत्तर मिल सकता है, परंतु इस पर विचार करने के लिए हमें थोड□ा पीछे जाना होगा। आजादी के ठीक पहले 'नेशनल असैम्बली' के चुनाव 1945 में संपन्न हुए थे। कांग्रेस के महाघपलों से भरे चरित्र का शुभारंभ यहीं से हुआ। जिन्ना और उसकी मुस्लिम लीग तब देश का बंटवारा कराने के लिए एड□ीचोटी का जोर लगा रहे थे। हिंदू महासभा साम्प्रदायिक आधार पर देश का बंटवारा होने देना नहीं चाहती थी। महासभा के साथ उस समय देश का राष्ट्रवादी वर्ग उसकी आवाज में आवाज मिला रहा था। वीर सावरकर जैसे राष्ट्रवादी नेताओं को देश के बंटवारे को लेकर असीम चिंता थी। देश के विभाजन को रोकने के लिए तथा 'नेशनल असैम्बली' के चुनावों में हिंदू मतों के विभाजन को रोकने के लिए वीर सावरकर और उनके साथियों ने यह उचित समझा कि चुनावों में स्वयं खड□ा ना होकर कांग्रेस को समर्थन दिया जाए और शर्त यह लगायी जाए कि कांग्रेस देश का बंटवारा नहीं कराएगी। कांग्रेस ने हिंदू महासभाई नेताओं की ये शर्त स्वीकार कर ली। सावरकर की योजना सफल रही। कांग्रेस को देश की नेशनल असैम्बली में अधिक सीटें मिल गयीं। लेकिन जिन्ना व मुस्लिम लीग ने हिंदू मतों के कांग्रेस के पक्ष में हुए ध्रुवीकरण को लेकर कांग्रेस को 'हिंदुओं की पार्टी' कहना आरंभ कर दिया।

जिन्ना और उनके लोग जितना ही कांग्रेस को हिंदुओं की पार्टी कहते थे, कांग्रेस के नेहरू जैसे लोगों को (जिनका मूल मुस्लिम था) यह आरोप अपने लिए उतना ही खलता था। उन्हें स्वयं को हिंदू कहने में शर्म आती थी और खुलकर अपने आप को मुस्लिम कह नहीं सकते थे, कदाचित गांधी जी इस बात को समझते थे और संभवत: वह इसीलिए लीग और जिन्ना को बार-बार नेहरू को कांग्रेस का बड□ा नेता होने का संकेत देते थे कि हम भी तो एक छद्मी

मुस्लिम को ही अपना नेता मान रहे हैं, इसलिए तुम भी मान जाओ, पर जिन्ना मानने वाले नहीं थे। तब नेहरू ने अपने आपको और भी अधिक धर्मनिरपेक्ष (मुस्लिम परस्त कहें तो और भी उचित होगा) सिद्ध करने के लिए यह उचित समझा कि उन्होंने हिंदू महासभा से किनारा करना आरंभ किया। परिणामस्वरूप 3 जून, 1947 को देश के वायसराय लार्ड माउंट बेटन के साथ संपन्न हुई बैठक में कांग्रेस ने देश के हिंदू समाज से गद्दारी करते हुए देश के बंटवारे पर अपनी मुहर लगा दी। देश के राष्ट्रवादी हिंदू समाज के लिए तथा हिंदू महासभा के लिए यह स्थिति अत्यंत वेदना पूर्ण थी। सावरकर और उनके साथी कांग्रेस की कृतघ्नता से अत्यंत आहत थे, उनका गुस्सा समझने लायक था, परंतु वह गलती कर चुके थे-देश की असैम्बली के चुनावों में कांग्रेस का समर्थन करके। जिससे ताकत अब उनके पास न होकर कांग्रेस के पास थी। तीन जून की बैठक से नेहरू ने हिंदू महासभा को अनुपस्थित करा दिया था। क्योंकि वह जानते थे कि वीर सावरकर या उनका कोई भी प्रतिनिधि उनके द्वारा बंटवारे पर लगाये जाने वाली स्वीकृति की मुहर का वहीं पर तीखा विरोध करेगा। जबकि नेहरू मन बना चुके थे कि उपमहाद्वीप का बंटवारा होने पर भी सत्ता मुस्लिमों के हाथ में ही रहेगी। एक भाग पर जिन्ना तो एक पर वह स्वयं शासन करेंगे। नेहरू की इस सोच को लेकर सावरकर जैसे नेता कतई सहमत नहीं थे, उन्होंने ऐसी सोच और ऐसे कृत्यों का पुरजोर विरोध किया। जिससे नेहरू हिंदू महासभा और उसके नेताओं के प्रति जहर से भर गये। बाद में जब गांधी-हत्या हुई तो इस जहर को मिटाने के लिए उन्होंने सावरकर को जानबूझ कर गांधी हत्या में अभियुक्त बनाया। जिससे सावरकर को और हिंदू महासभा को बदनाम किया जा सके।

सावरकर तो आरोप मुक्त हो गये, पर तब तक बहुत भारी क्षति हो चुकी थी। देश आजाद तो हो ही चुका था साथ ही 1945 के चुनावों के आधार पर ही देश का पहला प्रधानमंत्री बनने में नेहरू सफल हो चुके थे। साथ ही सावरकर जैसे लोगों को वह गांधी हत्या में फंसाकर अपने लिए अगले चुनावों के लिए मैदान साफ कर चुके थे। परिणामस्वरूप 1952 में जब लोकसभा के पहले चुनाव हुए तो कांग्रेस ने 'गांधी-हत्या' को भुनाया और विपक्ष को धोकर सत्तासीन हो गयी। यह ध्यान देने योग्य बात है कि किसी के एक बार सत्ता में बैठने पर उसे सत्ता से हटाना कठिन होता है, क्योंकि वह सरकारी तंत्र का दुरुपयोग करता है और अपने विपक्षी को बदनाम करने के किसी भी हथकंडे को अपनाने से बाज नहीं आता। नेहरू ने भी आकाशवाणी सहित सारी मीडिया का दुरुपयोग किया और एक बेगुनाह को गुनाहगार बनाकर रख दिया। उसकी आवाज को सुनने ही नहीं दिया। फलस्वरूप सत्ता की मलाई 'जनाब' अकेले खाते रहे। यह एक षड्यंत्र था, सत्ता पर काबिज बने रहने का। नेहरू जब तक जीवित रहे, तब तक इसी षड्यंत्र के अंतर्गत 'गांधी हत्या' को हर चुनाव में भुनाते रहे और देश की जनता को यह अहसास कराते रहे कि देश को आजाद हमने कराया और देश पर शासन भी हम ही कर सकते हैं, शेष दूसरे लोगों का ना तो देश के स्वतंत्रता संग्राम में कोई योगदान था और ना ही वे शासन करने में सक्षम हैं। नेहरू ने यह भी स्थापित किया कि गांधी जैसा व्यक्ति हजारों वर्षों में एक बार आता है, और उसे भी कुछ लोगों ने समाप्त कर दिया। नेहरू देश की हिंदू जनता के 'अवतारों' में विश्वास करने की दुर्बलता को भली प्रकार जानते थे, इसलिए उन्होंने गांधी को एक अवतार के रूप में स्थापित किया और वैसे ही उन्हें सम्मान देने का नाटक किया। इस सारे खेल का जनता पर वही असर हुआ, जो नेहरू चाहते थे। फलस्वरूप जो सच था, वह कई तहों में बंद होता गया और झूठ का महिमामंडन होता चला गया।

कांग्रेस को मरे हुओं के नाम पर जीतने का चस्का लग गया। इसी परंपरा को नेहरू के पश्चात इंदिरा गांधी ने जारी रखा। उन्होंने गांधी के पश्चात नेहरू को 'दूसरा अवतार' बनाकर शीशे में जड□वा-जड□वा कर फिट करवाना आरंभ किया और लोगों के दिलों में गांधी-नेहरू नाम के दो अवतार बैठा दिये। हमने देखा कि वे इन्हीं दो अवतारों के नाम पर शासन करती रहीं तो उनकी निर्मम हत्या को उनके बेटे राजीव ने भुनाया। राजीव गांधी ने श्रीमति गांधी को 'तीसरी दैवीय शक्ति का अवतार' घोषित किया और लोगों को गांधी नेहरू और इंदिरा की पूजा करने के लिए प्रेरित किया। यही स्थिति श्रीमती सोनिया गांधी और राहुल गांधी ने राजीव गांधी के प्रति पैदा की। इस जादूगरी भरे नाटक से कांग्रेस सत्ता का रसास्वादन करती रही, पर दूसरी ओर इस जादू के खेल को तोड□ने का प्रयास भी चल रहा था। यह प्रयास वैसा ही था, जैसे जब आप कोई गेंद ऊपर की ओर उछालते हैं तो वह गेंद जैसे ही आपके हाथ से ऊपर की ओर जाती है, तो उसे धरती पर गिराने के लिए धरती का गुरुत्वाकर्षण बल विपरीत दिशा में जोर लगाने लगता है। हिंदू महासभा को कुछ तो कांग्रेस की मारी हुई और कुछ अपनों के घातों और लातों के कारण धीरे-धीरे पीछे हो गयी, परंतु सावरकर का विचार कितने ही राष्ट्रवादियों को कहीं-न-कहीं आंदोलित करता रहा। इसलिए श्यामा प्रसाद मुखर्जी के जनसंघ से लेकर भाजपा, आर.एस.एस., शिवसेना, विश्व हिंदू परिषद और सभी हिंदूवादी संगठनों में या राजनीतिक दलों के लिए सावरकर, नेहरू की गेंद के लिए धरती का गुरुत्वाकर्षण बल बन गये। अब 2014 में नेहरू की गेंद ऊपर जानी बंद हुई है और अब वह धरती पर आ गिरी है। सचमुच यह नेहरू की हार और सावरकर की जीत है, पर दु:ख की बात यह है कि एक षड्यंत्र का भण्डाफोड□ करने में हमें 67 वर्ष लग गये। नेहरू के 'गुलाब' की मुस्कराहट को सावरकर के गंभीर किंतु 'कमल' जैसे पवित्र चेहरे ने अंतत: परास्त कर ही दिया। ईश्वर करे अब कोई और षड्यंत्र ना हो और स्वर्गसम पवित्र यह देश आर्यावर्त बनने के शिवसंकल्प को लेकर आगे बढ□। अंत में कांग्रेसियों के लिए एक ही बात है कि वे ये चिंतन करें कि हम अब तक जीतते क्यों रहे थे? षड्यंत्रों के जादुई खेलों को छोड□कर 'सच' का सामना करेंगे तो उन्हें फिर 'देश सेवा' का अवसर मिल सकता है। क्या अजीब संयोग है कि 26 मई को मोदी पीएम बने, 27 को नेहरू 'पुण्यतिथि पर' विदा हो गये और 28 को सावरकर (जयंती पर) जीवित हो गये।

नेहरू के कारण चीन से हारे

आस्ट्रेलियाई पत्रकार मेक्सवेल से भी पहले सावरकर ने हमें बताया था नेहरू के कारण हम चीन से हारे:-

जितना यह सत्य है कि अहिंसा की रक्षा हिंसा से होती है, उतना ही यह भी सत्य है कि सत्य की रक्षा शस्त्र से होती है। आजादी के बाद उभरे हमारे नेतृत्व ने भारत के इस सनातन चिंतन की उपेक्षा की और राजनीति में नये-नये मिथकों की रचना की। जिसका परिणाम यह निकला कि आजादी के बाद के पहले दशक में 'अहिंसा परमो धर्म:' और 'सत्यमेव जयते' के नाम पर 'स्वाहा-स्वाहा' बोलते हुए पूरा देश कांग्रेसी यज्ञाहुतियों के रंग में रंग गया।

इन्हीं यज्ञाहुतियों के क्रम में 1962 का साल आ गया, तब चीन ने हमारे तत्कालीन नेतृत्व के मुंह पर चांटा मारा और सारे देश ने कांग्रेसी यज्ञाहुतियों के कायराना क्रम को रोककर अपने नेता के साथ ही मिलकर एक गीत गाया-'ऐ मेरे वतन के लोगों जरा आंख में भर लो पानी।' जिसने यह गीत बनाया और जिस महान शख्सियत की धनी लता मंगेशकर ने यह गीत गाया, वे दोनों ही देश के लिए आज तक सम्मान के पात्र हैं, परंतु इसी सम्मान के उत्कृष्ट भाव के नीचे से कुछ लोगों के दोष उसी प्रकार हमारी आंखों से बचकर बह गये, जैसे नदी के बहते पानी में पुल के नीचे से किसी मलबे से बना अवरोध चुपचाप बहकर पानी में ही विलीन हो जाता है।

1962 में ही नहीं अपितु 1947 के पूर्व से ही एक व्यक्ति था, जिसने अहिंसा 'परमोधर्म:' और 'सत्यमेव जयते' की कांग्रेसी यज्ञाहुतियों को देश के लिए घातक कहना और मानना आरंभ कर दिया था। जी हां, मेरा संकेत स्वातंत्र्य वीर सावरकर की ओर ही है, जिन्होंने देश के उज्ज्वल भविष्य के लिए गांधीजी के अहिंसावाद के स्थान पर 'बुद्ध नहीं युद्ध' और सत्यमेव जयते के कांग्रेसी मिथक के स्थान पर 'शस्त्रमेव जयते' का उद्घोष किया था। वीर सावरकर ने इसी दृष्टिकोण को अपनाकर 'राजनीति का हिंदूकरण और हिंदुओं का सैनिकीकरण' करने की बात कही थी। क्योंकि वह जानते थे कि सत्य की रक्षार्थ शस्त्र की आवश्यकता होती ही है और अहिंसा की रक्षार्थ हिंसा भी आवश्यक है। वीर सावरकर के विषय में यह कहना कि वह इन नीतियों की सर्वोच्चता को स्वीकार नहीं करते थे, कांग्रेसी दुष्प्रचार का एक अंग है। जबकि वास्तविकता यही थी कि सावरकर व्यावहारिक थे और वह नेहरू जी की तरह आदर्शों की उड□ान भरने में विश्वास नहीं करते थे, उन्हें पता था कि अहिंसा विश्व के लिए जितनी आवश्यक है, उतना ही सत्य के प्रति विश्व मानस का समर्पण भी आवश्यक है, परंतु इसके लिए वह हिंदुओं का व समस्त देशवासियों का सैनिकीकरण, राजनीति का हिंदूकरण अर्थात राजनीति का वे केवल और केवल मानवतावादीकरण, जनोन्मुखीकरण किया जाना अपेक्षित मानते थे। दुर्भाग्य से देश के प्रथम प्रधानमंत्री की नीतियों पर तो बहुत से लोगों ने पी.एच.डी. करने की कोशिश की है, परंतु नेहरू जी के समकालीन वीर सावरकर की बौद्धिक क्षमताओं पर किसी ने पी.एच.डी. करने का प्रयास नहीं किया। इसका कारण भी कांग्रेस का कुशासन ही रहा है, क्योंकि इसने अपनी नीतियों के समालोचकों तक को मारने का प्रयास किया है। इसलिए 'सावरकर को मरने दो और नेहरू को बढ□ने

दो' की नीति पर कांग्रेस ने शासन किया है।

1964 में नेहरू जी का 27 मई को स्वर्गवास हो गया। तब 9 जून, 1964 को देश की बागडोर लाल बहादुर शास्त्री ने संभाली। उन्होंने चुपचाप सावरकर की बात को मान लिया और हिंदुओं का सैनिकीकरण करने की ओर ध्यान दिया। फलस्वरूप देश में नेहरू काल से चली आ रही अकर्मण्यता की काई फटी और अहिंसा की रक्षार्थ हिंसा के लिए देश उठ खड□ा हुआ, और 'सत्यमेव जयते' के स्थान 'शस्त्रमेव जयते' को अपनाने लगा। फलस्वरूप परिणाम सीधे आने लगे और हमने देखा कि 1965 के भारत-पाक युद्ध में भारत ने पाकिस्तान को करारी शिकस्त देकर बता दिया कि भारत के नेतृत्व की नीतियां अब सावरकरवादी हो गयी हैं। 1971 में इसी बात को देश ने इंदिरा गांधी के नेतृत्व में सिद्ध किया। वास्तव में 1965 और 1971 में पाकिस्तान के विरुद्ध भारत की यह जीत सावरकर की नीतियों की जीत थी। आज भी हम यदि कहीं किन्हीं समस्याओं से ग्रस्त हैं, तो उनमें नेतृत्व की किंकर्त्तव्यविमूढ□ता की अवस्था ही अधिक जिम्मेदार है। नेतृत्व के मानस का अंतर्द्वन्द्व यदि सावरकर की तरह स्पष्टवादी हो जाये तो सारी व्यवस्था में ही आमूल चूल परिवर्तन आ सकता है। कुछ सीमा तक हिंदुओं का सैनिकीकरण करने की नीति में तो सरकारों ने परिवर्तन किया है, परंतु राजनीति का हिंदूकरण नहीं किया जा रहा है, और उसी का परिणाम है कि देश में संप्रदायवाद, जातिवाद, क्षेत्रवाद और भाषावाद के पचड□ बढ□ते ही जा रहे हैं। राजनीति के हिंदूकरण का अभिप्राय राजनीति का साम्प्रदायिकीकरण बिलकुल नहीं है, अपितु राजनीति को मूल्य आधारित कर उसका आध्यात्मिकीकरण किया जाना है।

अब एक ऑस्ट्रेलियाई पत्रकार नेवोल मेक्सवेल ने भारत चीन युद्ध के कारणों पर बीते पांच दशक से गोपनीय हैण्डरसन ब्रूक्स भगत रिपोर्ट के आधार पर कहा है कि 1962 में भारत नेहरू के कारण चीन से हारा था। मेक्सवेल के इस कथन के रहस्योद्घाटन पर आश्चर्यचकित होने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि मेक्सवेल तो केवल यह बता रहा है कि हम क्यों हारे या किसके कारण हारे? जबकि सावरकर हमें ये बता रहे थे कि हम इस नीति से हार सकते हैं और इस नीति को अपनाकर शत्रु को परास्त कर सकते हैं। इसलिए बड□ा मेक्सवेल नहीं है, अपितु बड□ तो सावरकर थे, जिन्होंने समय पूर्व खतरे की सूचना और खतरे से बचने का उपाय दोनों हमें दिये थे। कांग्रेस मेक्सवेल के निष्कर्षों को या ब्रूक्स भगत रिपोर्ट को रद्दी की टोकरी में डाल सकती है, परंतु क्या वह सावरकर के उस कालजयी यथार्थवादी चिंतन को भी मिटा सकती है, जो आज भी हमें बता रहा है कि एक दिन कांग्रेस के झूठ पर सावरकर के चिंतन की विजय होना निश्चित है।

सावरकर के वारिस बने नरेन्द्र मोदी

स्वातंत्र्य वीर सावरकर ने 'क्रांतिकारी चिट्ठियों' में कहा- 'हम ऐसे सर्वन्यासी राज्य में विश्वास रखते हैं, जिसमें मनुष्य मात्र का भरोसा हो सके और जिसके समस्त पुरुष और स्त्रियां नागरिक हों, और वे इस पृथ्वी पर सूर्य और प्रकाश से उत्तम फल प्राप्त करने के लिए मिलकर परिश्रम करते हुए फलों का समान रूप से उपयोग करें, क्योंकि यही सब मिलकर वास्तविक मातृभूमि या पितृभूमि कहलाती है। अन्य भिन्नताएं यद्यपि अनिवार्य हैं तथापि वे अस्वाभाविक हैं, राजनीति शास्त्र का उद्देश्य ऐसा मानुषी राज्य है या होना चाहिए, जिसमें सभी राष्ट्र अपना राजनीतिक अस्तित्व अपनी पूर्णता के लिए मिला देते हैं, ठीक उसी तरह जैसे सूक्ष्म पिण्ड इंद्रियमय शरीर की रचना में, पारिवारिक समूह संघ में तथा संघ राष्ट्र राज्यों में मिल जाते हैं।'

यह उद्धरण सावरकर जी की वसीयत कही जा सकती है, इसमें उनका विद्यस्वरूप ही नहीं, अपितु राजनीति की वह मेधाशक्ति भी परिलक्षित होती है, जो स्वतंत्रता पूर्व स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात के भारत का चित्र खींचती है, और जिसमें उनका लोकतांत्रिक दृढ□ व्यक्तित्व स्पष्ट हो जाता है। यह लोकतांत्रिक इसलिए है कि इसमें 'सबका साथ, सबका विकास' ईमानदारी से पहली बार दिखाया गया है और लोकतंत्र का यह मूलभूत सिद्धांत है कि आप 'सबका साथ सबका विकास' कर पाने में विश्वास रखते हों, आपकी नीतियां यदि ऐसी हैं, तो आपके शासन में देश के आर्थिक संसाधनों पर किसी समूह या सम्प्रदाय विशेष का प्रथम अधिकार न होकर समस्त देशवासियों का पहला अधिकार होगा। लोकतंत्र का दूसरा मूलभूत सिद्धांत है कि लोग राष्ट्र के आर्थिक संसाधनों के सामूहिक रूप से फलोपभोग करने वाले हों। लोकतंत्र का तीसरा मूलभूत सिद्धांत है कि लोग स्वस्थ चिंतन और सकारात्मक ऊर्जा से भरे हों और अपनी 'मातृभूमि या पितृभूमि' को अनिवार्यत: अपना राष्ट्र मानते हैं और चौथे यह कि इस राष्ट्र के दु:ख-सुख में अपना दु:ख-सुख मानते हों और कहीं से भी किसी भी प्रकार से मत भिन्नता स्थापित करने की बात न करते हों। श्री नरेन्द्र मोदी के भारत का प्रधानमंत्री बनने के पश्चात लोगों ने कहना आरंभ किया कि अब देश में 'हिंदुत्व' का समय आ गया है और 'सावरकरवाद' को मोदी सरकार अब प्राथमिकता देगी। जिससे देश की एकता और अखण्डता को संकट उत्पन्न हो सकता है।

जिन लोगों ने सावरकरवाद की ऐसी व्याख्या की है, उन्हें संकीर्ण ही कहा जाएगा, क्योंकि उन्होंने इस महान नेता की महानता की सही व्याख्या करने में प्रमाद का और पूर्वाग्रही होने का परिचय दिया है। वास्तव में ऐसे प्रमादी और पूर्वाग्रही लोगों को वीर सावरकर के उक्त उद्धरण की पुन:-पुन: व्याख्या स्वच्छ हृदय से करनी चाहिए। सावरकर का यही मंतव्य था, जो ऊपर दिया गया है और इसे सावरकरवाद कहना भी उचित नहीं होगा, क्योंकि यह भारत की सनातन धर्म की वैदिक परंपरा के अनुकूल भारत का एक राजनैतिक सिद्धांत है, जो युगों पुरानी भारतीय राजनीतिक प्रणाली का एक अंग रहा है। इसलिए इसे 'भारत का सनातनवादी राजनीतिक सिद्धांत' कहा जाए तो ही अच्छा है।

सावरकर को साम्प्रदायिक कहना अज्ञानता

जब भारतीय स्वातंत्र्य समर के इतिहास का प्रक्षालन कोई गंभीर, जिज्ञासु और राष्ट्रप्रेमी पाठक करेगा और उसे भारतीय इतिहास सागर की गहराई से सावरकर नाम का रत्न हाथ लगेगा तो वह निश्चित रूप से प्रसन्न वदन होकर उछल पड□गा, उसे चूमेगा और अपने मस्तक को झुकाकर उसका वंदन, अभिनंदन और नमन करेगा। क्योंकि ऐसे रत्न विश्व इतिहास की धरोहर होते हैं। उन्हें अपने हाथों स्वचक्षुओं से पढ□कर देखना सचमुच गौरव, गर्व और हर्ष का विषय होता है। इस देश का यह सौभाग्य रहा और सौभाग्य है कि इस अनमोल हीरे पर उसका एकाधिकार है, जो कि राष्ट्र और विश्व की धरोहर है और जिसे कोई चुनौती नहीं दे सकता। नि:संदेह यह हीरा आज भी इतिहास में जिस तेज के साथ चमक रहा है, उसके सामने संसार के सभी हीरों की चमक फीकी पड□ जाती है। इस हीरे ने हिंदू महासभा में प्रवेश करते समय कहा था- 'जब तक मेरे देह में रक्त की एक बूंद भी शेष है, मैं अपने को हिंदू कहूंगा और हिंदुत्व के लिए हमेशा लड□ता रहूंगा।' इसलिए इस अप्रतिम हीरे पर आज भी प्रत्येक राष्ट्रवादी, देशवासी को बड□ा गर्व है। सन 1937 ई. में वीर सावरकर का हिंदू महासभा में आगमन इस संगठन और हिंदू समाज के लिए एक बड□ी महत्त्वपूर्ण घटना है। जिस समय वीर सावरकर जी का शुभागमन हुआ, उस समय ब्रिटिश भारत सरकार और मुस्लिम लीग दोनों ही तेजी से देश को विभाजन की ओर ले जा रहे थे। कांग्रेस राष्ट्रवाद के महत्त्वपूर्ण बिंदु पर अस्पष्ट और ढुलमुल थी। इसलिए उसकी ओर से जो संकेत मिल रहे थे, उनसे स्पष्ट था कि वह देर-सवेर भारत विभाजन को भी स्वीकार कर लेगी। इन परिस्थितियों का सामना करने के लिए प्रबल विरोध की आवश्यकता थी। हिंदू महासभा की ओर से सक्षम, सबल, और समर्थ नेता के नेतृत्व में सफल आंदोलन के लिए देश का हिंदू समाज बड□ी लालायित दृष्टि से देख रहा था। ऐसी विषम परिस्थितियों में- 'स्वातंत्र्य के प्रचेता और राष्ट्रवाद के प्रणेता, हिंदुत्व के ध्वजवाहक और हिंदू धर्म के प्रसारक, हिंदू इतिहास के व्याख्याता और हिंदू संस्कृति के प्रचारक और उद्भट प्रस्तोता स्वातंत्र्य वीर सावरकर का प्रादुर्भाव हिंदू महासभा के लिए 'वरदान' सिद्ध हुआ। अपने इस नेता के नेतृत्व में हिंदू महासभा को लगा कि उसे संशय और संदेह की तंग दीवारों के मध्य निराशा की गहन निशा में अंधेरे को चीरते हुए सूर्य के दर्शन हो गये। सावरकर स्वयं में एक प्रभावशाली और ओजस्वी, वक्ता, साहित्यकार, लेखक, दार्शनिक और राजनीति के ऐसे महान मनीषी थे कि मंच पर पहुंचते ही ज्वार उत्पन्न कर देते थे।

उन्होंने अण्डमान (काला पानी) की सजा की कठोरतम यातनायें झेली थीं। 23 दिसंबर, सन 1910 ई. को उन्हें दो जन्मों का अर्थात 55 वर्ष का कारावास उस क्रूरतम ब्रिटिश सरकार ने दिया था, किंतु चट्टान की भांति अपने निर्णय पर अडिग रहने वाले इस महान देशभक्त को ये यातनाएं अपने उद्देश्य से विचलित नहीं कर पायीं। रत्नागिरि में स्थानबद्धता के पश्चात सन 1937 ई. में उन्हें नि:शर्त रिहा कर दिया गया। इनकी रिहाई के पश्चात भारतीय नेताओं ने इनका भव्य स्वागत और अभिनंदन किया। कांग्रेस की ओर से पंडित जवाहर लाल नेहरू और सी. राजगोपालाचार्य ने तथा हिंदू महासभा की ओर से भाई परमानंद जी ने उनसे

संपर्क साधा और अपने-अपने दलों में सम्मिलित होने का निवेदन किया। उन्होंने कांग्रेस का निमंत्रण सविनय ठुकरा दिया और देश सेवा के लिए हिंदू महासभा के मंच को ही अपने लिए उपयुक्त समझा। 30 दिसंबर, सन 1937 ई. को हिंदू महासभा का 19वां अधिवेशन कर्णावती (अहमदाबाद) में आहूत किया गया। इसकी अध्यक्षता के लिए भाई परमानंद ने वीर सावरकर का नाम प्रस्तावित किया और उनका परिचय एक महान देशभक्त तथा राजा के रूप में कराया। इस पर सभी उपस्थित प्रतिनिधियों ने जोरदार तालियों से अपने महान नेता का स्वागत किया। वीर सावरकर जी ने अपने ओजस्वी भाषण में हिंदू शब्द की नई परिभाषा दी। जिसे उन्होंने अपनी 'हिंदुत्व' नामक पुस्तक में दिया था। उन्होंने कहा-

आसिन्धु सिंधुपर्यन्ता यस्य भारत भूमिका।
पितृभू: पूण्य भूयश्चैव सर्ववै हिंदू रीति स्मृत:।।

अर्थात वह प्रत्येक व्यक्ति हिंदू कहलाने का अधिकारी है जो भारत वर्ष को मातृभूमि, पितृभूमि और पुण्यभूमि मानता और स्वीकार करता है। यह परिभाषा बड□ी विस्तृत परिभाषा है। इससे हिंदू एक देश विशेष का अथवा सम्प्रदाय विशेष का व्यक्ति नहीं हो सकता। संसार के किसी भी कोने में रहने वाला व्यक्ति यदि भारत के प्रति उपरोक्त भावों से भरा हुआ है, और उक्त शर्तों को पूरा करता है तो वह पूजा पद्धति में पृथक होकर भी हिंदू कहला सकता है। हिंदू एक विशुद्ध जीवन प्रणाली है। इस जीवन प्रणाली को विकसित करने में युगों की तपस्या मूल रूप में कार्य कर रही है। जिन ऋषियों, संतों, महात्माओं और योगी पुरुषों ने अपने तप, त्याग और साधना से इस जीवन प्रणाली का विकास किया, उन सबका आभार व्यक्त करते हुए उन्हें अपना पितृ स्वीकार करना आवश्यक है। उनके योगदान को नमन करना आवश्यक है। जिन राजा, महाराजाओं, सम्राटों ने इस जीवन प्रणाली का विस्तार किया और अपने छात्र बल से इसका रक्षण, संरक्षण, संवर्द्धन किया, उनका योगदान भी अभिनंदनीय है। इसलिए उन्हें भी अपना पितृ मानना प्रत्येक हिंदू के लिए आवश्यक है। इसके अतिरिक्त भारतवर्ष की यह पावन और पुण्य भूमि भी वंदनीया, नमनीया और प्रात: स्मरणीया है, जिस पर इन युग पुरुषों ने जन्म लिया और अपने उच्च और मानवीय कार्यों से मानवता की सेवा की। एक लंबे काल खण्ड में बिखरी भारतीय संस्कृति के प्रति अपने उदात्त भाव रखने वाले व्यक्ति को सावरकर जी ने स्वाभाविक हिंदू माना। उन्होंने बड□ ही निर्भीक शब्दों में कहा था कि-'कुछ हमारे सच्चे लोग भी जो देशभक्त हैं, बिना सोच-समझे हिंदू महासभा को एक साम्प्रदायिक संस्था होने का झूठा प्रचार करते हैं। क्योंकि यह केवल हिंदूवाद का प्रतिनिधित्व करती है और साथ ही हिंदू अधिकारों की रक्षा करती है। यदि हिंदू महासभा हिंदू राष्ट्र का ही प्रतिनिधित्व का दावा करती है..., यह सत्य है कि पृथ्वी हमारी मातृभूमि और मानवता हमारा राष्ट्र है।' इसके अतिरिक्त वेदांती कहते हैं पूरा संसार ही उनका देश है और सभी व्यक्त जगत की वस्तुएं नक्षत्र से पत्थर तक सब अपना ही है, परंतु सही अर्थों में भारतीय देशभक्तों के लिए यदि कोई न्यायसंगत (उपाय) है, तो वह यह है कि सभी भारतीयों को समान वंशावली, समान भाषा, समान संस्कृति और समान इतिहास के सूत्र में बांधने का प्रयास करें। भारत तभी एक सूत्र में बंधेगा, जब उक्त सभी शर्तों का विस्तार होगा। सावरकर जी का मंतव्य था कि अलग-अलग सम्प्रदायों के नाम पर अलग-अलग पहचान खड□ी करना, राष्ट्रीय परिवेश को गंदला करना

होगा। इसलिए भारतीय संस्कृति में व्याप्त मानवतावाद को अपने चिंतन का आधार बनाना चाहिए। हम अपनी कृत्रिम पहचानों को भारतीय संस्कृति के पवित्र घाट पर तिरोहित कर दें और केवल मानवता को अपना राष्ट्र घोषित कर दें। इस भाव से जो परिवेश जन्म लेगा, वह हम सबके लिए उचित और उपयुक्त होगा। उन्होंने मानवता को अपना राष्ट्र माना। इस बात को देश के चाटुकार इतिहासकारों ने प्रचारित नहीं किया। इस अत्यंत उच्च चिंतन से उद्भूत उत्कृष्ट बात पर भी अक्षम्य चुप्पी साधी गयी, क्योंकि उनकी सोच में कृत्रिम पहचान के बने रहने का अर्थ था समाज में विखण्डनकारी मनोवृत्ति को प्रोत्साहन मिलना। हिंदू मुस्लिम एकता के लिए कांग्रेस की परंपरागत नीति थी-तुष्टिकरण और अंग्रेजों की नीति थी-फूट डालो और राज करो, इसी तरह मुस्लिमों की मुस्लिम लीग की नीति थी-हमारी मांगें मानो और अपने अधिकारों को सीमित करो, तब भी हम आपके साथ रहें या न रहें, यह हमारी इच्छा है। हिंदू महासभा की नीति थी कि तुष्टिकरण किसी का न हो, राष्ट्रधर्म निर्वाह के प्रति सभी कर्त्तव्यबद्ध हों और राष्ट्रवाद के समक्ष सम्प्रदायवाद नगण्य हो। वीर सावरकर का चिंतन भी बड□ा स्पष्ट था। उन्होंने हिंदू मुस्लिम एकता के लिए प्रयासों को उचित माना, किंतु फिर भी यह कहा कि इस हिंदू मुस्लिम एकता के लिए केवल हिंदुओं को ही लगन लगी हुई है। जिस दिन से हमने उनके मन में यह भ्रम उत्पन्न कर दिया है कि हिंदुओं के साथ सहयोग करने का उपकार जब तक वे नहीं करते, तब तक स्वराज्य मिलना असंभव है, उसी दिन से हमारे सम्माननीय नेता समझौते को सर्वथा असंभव कर बैठे हैं। तब सावरकर जी ने कहा था- 'हमें हिंदू-मुस्लिम एकता के लिए मुसलमानों के पीछे नहीं भागना चाहिए। बल्कि आओगे तो तुम्हारा स्वागत है, नहीं आओगे तो तुम्हारे बिना स्वराज्य तो हम लेंगे ही, अगर विरोध करोगे तो हिंदू राष्ट्र तो अपना भविष्य निर्माण करेगा ही।' ऐसा स्पष्ट चिंतन और विचार अभी तक मुसलमानों के लिए किसी ने भी नहीं दिया। इसीलिए बिगड□ैल बच्चे की भांति मुस्लिम वर्ग अपना मूल्य बढ□वाता जा रहा था और कांग्रेस की ओर से ऐसा दर्शाया जा रहा था कि उनके बिना स्वराज्य की कल्पना भी नहीं की जा सकती, किंतु सावरकर जी ने कहा कि तुम साथ आते हो तो हमारी ओर से स्वागत और यदि नहीं आते हो तो तुम्हारे बिना भी स्वराज्य तो लेकर ही रहेंगे। साथ ही यह सचेत भी किया कि बिगड□ैल बच्चे की भांति लात-पैर मारना बंद करो, विरोधी बनोगे तो उसका उपचार भी वैसे ही किया जाएगा।

इसके उपरांत भी सावरकर ने 1939 में हिंदू महासभा के कलकत्ता अधिवेशन में कहा था- स्वाधीन भारत के संविधान में देश के सभी नागरिकों के लिए समान अधिकार और समान दायित्व की व्यवस्था होनी चाहिए, और इस प्रकार व्यक्ति एक मताधिकार और दायित्वों का स्पष्ट निर्देश होने पर देश में बहुसंख्यक और अल्पसंख्यक का प्रश्न ही शेष नहीं रहेगा।

इसके उपरांत भी सावरकर को कोई व्यक्ति साम्प्रदायिक कहे, तो यह उसकी अज्ञानता ही है।

हिंदू संगठन - गांधीजी, स्वामी श्रद्धानंद और सावरकर

सफल वक्ता वही होता है जो श्रोताओं को अपनी बात से सहमत और संतुष्ट तो कर ही ले, साथ ही उसकी भाषण कला ऐसी हो, जिससे लोग वही कुछ करने के लिए प्रेरित और आंदोलित भी हो उठें, जो वह वक्ता उनसे कराना चाहता है। भाषण के अंत में यदि नेता कहे कि-'अमुक स्थान के लिए प्रस्थान करो और उसमें आग लगा दो'-और हम देखें कि लोग सचमुच सभा स्थल से उठे और अपने नायक द्वारा बताये गये स्थान पर जाकर वहां आग लगा दें। ...और ना केवल आग लगा दें, अपितु वहां तब तक बैठे रहें, जब तक कि वह स्थान जलकर राख नहीं हो जाए।

अपने श्रोताओं में ऐसी ही मचलन उत्पन्न करने की अद्भुत क्षमता वाले अनुपम वक्ता थे-वीर सावरकर। उनके विषय में उनके एक सहपाठी कवि साधुदास ने 'स्वातंत्र्य वीर सावरकर' नामक अपने एक लेख में लिखा था-'उस वर्षारम्भ के दिन ही अपने भाषण के प्रारंभ से ही सावरकरजी ने श्रोताओं के मन आकृष्ट कर लिये। स्वत्व भूलकर इस पाश्चात्य सभ्यता की चंगुल में कैसे फंस रहे हैं, यह वे बता रहे थे, तब श्रोताओं को मानो बिजली के झटके लग रहे थे। भाषण सुनने को जो लोग उपस्थित थे-उन समस्त छात्रों के हृदय में भावोद्रेक हुआ था। कायर मनों को धीरज बंधाने वाला तथा साहसी मनों को स्फूर्ति प्रदान करने वाला वह नाद ब्रह्म आखिरकार वातावरण में विलीन हुआ, किंतु श्रोताओं की समाधि भंग न हुई। सभापति प्रा. भानु सावरकरजी के भाषण की प्रचण्डता सह न सके। वे बोले- 'छात्रों, यह सावरकर शुद्ध राक्षस है। उसके राक्षसी विचारों पर आप लोग तनिक भी ध्यान मत दो। किंतु इस अध्यक्षीय अनुरोध का श्रोताओं पर कोई प्रभाव नहीं हुआ।'

जिनकी देशभक्ति असंदिग्ध और परम तप युद्ध होती है, उनकी वाणी से बिना लाग-लपेट के निकलने वाले शब्द अकसर दूसरों को कष्टकर अनुभव हुआ करते हैं। इसलिए ऐसे लोगों को या परम देशभक्तों को 'राक्षस' की उपाधि अकसर मिल ही जाया करती है। सावरकर राजनीति की इसी पवित्रता और शुद्धता के पक्षधर थे कि इसमें चोर को चोर और शाह को शाह कहने वाले साधक लोगों का प्रवेश हो। राजनीति यदि दब्बू हो गयी या चोर को चोर कहने से बचने लगी तो राजनीति दिशाविहीन और कर्त्तव्यविमुख हो जाएगी।

आर्य समाज के प्रमुख स्तंभ और हिंदू महासभा के राष्ट्रीय अध्यक्ष रहे स्वामी श्रद्धानंदजी महाराज की जब एक धर्मान्ध मुस्लिम ने हत्या कर दी थी, तो गांधीजी जहां उस धर्मान्ध मुस्लिम हत्यारे का महिमामंडन कर रहे थे, तब वीर सावरकर राजनीति की शुद्धता के झण्डे गाड□ते हुए स्वामीजी की हत्या (23 दिसंबर, 1926) के अगले दिन रत्नागिरि के विट्ठल मंदिर में आयोजित शोकसभा में अपने हृदय की वेदना को इस प्रकार व्यक्त कर रहे थे- 'पिछले दिन अब्दुल रशीद नामक एक धर्मान्ध मुस्लिम ने स्वामीजी के घर जाकर विश्वासघात से उनकी हत्या की। स्वामी श्रद्धानंदजी हिंदू समाज के आधार स्तंभ थे। उन्होंने

सैकड□ों (वास्तव में 5000 के लगभग) मलकाना राजपूतों को शुद्ध करके पुन: हिंदू धर्म में लाया था। वे हिंदू महासभा के अध्यक्ष भी थे। यदि कोई ऐसे घमण्ड में हो कि एक श्रद्धानंद के जाने से सारा हिंदुत्व नष्ट हो जाएगा तो मेरी (ऐसा सोचने वाले को) उसे चुनौती है-जिस भारतमाता ने एक श्रद्धानंद निर्माण किया, उसके रक्त की एक बूंद से लाखों श्रद्धानंद निर्माण करने का उसमें अनोखा सामर्थ्य है, जहां औरंगजेब की लाखों तलवारें तथा तोपें हिंदू धर्म को विचलित न कर सकीं, वहां एक श्रद्धानंद की हत्या से वह नष्ट नहीं होगा, बल्कि और अधिक पनपेगा।'

वास्तव में स्वामी श्रद्धानंद की हत्या भारत की सनातन संस्कृति के उस परम साधक की हत्या थी, जो इस देश में 'हिंदू राजनीति' के प्रबल पक्षधर थे। स्वामी जी की राजनीति का मुख्य आधार था-इस देश की मूल संस्कृति और मूल वैदिक विचारधारा को सुरक्षा प्रदान करना। वह जानते थे कि वैदिक संस्कारों की रक्षा से ही मानव का मानव से वास्तविक प्रेमपूर्ण संबंध स्थापित किया जा सकता है, दूसरे इन्हीं संस्कारों से इस देश की एकता और अखण्डता को बचाये-बनाये रखा जा सकता है। इसलिए स्वामी जी 'हिंदू संगठन' पर बल देते थे, जिससे देशघाती शक्तियों को भय सताता था कि यदि इस देश का हिंदू संगठित हो गया तो तुम्हारा क्या होगा? वीर सावरकर स्वामी श्रद्धानंद जी की हत्या का कारण जानते थे कि ऐसा करके षड्यंत्रकारी इस देश की मूल वैदिक विचारधारा के प्रचार-प्रसार के देशभक्ति पूर्ण कार्य की परंपरा को ही अवरुद्ध कर देना चाहते थे। वीर सावरकर नहीं चाहते थे कि स्वामी जी की हत्या से उपजे शून्य को अधिक देर तक बनाये रखा जाए, क्योंकि उस शून्य का जितनी देर तक अवस्थापन रहता, उतनी ही देर तक स्वामी जी की हत्या के षड्यंत्रकारियों को इस सुखद भ्रांति में जीने का अवसर मिल जाता कि वे भारत को अपनी जड□ों से मिलाने वाले एक महाभियान को रोकने में सफल हो गये थे। जबकि भारत तो वह भारत रहा है-जिसमें एक धर्मयोद्धा युद्ध क्षेत्र से हटता है, तो उसके हटने से पूर्व हजार धर्मयोद्धा उसके उत्तराधिकारी बनकर क्षेत्र में आ उपस्थित होते हैं। यही कारण था कि वीर सावरकर जी ने स्वयं को उक्त भाषण के माध्यम से स्वामी जी की चिता की राख के शांत होने से पूर्व ही उनका उत्तराधिकारी घोषित कर दिया। ऐसा करके उन्होंने उन विषम परिस्थितियों में बहुत बड□ा संकट मोल ले लिया था। उस समय ऐसा बोलना हर किसी के वश की बात नहीं थी। उनके बोलने को सदा की भांति गांधीजी ने अच्छे से नहीं लिया था। उनके भीतर आग लग गयी थी। वह नहीं चाहते थे कि स्वामी श्रद्धानंद की 'हिंदू संगठन' की परंपरा और आगे बढ□े। स्वामी जी की हत्या से गांधीजी को लगा था कि अब उनकी तूती भारतीय राजनीति में बोलेगी, पर यह क्या हुआ कि सावरकरजी ने स्वामी श्रद्धानंद जी का ताज अपने सिर पर रखकर गांधीजी समेत उन सभी लोगों को यह संकेत दे दिया कि स्वामी श्रद्धानंद जी का बलिदान व्यर्थ नहीं गया है और हमने उनकी हत्या से हजार गुणा ऊर्जा लेकर उनके कार्यों को आगे बढ□ाने का निर्णय ले लिया है।

सावरकर जी आततायी का घोर विरोध करने में आनंदित होते थे। उनका मानना था कि आततायी शासक वर्ग का इतना प्रबल विरोध होना चाहिए कि उसका आततायी स्वरूप प्रबल विरोध की तपिश पाकर वैसे ही पिघलने लगे, जैसे सूर्य की गरमी पाकर बरफ पिघलने लगती है। सावरकर जी विरोध को आतंक से अधिक प्रबल करके रखने के पक्षधर थे। उनकी

यह मान्यता तर्कसंगत और वैज्ञानिक थी। कुश्ती के समय दोनों पहलवान एक-दूसरे से हाथ मिलाते समय ही एक दूसरे के बल का अनुमान लगा लेते हैं। दुर्बल पहलवान हाथ मिलाते समय ही और आंख-से-आंख मिलाते ही प्रबल पक्ष के सामने मनोवैज्ञानिक रूप से अपनी पराजय स्वीकार कर लेता है। इसलिए वीर सावरकर अपने पक्ष को विपक्षी पहलवान के सामने हर स्थिति-परिस्थिति में हावी-प्रभावी रखना चाहते थे। वह अहिंसा की जंग लगी तलवार के कुपरिणामों पर गहन चिंतन करते थे। उनका इतिहास बोध उन्हें बताता था कि यह प्रवृत्ति तो आत्मघाती है। इसलिए वह गांधीजी की अहिंसा को राष्ट्रघाती मानते थे। वह कहते थे कि शत्रु जिस शक्ति के साथ मैदान में खड□ा है, उससे सवायी शक्ति अर्जित कर उससे सामना किया जाना ही समझदारी होगी।

सन 1931 में जन्माष्टमी के अवसर पर 'श्रीकृष्ण चरित्र' पर बोलते हुए सावरकरजी ने कहा था-'श्रीकृष्ण ने अक्रूर के साथ मथुरा जाकर देखा तो कृष्ण की आंखें कंस के वैभव से चकाचौंध हो गयीं। निर्धन जनता का रक्त चूस-चूसकर कंस किस प्रकार पुष्ट हुआ है, यह कृष्ण ने प्रत्यक्ष देखा।' बोलते-बोलते वृत्तांत लिख लेने वाले गुप्तचर की ओर मुड□कर वे बोले-'मैं क्या कह रहा हूं, वह ठीक लिख लेना जी! मैं यह वर्णन इंग्लैंड का नहीं कर रहा हूं मैं तो कृष्ण ने कंस की नगरी में जाकर जो देखा, वही कह रहा हूं।' (लोग समझ गये थे कि सावकरजी क्या कहना चाहते हैं? और उन्होंने अंग्रेजों के गुप्तचर को किस प्रकार मूर्ख बना दिया है) तब सभा में हंसी के कहकहे मच गये।'

सावरकर जी की इस वक्तृत्व शैली का ऐसा ही एक उदाहरण और है, जब उन्होंने अपने विरोधियों को करारा उत्तर देकर चातुर्यपूर्ण ढंग से निरुत्तर कर दिया था। बात 1939 की 24 सितंबर की है। उस दिन उन्हें धारवाड□ के अन्नपूर्णा नाटकगृह में 'हिंदू संघटन' विषय पर भाषण करना था। लोगों ने उनके लिए बहुत ही अच्छी तैयारी की हुई थी। नियत समय पर सावरकरजी का भाषण प्रारंभ हो गया, परंतु तभी नाटकगृह के एक कोने से आवाज आयी- 'भाषण मराठी में ही क्यों, कन्नड□ में क्यों नहीं?' वास्तव में सभागार में कुछ कन्नड□भाषी लोग सावरकर जी का विरोध करने के लिए घुस आये थे। 'हिंदू संघटन' पर भाषण हो और उसका इस प्रकार तीखा विरोध हो, यह देखकर सावरकर जी जैसे राष्ट्रवादी चिंतक को बात जंची नहीं। जो व्यक्ति कदम-कदम पर 'हिंदू संघटन' की बात करता हो, उसके लिए भाषा की यह लड□ाई कष्टकर थी। समय के अनुसार सावरकर जी ने गंभीर और शांत मुद्रा में, परंतु ओजस्विता के साथ बोलना निरंतर जारी रखा। वह कहने लगे- 'मित्रों, क्षमा कीजिए। आज तक मेरा जीवन कारागृह में बीता, यह आप सभी भलीभांति जानते हैं। मैं जब अण्डमान में था, तब वहां अन्य भी बहुत से बंदीजन थे। उनमें कुछ पंजाबियों से मैंने पंजाबी सीखी, बंगालियों से बंगाली सीखी, और मद्रासियों से तमिल भाषा सीखी। किंतु मेरे दुर्भाग्य से वहां कोई कन्नड□ नहीं था। यदि होता तो मैं कन्नड□ भी सीख लेता।' इस उत्स्फूर्ति वाले, किंतु मर्माघाती उत्तर ने विरोधियों को बड□ा कड□ा संदेश दे दिया था।

सावरकर जी हों या स्वामी श्रद्धानंद जी हों, वे दोनों ही हिंदू संगठन की बात करते थे। इसके लिए उनकी मान्यता थी कि हिंदू को संगठित और एक करना इस देश की एकता और अखण्डता को मजबूत करना है। इसमें यदि मुस्लिम समाज सहयोगी होता तो उन्हें उससे कोई आपत्ति नहीं थी, परंतु मुस्लिम समाज के सम्मिलित न होने पर उन्हें अपना कार्य रोकना नहीं

था, कार्य को दोनों ही परिस्थितियों में पूर्ण करना था। हरिजनों के विषय में उनकी सोच थी कि ये समाज के आवश्यक अंग हैं, इसलिए इनका 'रोटी' पर अर्थात अपने सर्वांगीण विकास के अवसरों पर भी मौलिक और स्वाभाविक अधिकार है, जो इन्हें मिलना ही चाहिए। जबकि गांधी जी हरिजन के लिए आरक्षण जैसी घातक बीमारी के माध्यम से समाज के उच्च वर्ग से कुछ दया का प्रदर्शन करते हुए उन्हें कुछ दिलाना चाहते थे। गांधी जी की इस दया और सावरकर जी व श्रद्धानंद जी की स्वाभाविक अधिकार की भावना में भारी अंतर था। इस भारी अंतर ने गांधी जी के हरिजन को दलित से ऊपर नहीं उठने दिया, जबकि उसे अभी तक ऊपर उठ जाना चाहिए था।

दृष्टिकोण का यह अंतर बाद में नीतियों के अंतर में परिवर्तित हो गया, जिससे समाज की वर्तमान की कई विसंगतियों का निर्माण हुआ। आज के समाज का जातीय संघर्ष का परिवेश और विद्वेष भावना इसी नीतिगत अंतर का परिणाम है। दलितों को समान अधिकार मिलने चाहिए, पर किसी प्रकार की दया भावना के साथ नहीं अपितु उनके मौलिक अधिकार के रूप में उन्हें मिलने चाहिए। इसके लिए आवश्यक था कि हरिजनों को उनकी बस्तियों से निकालकर उच्च वर्गों के साथ लाकर बैठाया जाता और उनके मंदिर प्रवेश को खुलवाया जाता। सावरकर जी और श्रद्धानंद जी इसी व्यावहारिक दृष्टिकोण के समर्थक थे। जबकि गांधी जी हरिजनों के साथ प्रवास करके समस्या का समाधान करना चाहते थे। प्रवास का यह उपक्रम दिखने में अच्छा लगता है, परंतु वास्तव में यह उपक्रम सावरकर जी और श्रद्धानंद जी के उस उपक्रम से कम साहस भरा है, जिसमें हरिजनों को घर से निकालकर मंदिर प्रवेश कराने और उन्हें पुजारी बनाने तक का व्यावहारिक दृष्टिकोण अपनाया गया।

सावरकर का हिन्दी प्रेम

कांग्रेस ने स्वातंत्र्य वीर सावरकर को 'गद्दार' कहकर राष्ट्रीय भावनाओं के साथ एक बार पुन: 'गद्दारी' की है। वीर सावरकर एक ऐसे व्यक्तित्व का नाम है, जिनका समकालीन राजनीति में हर मुद्दे पर अपना ऐसा स्पष्ट चिंतन रहा, जो कालातीत बन गया, और आज तक नवीन बना हुआ है। उनकी स्पष्टवादिता और शुद्ध राष्ट्रवादी दृष्टिकोण कांग्रेस और ब्रिटिश सत्ताधीशों को सदा चुभते थे। कांग्रेस का यह दुर्भाग्य रहा है कि इस पार्टी ने हमारे देश के बहुत से स्वतंत्रता सेनानियों (विशेषत: क्रांतिकारियों को) को उसी दृष्टिकोण से देखा जिस दृष्टिकोण से उन्हें अंग्रेज देखा करते थे। अत: जिस दृष्टिकोण से अंग्रेजों ने सावरकर को देखा, उसी दृष्टि से कांग्रेस ने भी उनका मूल्यांकन किया। स्वतंत्रता के पश्चात की तीसरी पीढ□ी के उत्तराधिकारी कांग्रेस के राष्ट्रीय उपाध्यक्ष राहुल गांधी वीर सावरकर के विषय में प्रारंभिक ज्ञान भी नहीं रखते होंगे। उन्हें सावरकर के विषय में केवल इतना ज्ञान हो सकता है कि यदि इस व्यक्ति का नाम कहीं आए तो इसे उन्हें कांग्रेसी होने के कारण अपशब्दों से संबोधित करना है। क्यों? इसका उत्तर उनके पास संभवत: यही होगा कि इनके विषय में हम कांग्रेसी परंपरा से यही सुनते आए हैं कि यह हमारे विरोध में रहे हैं, इसलिए इनके प्रति असहिष्णु होकर बात करना हम कांग्रेसियों की प्रवृत्ति है।

वीर सावरकर इस देश की मिट्टी से बने थे, उन्हें इस भूमि के कण-कण से राष्ट्रवाद की सुगंध निकलती अनुभव होती थी। जबकि गांधी-नेहरू को इस देश की मिट्टी पर अंग्रेजों की 'आधुनिकता और खुलेपन' के अहसानों की सुगंध का रंग चढ□ा दिखाई देता था। वीर सावरकर और गांधी-नेहरू के चिंतन में यही मौलिक अंतर था।

इस आलेख में हम वीर सावरकर जी का हिंदी भाषा संबंधी दृष्टिकोण स्पष्ट करना चाहेंगे। वह भारत में भाषा शुद्धि आंदोलन के प्रणेता थे। उनकी इच्छा थी कि हमारे देश में हिंदी का प्रचार-प्रसार हो तथा इस भाषा को संस्कृतनिष्ठ शब्दों से सुभूषित किया जाए। अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए वीर सावरकर जी ने लिखा था-'अपनी हिंदी भाषा को विशुद्ध बनाने के लिए हमें सबसे पहले हिंदी भाषा में घुसाए गये अंग्रेजी व उर्दू के शब्दों को बाहर करना चाहिए। संस्कृतनिष्ठ हिंदी ही हमारी राष्ट्र भाषा है। हिंदी में अंग्रेजी व उर्दू शब्दों के मिश्रण से यह वर्ण संकरी भाषा बन गयी है।'

वीर सावरकर के इस चिंतन से प्रेरित होकर कई हिंदी भाषा के विद्वान सामने आए और उन्होंने संस्कृतनिष्ठ हिंदी को अपने लेखन का आधार बनाया। राजर्षि पुरुषोत्तम दास टंडन ने स्वीकार किया था कि मुझे संस्कृतनिष्ठ हिंदी के आंदोलन की प्रेरणा वीर सावरकर से ही प्राप्त हुई थी। वीर सावरकर की प्रेरणा से ही उनके क्रांतिकारी साथी श्रीगणेश रघुनाथ वैशंपायन ने पुणे में हिंदी प्रचार सभा की स्थापना की थी।

वीर सावरकर जी की हिंदी के प्रति यह श्रद्धाभावना उनके राष्ट्रप्रेम और संस्कृतिप्रेम को प्रकट करने वाली थी। उन्हें यह भलीभांति ज्ञात था कि जब तक भारत अपनी भाषा में सोचना, विचारना आरंभ नहीं करेगा, तब तक स्वतंत्रता आंदोलन गतिमान नहीं हो सकेगा, और यदि स्वतंत्रता मिल भी गयी तो उसका कोई मूल्य नहीं होगा, क्योंकि किसी राष्ट्र के आगे बढ□ने

के लिए उसकी अपनी भाषा का होना आवश्यक है। इसके लिए वह किसी प्रकार का समझौता करने को तैयार नहीं थे। उनका यह शुद्ध राष्ट्रवाद था। जिसे वह अकेले आगे ले जाकर बढ□ते जा रहे थे। इस शुद्ध राष्ट्रवाद को कांग्रेस, ब्रिटिश सत्ताधीश और मुस्लिम लीग मिलकर पलीता लगा रहे थे।

इन तीनों की भावनाओं का एकीभूत पुंज गांधीजी थे। जिन्होंने देश में हिंदी, उर्दू मिश्रित 'हिंदुस्तानी' नाम की भाषा को आगे बढ□ाने का और भारत में विकसित करने का राष्ट्रघाती कार्य किया। उनके इस प्रकार के कार्य से हिंदी को खिचड□ी भाषा बनाने में सहायता मिली। गांधीजी के राजनीतिक उत्तराधिकारी नेहरूजी ने 'हिंदुस्तानी' भाषा के इस लक्ष्य को आगे बढ□ाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। उसी का परिणाम है कि आज भारत में संस्कृतनिष्ठ हिंदी, हिंदी लेखकों की भाषा में से भी लुप्त-सी हो गयी है। हमारे देश की इस समय कोई भाषा नहीं है। इसे हम गांधी-नेहरू की साम्प्रदायिक लोगों के साथ मिलकर देश के हितों के साथ समझौता करने की उनकी राष्ट्रघाती नीति का एक अंग मानते हैं।

गांधीजी ने अपनी 'हिंदुस्तानी' भाषा में भगवान राम को जब शहजादा राम, महाराजा दशरथ को बादशाह दशरथ, और सीताजी को बेगम सीता कहते हुए महर्षि बाल्मीकि को मौलाना बाल्मीकि शब्दों से संबोधित करना आरंभ किया तो वीर सावरकर ने गांधी जी की इस प्रकार की अनुचित और अतार्किक भाषा शैली को अपनी वैज्ञानिक संस्कृत भाषा को विकृत करने वाली निम्न कोटि की चाल समझकर उसके लिए गांधीजी की कड□ी आलोचना की थी। उन्होंने यह भी स्पष्ट किया कि गांधी की ऐसी सोच देश की आत्मा हिंदुत्व पर प्राणघातक प्रहार है। इसके पश्चात पुणे में राजर्षि टंडन की अध्यक्षता में राष्ट्र भाषा सम्मेलन का आयोजन हुआ, तो सावरकर जी के प्रयासों से गांधीजी का 'हिंदुस्तानी' भाषा का प्रभाव गिरा दिया गया, और लोगों ने सावरकरजी का संस्कृतनिष्ठ हिंदी का प्रस्ताव पारित कर दिया।

सावरकरजी को उस समय तो अपने प्रयास में सफलता मिल गयी, परंतु कालांतर में जब सत्ता गांधीजी की कांग्रेस के हाथों में आई तो उसने अपनी पुरानी मान्यता को ही अपनाया और नेहरूजी ने जानबूझकर देश में 'हिंदुस्तानी' को प्रचलन में लाने का राष्ट्रघाती कार्य किया। यह लोकतंत्र की भावना के विरुद्ध था, क्योंकि पुणे सम्मेलन में उपस्थित लोगों ने हिंदुस्तानी के प्रस्ताव को गिरा दिया था, परंतु गांधीजी और नेहरूजी दोनों ही हठीले व्यक्ति थे, इसलिए उन्हें अपने ही प्रस्ताव को और अपनी ही सोच को सबकी सोच पर हावी रखने की एक हठ हो जाती थी। यह हठ निश्चय ही देश के लिए विश्वासघाती बनी। उन्होंने 'हिंदुस्तानी' को केवल इसलिए लागू कराया कि उन्हें वीर सावरकर के शुद्ध राष्ट्रवाद से घृणा थी और वह नहीं चाहते थे कि स्वतंत्र भारत में कोई भी ऐसी नीति अपनाई जाए, जिस पर सावरकरजी का चिंतन हावी हो। सावरकर संभवत: इस देश के एकमात्र ऐसे स्वतंत्रता सेनानी थे, जिन्होंने हिंदी भाषा को शुद्ध संस्कृतनिष्ठ बनाने के लिए एक हिंदी शब्दकोश की भी रचना की थी। इसमें उन्होंने शहीद के लिए 'हुतात्मा', फ्रू के लिए उपमुद्रित, मॉनोपोली के लिए एकत्व, मेयर के लिए महापौर जैसे शब्दों का चयन किया था। उन्होंने अनेक बार 'परकीय शब्दों का बहिष्कार करो' जैसे शब्दों का प्रयोग किया था।

यदि सावरकर की भाषा संबंधी यह नीति देश में अपनाई जाती तो आज हिंदी की कुछ और

ही स्थिति होती। संस्कृत का एक शब्द लें-पश्च या पृष्ठ। ये दोनों शब्द गांधी, नेहरू की 'हिंदुस्तानी' में इस रूप में स्वीकार न करके पीछे, और पीठ के रूप में स्वीकार किये गये हैं।

जिनका कोई वैज्ञानिक अर्थ नहीं है। इन्हीं दोनों शब्दों से 'हिंदुस्तानी' ने पच्छिम, पीछे, पछवा, पीठ, पछतावा, पिछवाड□ा जैसे अवैज्ञानिक शब्द हिंदी (हिंदुस्तानी) में रूढ□ या प्रचलित हो गये हैं। यदि सावरकर जी की चलती तो इन शब्दों के स्थान पर पश्चिम, पृष्ठ भाग, पश्चात, पश्चिमाभिमुख, पृष्ठ, पश्चात्ताप, प्रायश्चित जैसे शुध वैज्ञानिक शब्दों का प्रचलन हमारी भाषा में होता। नेहरू की कांग्रेस से पुरस्कार पाने के लिए चाटुकार साहित्यकारों ने हिंदी को 'हिंदुस्तानी' बनाने का संकल्प लिया। ऐसे कितने ही साहित्यकारों ने मनोवांछित पुरस्कार ले लिया है-यह अलग बात है कि उनके द्वारा हिंदी की बहुत बड□ी क्षति कर दी गयी है, पर जब शासन का उद्देश्य ही अपनी भाषा की क्षति कराना हो तो इसमें चाटुकार साहित्यकारों का क्या दोष? वास्तव में कांग्रेस आज भी इसी रास्ते पर आगे बढ□ रही है। यह कांग्रेस का दोगला राष्ट्रवाद है। सावरकरजी इसी राष्ट्रवाद के विरुद्ध थे। यही कारण है कि कांग्रेस को सावरकर गद्दार दिखाई देते हैं, पर गद्दार कौन था? संस्कृतिद्रोही और धर्मद्रोही कौन था? इसे निश्चित करने वाली कांग्रेस नहीं है। इसे निश्चित करेंगे इस देश की संस्कृति में और धर्म व इतिहास में आस्था रखने वाले वे करोड□ों लोग जो अब जाग चुके हैं और पिछले 70 वर्ष के काल में कांग्रेस के संस्कृतिद्रोही आचरण के किसी-न-किसी प्रकार से शिकार हुए हैं।

राजधर्म बनाम रामराज्य

क्रांतिवीर सावरकर जी का अपना सपना था कि 'राजनीति का हिंदूकरण' किया जाए। गांधी जी राजनीति के हिंदूकरण के विरोधी थे। सावरकर जी के इस कथन के प्रकाश में उनके आलोचकों ने उन्हें साम्प्रदायिक ठहराने का एकपक्षीय अनुचित प्रयास किया है। वीर सावरकर जी राजनीति के हिंदूकरण के जिस प्रकार समर्थक थे, आज उसे समझने की महती आवश्यकता है। उनके व्यक्तित्व की और चिंतन की इस उच्चतम पवित्रता को बड□ी सावधानी से समीक्षित करने की आवश्यकता है।

वीर सावरकर जी जिस काल में जी रहे थे और जिस ब्रिटिश सत्ता के विरुद्ध संघर्ष कर देश को स्वतंत्र करने-कराने में सहायक बने, उस काल में सारा-का-सारा विधि-विधान पूर्णत: तानाशाही लोगों की मानसिकता का प्रतिबिम्ब मात्र था। इतना ही नहीं अंग्रेजों से पूर्व मुगल बादशाहों या तुर्क सुल्तानों के काल का इतिहास भी यह बताता है कि उस काल के शासकों की नीतियां भी साम्प्रदायिक और उत्पीड□नात्मक प्रवृत्ति से भरी हुई थीं। उनकी नीतियों में और विधि-व्यवस्था में पक्षपाती होने का भारी दोष था। सावरकर जी इतिहास के परमविद्वान थे। उन्होंने इतिहास का गहन अध्ययन किया था। अन्यायपरक और पक्षपाती शासन से लड□ने वाले क्रांतिकारियों के लिए ब्रिटिश शासन के नियम-उपनियम या विधि-विधान स्वीकार्य नहीं थे, ऐसी ही मान्यता मुगलिया शासन व्यवस्था के विषय में थी। हमारे क्रांतिकारियों ने विदेशी शासन के विरुद्ध लंबा संघर्ष किया था। उस लंबे संघर्ष के विषय में यह जानना आवश्यक है कि वह लड□ा क्यों गया था? और किसके द्वारा लड□ा गया था? इन प्रश्नों का उत्तर खोजने पर पता चलता है कि भारत का दीर्घकालीन स्वतंत्रता संग्राम क्रूर मुस्लिम सत्ता और कालांतर में ब्रिटिश सत्ता के विरुद्ध लड□ा गया था। इस संघर्ष को लड□ने वाले राजा दाहर, गुर्जर सम्राट मिहिर भोज, पृथ्वीराज चौहान से लेकर महाराणा प्रताप, शिवाजी, दुर्गादास राठौड□, गुरु अर्जुन देव, गुरु गोविन्द सिंह, बंदा वीर वैरागी, छत्रसाल, रानी दुर्गावती, कश्मीर की रानी कोटा से लेकर भगत सिंह, रामप्रसाद बिस्मिल, चंद्रशेखर आजाद, सुभाषचंद्र बोस आदि सभी हिंदू ही थे। इन जैसे हजारों लोगों ने अपने-अपने समय में देश में क्रांति मचाये रखी और इनका उद्देश्य उस समय देश में हिंदू राजनीति को ही स्थापित करना था।

1857 की क्रांति के समय असहाय मुगल बादशाह बहादुरशाह जफर ने क्रांति के बाद हिंदू राजा के पक्ष में भी गद्दी छोड□ने की बात कही थी। ऐसा मुगल बादशाह ने इसलिए कहा था कि वह विदेशी अंग्रेजी सत्ता के अत्याचारों से दु:खी हो चुका था, तब उन परिस्थितियों में उसने भी देश में 'हिंदू राजनीति' को अंग्रेजी राजनीति से उत्तम और अधिक मानवीय समझा था। जब हमारे सारे स्वतंत्रता संग्राम का उद्देश्य ही हिंदू राजनीति की स्थापना करना था, तो उसके लिए वीर सावरकर ने 'राजनीति के हिंदूकरण' का यदि उद्घोष कर दिया था, तो क्या बुरी बात हो गयी थी?

सावरकर जी के आलोचक या तो यह सिद्ध करें कि राजा दाहर से लेकर सुभाषचंद्र बोस तक के समस्त क्रांतिकारियों के संघर्ष का उद्देश्य ब्रिटिश कानूनों या मुस्लिम शरीया के

अनुसार देश को चलाना था या फिर सावरकर जी के विषय में अनावश्यक और अनर्गल बातें करना बंद करें। अब प्रश्न है कि हिंदू राजनीति क्या है? इस प्रश्न को समझना इसलिए भी आवश्यक है कि इसी से सावरकर जी के 'राजनीति के हिंदूकरण' के रहस्य को समझा जा सकता है।

इस प्रश्न पर विचार करने के लिए अपेक्षित है कि राजनीति के परम लक्ष्य अर्थात उसके लोकल्याणकारी स्वरूप का ध्यान रखा जाए। इतिहास इस बात का साक्षी है कि साम्प्रदायिक शासन न्यायकारी और पक्षपातशून्य नहीं हो सकता। इसलिए राज्य का पंथनिरपेक्षतावादी होना आवश्यक है। ज्ञात रहे राज्य का यह पंथनिरपेक्षतावादी स्वरूप वास्तव में हिंदू राजनीति का मूल तत्व है। भारत ने विश्व को जो कुछ दिया है, उसमें सबसे मूल्यवान देन राज्य के पंथनिरपेक्षतावादी स्वरूप की देन है। यद्यपि इस विचार को हमारे संविधान में दिया गया है और राज्य से 'सैकुलर' बनने की अपेक्षा की गयी है, परंतु यह 'सैकुलर' शब्द हिंदू राजनीति के पंथनिरपेक्ष शब्द का स्थानापन्न नहीं है। इसका कारण यह है कि 'सैकुलर' शब्द को चरितार्थ और फलितार्थ करने के लिए भारतीय संविधान ने अपना कोई 'राजधर्म' घोषित नहीं किया है। इस महत्त्वपूर्ण विषय पर भारतीय संविधान का मौन रहना, इसकी सबसे बड□ी विडंबना है।

भारतीय संविधान में 'राजधर्म' संबंधी प्रावधान को स्थापित कराने के लिए आदि संविधान निर्माता महर्षि मनु के राजधर्म को समझना होगा। जिसके विषय में हमारा मानना है भारतीय राजनीति के हिंदूकरण की बात कहकर वीर सावरकर जी ने महर्षि मनु द्वारा प्रतिपादित राजधर्म को अपनाने का चिंतन किया होगा।

महर्षि मनु की मनुस्मृति या वेद, स्मृति आदि-आदि में जहां-जहां राजनीति के मानवतावादी स्वरूप की कल्पना की गयी है, उसको सावरकर जी अपनाने और व्यवहार में लागू करने के पक्षधर थे। यह ऐसी राजनीति होती, जिसे राजनीति ना कहकर 'राष्ट्रनीति' कहा जाता। इस राष्ट्रनीति का प्रथम कर्त्तव्य राष्ट्र की सेवा करना अर्थात जनकल्याण करना होता। ऐसे जनकल्याणकारी राष्ट्रनीति के उद्घोषक भारतवर्ष के लिए ही मि. मरे लिखता है-'यह (भारतवर्ष) सदैव ही पाश्चात्य जगत की श्रेष्ठतम भव्य एवं वैभवशाली कल्पनाओं में रहा है, सोने और हीरे-मोतियों से जगमगाता रहा है तथा सुगंधित और मोहक गंधों से सुवासित रहा है, यद्यपि इन शानदार बातों में कुछ काल्पनिक और भ्रांतिजनक भी लगता है, परंतु फिर भी भारत का भूलोक में एक असंदिग्ध एवं महत्त्वपूर्ण स्थान है। इसके महान एवं विविध दृश्यों एवं इसकी भूमि की मूल्यवान उत्पत्तियों की विश्व में कोई भी तुलना नहीं है।'

महात्मा गांधी जी ने भारत में 'रामराज्य' की स्थापना की बात कही थी। वह 'रामराज्य' कैसा होता-यह तो वे स्पष्ट नहीं कर पाये-पर हमारी दृष्टि में 'रामराज्य' और सावरकर की 'हिंदूनिष्ठ राजनीति' में कोई अंतर नहीं है। हिंदूनिष्ठ राजनीति से बना 'हिंदू राज्य' 'रामराज्य' का ही समानार्थक है। क्योंकि रामचंद्रजी के काल में साम्प्रदायिकता के स्थान पर शुद्ध मानवतावाद था, और सारी राजनीति ही मानवतावाद की पोषक थी। उस समय की राजनीति में राजा की योग्यता और शासक वर्ग के भी कर्त्तव्य वर्णित थे। ये कर्त्तव्य किसी संविधान या किसी स्मृति की केवल शोभा बढ□ाने के लिए नहीं थे, अपितु राज्य व्यवस्था में लगे हुए लोगों से इनको अपनाने की अनिवार्य अपेक्षा की जाती थी। यह दुर्भाग्यपूर्ण तथ्य है कि

गांधीवादियों ने गांधी जी के 'रामराज्य' की कल्पना को अपनी 'सैकुलरवादी' सोच की बलि चढ□ा दिया, और सावरकर जी की 'हिंदूनिष्ठ राजनीति अथवा राजनीति के हिंदूकरण' की सोच को बिना सोचे-समझे ही साम्प्रदायिक कहकर विस्मृति के गड्ढे में डाल दिया। अच्छा होता कि ये लोग हिंदूनिष्ठ राजनीति के रहस्य को समझते और लोगों को समझाते तो आज की कितनी ही समस्याओं की उत्पत्ति ही नहीं होती। राजनीति का हिंदूकरण करने का अभिप्राय मनु स्मृति की इस व्यवस्था में ढूंढ□ा जा सकता है।

मनु के आलोचक और भारत को 'हिंदू राष्ट्र' घोषित करने को पाप मानने वाले मनु के राजधर्म की व्यवस्था पर तनिक विचार करें कि इसमें साम्प्रदायिकता कहां है? दूसरे यह भी समझें कि इस व्यवस्था से किसी वर्ग विशेष का ही लाभ होता है या संपूर्ण देशवासियों को इससे लाभ मिलता है? इसमें दो बातें हैं-एक तो राजा का परम विद्वान होना अपेक्षित है, दूसरे वह राज्य की रक्षा न्याय से किया करे। हिंदूनिष्ठ राजनीति का यह प्रथम सूत्र सभी राष्ट्रवासियों के नायक को परमविद्वान होना अनिवार्य मानता है, और साथ ही सभी लोगों को यह विश्वास दिलाता है कि राज्य उनके साथ पक्षपात रहित होकर बिना किसी वैरभाव के व्यवहार करेगा। 'न्याय' का अभिप्राय ही यह है कि जिस वस्तु पर जिसका अधिकार है और जो वस्तु वास्तव में उसे मिल जानी चाहिए, वह उसे दे दी जाए।

राजनीति के हिंदूकरण का अभिप्राय है कि राजनीति को योगक्षेमकारी बना दिया जाए। क्योंकि योगक्षेमकारी राजनीति ही स्वाधीनता के योगक्षेमकारी स्वरूप की रक्षिका हो सकती है। योग का अर्थ है जो आपको मिल गया है उसकी रक्षा करना, और क्षेम का अर्थ है जो आपको मिलना शेष है-उसकी प्राप्ति में सहायक होना।

हिंदूनिष्ठ राजनीति का अभिप्राय है कि स्वाधीनता के योगक्षेमकारी अर्थात कल्याणकारी स्वरूप का लाभ देश के जन-जन को दिया जाता, पर साथ ही इस योगक्षेमकारी राजनीति का स्वाधीनता का एक अर्थ यह भी होता है कि जो आतंकी संगठन या आतंकी मानसिकता के लोग किसी व्यक्ति या व्यक्तियों के समूह के मौलिक अधिकारों का किसी भी प्रकार से हनन करते हैं, उनके विरुद्ध भी राज्य कठोरता का प्रदर्शन करता। क्योंकि लोगों की स्वाधीनता की रक्षा करना राज्य का दायित्व है और वैसे भी सब ओर से व्याकुल लोगों की रक्षा के लिए ही ईश्वर ने 'राजा पद' को बनाया है। इसलिए हिंदूनिष्ठ राजनीति के लिए राजा को दुष्टों के संहार की विशेष छूट दी जाती। जो लोग इस देश को अपनी पितृभू: और पुण्यभू: नहीं मानते और इसके विखण्डन की प्रक्रिया के ही सपनों में जीते हैं, उनसे राज्य को कड□ाई से निपटने की तैयारी करनी थी।

प्राचीनकाल से ही हर राष्ट्र की सरकारों का यह पुनीत दायित्व रहा है कि दुष्टों को मानव न मानकर दानव माना जाए और उनसे दानव वृत्ति से ही निपटा जाए, परंतु भारत में दुष्टों के भी मानवाधिकार खोजने की प्रवृत्ति 'सैकुलरिज्म' ने पैदा कर दी है। जिसके कुपरिणाम हमें भोगने पड□ रहे हैं। गांधी जी के 'रामराज्य' में भी दुष्टों के संहार में कोई लापरवाही नहीं बरती जाती। क्योंकि प्रभु राम तो स्वयं दुष्टों के संहारक और सज्जनों के उद्धारक रहे थे, परंतु 'सैकुलरिस्टों' ने इस व्यवस्था को ही पलट दिया। महर्षि मनु का कहना है- 'यह सभेश राजा इंद्र के अर्थात विद्युत के समान शीघ्र ऐश्वर्यकर्त्ता, वायु के समान सबको प्राणवत प्रिय और हृदय की बात जानने वाले न्यायाधीश के समान वर्तने वाला, सूर्य के समान न्याय-धर्मविद्या

का प्रकाशक, अंधकार अर्थात अविद्या अन्याय का निरोधक, अग्नि के समान दुष्टों को भस्म करने वाला वरुण अर्थात बांधने वाले के सदृश दुष्टों को अनेक प्रकार से बांधने वाला, चंद्र के तुल्य श्रेष्ठ पुरुषों को आनंददाता, धनाध्यक्ष के समान कोषों का पूर्ण करने वाला होवे।'

राजनीति के हिंदूकरण के लिए सावरकर जी राजा के इन आठ गुणों को भी अपनी राजनीति का मूलाधार घोषित करते। जिसे सैकुलरिस्टों ने अपनी चमड□ी को बचाने के उद्देश्य से संविधान में कहीं भी स्थान नहीं दिया है। स्पष्ट है कि राजा के इन आठ गुणों के आने से हमारा संविधान अपने राजधर्म को लेकर स्पष्ट होता। इसलिए 'हिंदूनिष्ठ राजनीति' के इन आठ गुणों को मानने से कोई आफत नहीं आनी थी, अपितु देश की कई समस्याओं का समाधान मिलता और देश के नायक का या जनप्रतिनिधियों का उच्च गुणों से विभूषित होना भी स्पष्ट हो जाता।

सावरकर जी के हिंदू राष्ट्र में 'राजनीति का हिंदूकरण' हो जाने पर कुछ ये बातें स्वाभाविक रूप से देखने को मिलतीं-

हिंदी को प्राथमिकता दी जाती-

सावरकर जी मूलरूप से मराठी भाषा को बोलने वाले थे, पर उनका अपना चिंतन अत्यंत राष्ट्रवादी और पवित्र था। मराठी भाषी होकर भी वह हिंदी के अनन्यतम भक्त थे। हिंदी को वह देश की एकता और अखण्डता के दृष्टिगत अपनाया जाना आवश्यक मानते थे, पर इसका अभिप्राय यह भी नहीं था कि वे भारत की अन्य क्षेत्रीय भाषाओं का विकास नहीं चाहते थे। उन्होंने मुसलमानों को भी हिंदी अपनाने के लिए कभी विवश नहीं किया था। अण्डमान में रहते उन्होंने हिंदी को सरकारी कामकाज की भाषा बनाने में सक्रिय सहयोग प्रदान किया था। जो हिंदू लोग अपने निमंत्रण पत्र उर्दू में छपवाने लगे थे, अब वे भी उन्हें हिंदी में छपवाने लगे थे। वह बातचीत के दौरान अण्डमान के लोगों को समझाते थे-'तुम हिंदू हो, हिंदी तुम्हारी राष्ट्रभाषा है। अण्डमान में तो वही धर्म भाषा है। तुम्हें चाहिए कि अपनी संतानों को यथाशीघ्र हिंदी पढ□ाओ।'

वह लिखते हैं- 'मैं उन्हें प्रेरित करता कि यदि तुम लोग सरकार के पास सामूहिक आवेदन पत्र भेजकर हिंदी के अध्ययन को आवश्यक करने की मांग करोगे तो सरकार विद्यालयों में हिंदी सिखाने की व्यवस्था अवश्य करेगी।'

हिंदी के प्रचार-प्रसार को वह इसलिए भी आवश्यक मानते थे कि इसके प्रचार-प्रसार से देश के बच्चों में रामायण, महाभारत, शिवाजी, महाराणा प्रताप, गुरु गोविन्द सिंह आदि के जीवन चरित्र पढ□कर राष्ट्रीय संस्कार उत्पन्न होंगे। जिससे हमारी राष्ट्रीय एकता का भाव विकसित होगा। सावरकर जी ने जिस प्रकार हिंदूनिष्ठ राजनीति के प्रति अपनी निष्ठा व्यक्त की थी और राजनीति का हिंदूकरण करने का सपना संजोया था, उसका एक ही लक्ष्य था-हिंदू राष्ट्र की स्थापना। उनके हिंदू राष्ट्र में हिंदी में संविधान होता, और हिंदी में ही सरकारी कार्य संपन्न होते, शासक वर्ग हिंदी में सोचता, हिंदी में बोलता और हिंदी में ही अपना लेखन कार्य करता। अण्डमान में अपने द्वारा की गयी हिंदी सेवा के विषय में सावरकर जी लिखते हैं:-

'मैं हिंदी के बारे में तमाम आक्षेपों और आशंकाओं का बार-बार समाधान करने का प्रयास

किया करता था। हिंदी का व्याकरण किस प्रकार पूर्णत: वैज्ञानिक है-उसका साहित्य कितना समृद्ध है, उसकी अभिव्यक्ति की क्षमता कितनी सशक्त है? समय-समय पर मैं बंदियों को समझाया करता था। मैं उन्हें यह भी समझाता था कि देश में हिंदी भाषियों की संख्या सर्वाधिक होने से भी वही राष्ट्रभाषा बनने के अधिकारी हैं।

.....रामेश्वरम् (दक्षिण भारत) का वैरागी संत तथा व्यापारी पृथ्वीराज के काल से भी पहले से तीर्थयात्रा के दौरान हरिद्वार और बद्रीनाथ आने पर हिंदी के माध्यम से ही कार्य चलाता आया है। चारों धामों की तीर्थयात्रा करने वाले हिंदुओं के बीच बातचीत का माध्यम हिंदी ही तो होती है। मैंने अपनी इन युक्तियों से राजबंदियों को हिंदी सीखने के लिए प्रवृत्त किया। साधारण बंदी भी हिंदी के महत्त्व को समझने लगे।'

भारतवर्ष के साथ विश्व की भी धरोहर बनती हिंदू राजनीति। वीर सावरकर जी का कथन है कि- 'हम एक सनातन और पुरातन राष्ट्र हैं, जब विश्व का मानव कच्चा मांस भक्षण करता था और अपने शरीर को रंगों से रंगता था, अज्ञान की गहराई में गोता लगाता था, तब हम उन्नति के शिखर पर विराजमान थे। विश्व संस्कृति और विश्व सभ्यता का प्रतिनिधित्व करते थे।' हिंदू राष्ट्र और हिंदूनिष्ठ राजनीति का अंतिम उद्देश्य ऐसे ही गौरवपूर्ण लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए निर्धारित की जाती, उसकी यात्रा का शुभारंभ 'जयहिंदू राष्ट्र' से होता, जिसका अभिप्राय होता- 'सबका साथ सबका विकास' परंतु उन मूल्यों के साथ जो कि संपूर्ण मानवता की धरोहर हैं और सामान्यत: यह सारा संसार जिसे वैदिक संस्कृति के नाम से जानता है। राजनीति का हिंदूकरण करने का अभिप्राय था कि सारी राजनीति के केन्द्र-अपने राष्ट्र को आत्मगौरव से अभिभूत कर डालना, और एक लक्ष्य निर्धारित कर उसकी प्राप्ति के लिए कमर कस लेना। महर्षि दयानंद जी महाराज ने भी सत्यार्थप्रकाश में छठे समुल्लास में आर्यों को चक्रवर्ती साम्राज्य स्थापित करने की प्रेरणा दी है। स्पष्ट है कि महर्षि दयानंद आर्यों के जिस चक्रवर्ती साम्राज्य की बात कर रहे थे, उसी को स्थापित करना अर्थात विश्व में वैदिक संस्कृति की पुन: धूम मचाना-सावरकर जी के हिंदू राष्ट्र का उद्देश्य था। यह बड□ दुर्भाग्य की बात है कि आत्मगौरव की इस विचारधारा को देश की राजनीति का अंग बनाने को कांग्रेस और उसके नेताओं ने पहले दिन से ही साम्प्रदायिक करार दिया। इसलिए राजनीति का हिंदूकरण करना (जो कि वास्तव में राजनीति का मानवतावादीकरण करना था) भी कांग्रेस को अतार्किक लगा।

हिंदू राजनीति के सात अवयवों को दी जाती प्राथमिकता-

हिंदू राजनीति के सात अंग माने गये हैं-

1. स्वामी- (शासक, सम्राट, राजा या राष्ट्रपति) यह राजा ब्राह्मण जैसा परमविद्वान, न्यायकारी और पक्षपात रहित व्यवहार करने वाले राजा के आठ गुणों से सुभूषित होता। जिसकी विधि लोककल्याण के लिए निर्मित की जाती और सदा लोगों के कल्याण में रत रहती।

2. अमात्य- (मंत्री या पुरोहित प्रत्येक विषय-मंत्रालय का विशेषज्ञ)मंत्री या अमात्य का अपने मंत्रालय के कामकाज और विषय का पूर्ण मर्मज्ञ होना अनिवार्य किया जाता। आजकल

के मंत्री अपने अधिकारियों की सलाह पर पूर्णत: निर्भर रहते हैं, कारण कि अधिकांश मंत्री अयोग्य होते हैं। इनकी अयोग्यता को छिपाने के लिए इनके नीचे योग्य अधिकारी बैठाये जाते हैं, पर यह प्रणाली तो अंग्रेजों ने अपनी अयोग्यता को छिपाने के लिए लागू की थी, पर भारत में अब तो अंग्रेजी शासन नहीं है। हां, इतना अवश्य है कि भारत में शासन की अंग्रेजी प्रणाली अब भी विद्यमान है। फलस्वरूप देश की राजनीति का 'मुखौटा' तो अयोग्य होता है, और उसे पीछे से कोई बताता-समझाता है। हम इसे लोकतंत्र कहते हैं, पर यह लोकतंत्र पीछे से नौकरशाही से शासित होता है, जिसे लोकतंत्र नहीं कहा जा सकता। 'हिंदूनिष्ठ राजनीति' में वास्तविक लोकतंत्र को साकार रूप देकर नौकरशाही की स्वेच्छाचारिता को समाप्त किया जाता और प्रत्येक जनप्रतिनिधि को एक 'जनलोकपाल' का दर्जा देकर उसे लोकहित का प्रहरी बनाने की हरसंभव चेष्टा की जाती।

3. जनपद या राष्ट्र- (राज्य की भूमि और प्रजा) आर्यावर्त कभी ये सारा भूमंडल कहा जाता था, अर्थात तब सारा भूमंडल ही आर्यों का था। कालांतर में इसकी सीमाएं घट गयीं तो भी मनु महाराज ने भूमध्यसागर के इस ओर का सारा भू-क्षेत्र आर्यों के अधीन मानकर इनके चक्रवर्ती राज्य की सीमाएं वहां तक स्थापित कर दीं।

इस राज्य की समस्त प्रजा वेदज्ञान की ज्योति से ज्योतित होकर अपने श्रेष्ठतम होने या आर्यत्व का परिचय देते रहने की अभ्यासी रही है। हिंदूनिष्ठ राजनीति का या 'राजनीति के हिंदूकरण' का अभिप्राय है कि देश की प्रजा को पुन: वेदज्ञान के प्रचार-प्रसार के प्रति समर्पित कर देना और अपने आर्यों के चक्रवर्ती साम्राज्य की सीमाओं को खोजने के लिए सचेष्ट हो उठना।

4. दुर्ग- दुर्ग आज के समय में यद्यपि अप्रासंगिक हो चुके हैं, परंतु उनका अभिप्राय या अर्थ परिवर्तन कर उनकी उपयोगिता को थोड□ा सकारात्मक सोच के साथ देखने व समझने की आवश्यकता है। हमारी सेना के निवास स्थान या छावनी, हमारे सैन्य उपकरण रखे जाने के केन्द्र, परमाणु बम आदि रखने के केन्द्र ये सभी आज के दुर्ग हैं। जिन तक हर किसी का पहुंचना आज भी संभव नहीं है। ये सारे केन्द्र जितनी भारी मात्रा में होंगे-शत्रु को उतना ही अधिक कष्ट होगा। वैसे दुर्ग शब्द के कई अर्थ हैं यथा-राष्ट्र का प्राचीर, खाई, राजधानी अथवा पुर। वर्तमान संदर्भों में राज्य की सशस्त्र सेनाओं की पूर्ण व्यवस्था।

इस प्रकार हिंदूनिष्ठ राजनीति में देश की सुरक्षा को प्राथमिकता दी जाती है। यदि राजनीति का हिंदूकरण करने की प्रक्रिया पहले दिन से प्रारंभ हो गयी होती तो नेहरूजी जैसों की मूर्खता के कारण देश को 1947-48 में कश्मीर (पीओके) के एक भाग से हाथ धोना नहीं पड□ता और 1962 ई. में चीन के हाथों करारी पराजय का सामना भी नहीं करना पड□ता।

तुर्कों मुगलों या अंग्रेजों ने कभी इस देश को अपना देश नहीं माना था, आज भी ऐसी शक्तियों को सत्ता सौंपना खतरनाक हो सकता है, जो इस देश का नमक खाकर गीत विदेशों के गाते हैं और राम-कृष्ण की संतानें होकर भी अपने आपको बाबर की संतानें मानते हैं। राजनीति के हिंदूकरण का यह सबसे प्रमुख तत्व है कि देश की सत्ता उन्हीं को मिलेगी, जो इस देश की माटी से प्यार करते हैं और इसके लिए सर झुकाने को ही नहीं, सर कटाने तक से भी तैयार रहते हैं। मैं जानता हूं कि बहुत से मुस्लिम ऐसे हैं, जो इस देश को इसी प्रकार

प्रेम करते हैं और यही कारण है कि उन्हें राजनीति के हिंदूकरण से या हिंदू राष्ट्र के निर्माण तक से कोई आपत्ति नहीं है, पर गांधीजी और नेहरूजी को सावरकर की यह सोच आपत्तिजनक लगती थी।

5. राष्ट्रीय कोष- देश की सरकार को देश चलाना होता है। देश चलाने के लिए कोष की आवश्यकता होती है। सरकार को सड□क, बिजली, स्वास्थ्य, शिक्षा आदि के सार्वजनिक कार्य करने होते हैं, जिसके लिए धन की आवश्यकता होती है, इसलिए सरकारें लोगों पर कर लगाकर अपने आय के स्रोत बनाती हैं। 'हिंदूनिष्ठ राजनीति' में आय के स्रोत बनाने के लिए 'राजा' या राष्ट्रपति लोगों पर कर ऐसे लगाता है जैसे धान से चावल को और उसके छिलके को अलग करने में यह सावधानी बरती जाती है कि छिलका तो अलग हो जाए पर चावल के दाने टूटने न पायें। ऐसे कर को देने के लिए देश की जनता को मनोवैज्ञानिक रूप से तैयार किया जाता और उन्हें यह समझाया जाता कि यदि आप ऐसा कर देंगे तो देश के विकास में आपकी सहभागिता भी सुनिश्चित होगी। आजकल लोग कर देते हैं, पर चोरी करते-करते देते हैं। 'इनकम टैक्स' से बचने के लिए तरह-तरह के जुगाड□ भिड□ाते हैं-यह सब इसलिए किया जाता है कि देश के लोगों को अंग्रेजों के काल से ही यह नहीं बताया जा रहा है कि आपका पैसा देश के विकास में काम आएगा। अंग्रेजों के काल में इस टैक्स को लोग दण्ड समझते थे, जिसे अंग्रेज लोग अपने देश को ले जाते थे। इसलिए लोग टैक्स देने से बचते थे।

देश को स्वाधीन हुए अब 70 वर्ष हो रहे हैं, पर हमारा टैक्स को दण्ड समझने का संस्कार अभी भी छूटता नहीं है। कारण यही है कि हमें यह नहीं समझाया जा रहा है कि टैक्स एक दण्ड न होकर देश की उन्नति में आपका एक अंशदान है। राजनीति के हिंदूकरण की प्रक्रिया में कर को सरकार एक चंदा के रूप में वसूलती है और देश के स्वयं सेवी संगठनों को और श्रमदान करने में विश्वास करने वालों को या सरकारी संस्थानों को जनहित के कार्य करने हेतु लौटा देती है।

इस प्रकार हिंदूनिष्ठ राजनीति में अंशदान श्रमदान में परिवर्तित हो जाता है। सारे हाथ एक साथ मिलकर विकास के लिए उठते हैं और मंजिलों को अपने पांवों तले ले आते हैं। 'सबका साथ सबका विकास' तब एक नया स्वरूप ले लेता है-'सबका सबके द्वारा विकास।' इस प्रकार हिंदूनिष्ठ राजनीति में देश का एक बहुत ही सुंदर स्वरूप उभर कर सामने आता है। हम मान लेते हैं कि गांधी जी के रामराज्य में भी ऐसी ही संभावनाओं की कल्पना समाहित रही होगी। यदि बापू ऐसा ही रामराज्य चाहते थे तो हमें उसे भी अपनाने में कोई आपत्ति नहीं है, पर उनके राजनीतिक शिष्य और देश के पहले प्रधानमंत्री पं. जवाहरलाल नेहरू ने अपने शासन में हिंदूनिष्ठ राजनीति के साथ-साथ गांधी जी के 'रामराज्य' की भी हवा निकाल दी थी। इस प्रकार गांधी जी की हत्या वास्तव में नेहरू ने की थी।

देश की सरकारों ने स्वतंत्रता के उपरांत जिस मार्ग का अनुकरण किया है, उससे देश में प्राचीनकाल से चला आ रहा श्रमदान का हमारा राष्ट्रीय संस्कार मर-सा गया है। फलस्वरूप हम छोटी-छोटी बातों के लिए सरकार पर निर्भर होकर रह गये हैं। गली-मोहल्लों की समस्याओं के लिए लोग कोई समाधान न खोजकर सड□कों पर आकर नारेबाजी करते हैं, धरना प्रदर्शन करते हैं, रोड जाम करते हैं। यह प्रवृत्ति ठीक नहीं है। मैंने देखा है कि एक मोहल्ले में 100-200 रुपये के बल्ब लगाकर लोग रात्रि में प्रकाश की व्यवस्था नहीं कर पाते

हैं। गली के अंधेरे को सह लेंगे, पर एक बल्ब अपने घर के सामने नहीं लगाएंगे। आप आरंभ करके देखिये, एक बल्ब गली में अपने घर के सामने लगाइये, मोहल्ले में रहने वाले दो-चार अन्य लोगों को आपसे प्रेरणा मिलेगी और आप देखेंगे कि गली का अंधेरा भाग गया।

इस संस्कार को बलवती करना, राजनीति का हिंदूकरण करना है। क्योंकि यह संस्कार हमारा प्राचीन राष्ट्रीय संस्कार है। हिंदूनिष्ठ राजनीति का विरोध करने वाले पहले सावरकर की राजनीति के हिंदूकरण की उक्ति का रहस्य समझें, तब कुछ कहें तो अच्छा है।

गांधी का राष्ट्रघाती 'हिंदुस्तानी' प्रेम

देश की राष्ट्रभाषा हिंदी के साथ कांग्रेस की दोगली और राष्ट्रद्रोही मानसिकता प्रारंभ से ही रही। वह यह निर्णय नहीं कर पाई कि इस देश की राष्ट्रभाषा और राजभाषा हिंदी ही रहेगी और उसे धीरे-धीरे संस्कृतनिष्ठ बनाकर देश की अन्य भाषाओं के उन शब्दों का संस्कृत मूल खोजकर भी उसमें डाला जाएगा, जो थोड□-बहुत परिवर्तनों के साथ अन्य भाषाओं में प्रचलित हैं। फलस्वरूप देश में भाषाई समस्या आज भी बनी हुई है। यदि कांग्रेस वीर सावरकर जी की नीति का पालन करती तो सारे देश में आज जिस प्रकार भाषाई दंगे होते रहते हैं, वे ना होते।

कांग्रेस ने अपने जन्मकाल से ही अंग्रेजों की चाटुकारिता करनी आरंभ कर दी थी, कदाचित इसी के लिए उसका जन्म भी हुआ था। कांग्रेस हमारे क्रांतिकारियों को हेयदृष्टि से देखती थी। अंग्रेजों से पूर्व जब देश के एक भाग पर मुगल शासन कर रहे थे, तब यहां विदेशी लोग बड□ी संख्या में आते रहे। उन दिनों देश में अपने राज्य के लिए मुगलों ने अरबी को राजभाषा बनाया था। अत: अरबी के विद्वान बाहर से बुलाये जाते थे, इतना ही नहीं कई बड□ सैन्य अधिकारी और बहुत से सैनिकों को भी मुगल लोग बाहर से ही बुलाया करते थे। मुगल दरबार में जो हिंदुस्तानी अधिकारी या कर्मचारी होते थे, उनकी अपेक्षा विदेशी भाषा अरबी के इन्हीं विद्वानों का और अधिकारियों व कर्मियों का वर्चस्व होता था। ऐसी परिस्थितियों में हमारे देश की मूल संस्कृति की और वास्तविक भाषा की उन दिनों पूर्ण उपेक्षा की गयी। जब अंग्रेज आये तो उन्होंने अपनी भाषा अंग्रेजी को यहां लागू किया। उनके सामने मुगलकालीन अधिकारियों में से अधिकांश ने आत्मसमर्पण कर दिया। 1857 की क्रांति के समय मुगल दरबार के या मुगलराज के ऐसे बहुत से अधिकारी थे, जिन्होंने भारतीय क्रांतिकारियों से बहुत से अंग्रेजों की प्राणरक्षा की थी। उनके इस कार्य के लिए अंग्रेजों ने उन पर अपनी विशेष कृपा दिखाते हुए उन्हें जागीरें व अन्य उपाधियां प्रदान की थीं। जिन मुगलों ने या देश के गद्दार लोगों ने अंग्रेजों की उस समय प्राणरक्षा की थी। अंग्रेजों ने उन्हीं लोगों को इस देश की मूलधारा का व्यक्ति माना। जो 1857 की क्रांति में विद्रोही थे-वे अंग्रेजों की दृष्टि में राजद्रोही या अपराधी थे। कालांतर में कांग्रेस ने भी अंग्रेजों की दृष्टि से इस देश की मूलधारा में विश्वास न रखने वाले लोगों के साथ प्रेमभाव प्रदर्शित किया। यहीं से अंग्रेजों की कृपापात्र कांग्रेस व मुगलिया मूलधारा के लोगों ने मिलकर देश में एक काल्पनिक 'गंगा-जमुनी संस्कृति' का अतार्किक निर्माण कर लिया। वास्तव में यह प्रयास भारत की उस मूल विचारधारा और संस्कृति को मारने के उद्देश्य से प्रेरित होकर किया गया था जो युगों-युगों से इस देश की मूलधारा कही जा रही थी। विदेशी सत्ताधारियों के विरुद्ध भारत की यही मूलधारा भारतवासियों को क्षोभ और आक्रोश से भरकर सदैव आंदोलित किये रखती थी।

1857 की क्रांति के समय सर सैय्यद अहमद खां बिजनौर के मुंसफ थे। उन्होंने वहां उस पद पर रहते हुए कुछ अंग्रेजों की प्राणरक्षा की थी। जिससे प्रसन्न होकर अंग्रेज सरकार ने उन्हें भी जागीर देनी चाही थी, पर उन्होंने अंग्रेजों का यह प्रस्ताव बड□ी सावधानी से ठुकरा दिया था। अंग्रेजों ने उन्हें प्रोन्नति दी। 1868 में वह बनारस में जज थे। वहां से अंग्रेज उन्हें छुट्टी

दिलाकर विलायत ले गये। वहां उन्हें पूर्ण प्रशिक्षण दिया गया। 1870 में जब गांधीजी एक वर्ष के थे, तब भारत के विभाजन की नींव रखते हुए अंग्रेजों ने सर सैय्यद अहमद खां को विलायत से पुन: भारत भेज दिया। तब उन्होंने भारत में आकर 'तहजीबुल-इखलाख' नाम की उर्दू पत्रिका निकालनी आरंभ की। उद्देश्य यही था कि भारत की अपनी भाषा संस्कृत को कैसे समाप्त किया जाए? इस पत्रिका के माध्यम से उन्होंने 'सामासिक संस्कृति' और दो राष्ट्रों के सिद्धांत का प्रचार करना आरंभ किया। उन्होंने इस देश की सामासिक संस्कृति उर्दू संस्कृति को बनाने का प्रयास किया। इसमें कहीं पर भी सर सैय्यद अहमद खां का भारत के प्रति राष्ट्रप्रेम नहीं झलकता। इसके विपरीत वह राष्ट्र के विघटन की बात कर रहे थे, पर कांग्रेस ने आगे चलकर उनके इन कार्यों पर राष्ट्रवाद की मुहर लगा दी। वीर सावरकर कांग्रेस के ऐसे कार्यों को उसकी राष्ट्रद्रोही मानसिकता का प्रतीक मानते थे और कांग्रेस उन्हें ऐसा करने से रोकने के कारण अपना घोर शत्रु मानती थी।

सर सैय्यद अहमद खां ने हिंदी की अपेक्षा हर स्थान पर उर्दू लाने की मांग करनी आरंभ की। 1887 ई. में उन्होंने मेरठ में एक जनसभा में कहा था-'मान लीजिए अब सारे अंग्रेज और उनकी समूची सेना भारत से चली जाती है। वे अपनी तोपें, शानदार हथियार और हरेक चीज साथ ले जाते हैं, तब हिंदुस्तान का शासक कौन होगा? उन हालात में क्या यह संभव है कि दो कौमें-हिंदू और मुसलमान-एक तख्त पर एक साथ बैठें, और वे सत्ता में बराबर हों? नहीं, बिलकुल नहीं। यह जरूरी है कि उनमें से एक दूसरे को हराकर नीचे धकेल दे। यह आशा करनी कि वे दोनों समान भाव से रह सकती हैं, असंभव की इच्छा करना है, और ऐसा सोचा ही नहीं जा सकता।'

('क्वेस्ट'-दिसंबर 1970)

कहा जाता है कि सर सैय्यद अहमद खां का यह भाषण अलीगढ□ यूनिवर्सिटी के अंग्रेज प्रिंसीपल थियोडोर बैक ने तैयार किया था। जिसने अपनी धूर्तता को सर सैय्यद अहमद खां के मुंह से कहलवाया था। जब गांधीजी ने राजनीति का क, ख, ग सीखना आरंभ किया तो मानो उन्होंने यह सौगंध उठायी कि वह अंग्रेजों के हितों को आहत करने वाली किसी भी गतिविधि में सम्मिलित नहीं होंगे। और यह सत्य भी है कि गांधीजी ने अपना यह वचन आजीवन निभाया। इसीलिए जस्टिस मार्कन्डेय काटजू ने गांधीजी को अंग्रेजों का एजेंट कहा है। जिस समय गांधीजी राजनीति में प्रवेश कर रहे थे उस समय तक अंग्रेज और सर सैय्यद अहमद खां जैसे लोग मिलकर भारत की हिंदी भाषा को मिट्टी में मिलाने की तैयारी कर चुके थे। गांधीजी की कांग्रेस उस षड्यंत्र में सम्मिलित थी। अपनी आत्मकथा के पृष्ठ 33 पर गांधीजी ने लिखा है-'आज तो मैं यह मानता हूं कि भारतवर्ष के उच्च शिक्षणक्रम में अपनी भाषा के सिवाय राष्ट्र भाषा हिंदी, संस्कृत, फारसी, अरबी और अंग्रेजी को स्थान मिलना चाहिए। इतनी भाषाओं की संख्या से डरने का कारण नहीं है। यदि भाषाएं ढंग से सिखाई जाएं और सब विषय अंग्रेजी द्वारा ही पढ□ने, समझने का बोझ हम पर न हो तो उपर्युक्त भाषाओं की शिक्षा भार रूप न होगी, बल्कि उनमें बहुत रस मिलेगा,...उर्दू को मैंने अलग भाषा नहीं माना है, क्योंकि उसके व्याकरण का समावेश हिंदी में हो जाता है।'

हंसराज रहबर जी इस कथन की व्याख्या करते हुए लिखते हैं कि गांधीजी के नजदीक

अंग्रेजी सीखना इसलिए आवश्यक है कि उसे अंग्रेजी शासकों ने हम पर आरोपित किया है। इसके अतिरिक्त फारसी और अरबी सीखना संभवत: इसलिए आवश्यक है कि मुसलमानों ने इनके साथ अपना धार्मिक संबंध जोड□ रखा है, इन्हें सीखे बिना अच्छी उर्दू सीखना संभव नहीं है।'

इस प्रकार गांधीजी भाषा के विषय को लेकर समझौतावादी हो गये, जिसे वीर सावरकर कतई स्वीकार नहीं करते थे। एक राष्ट्रवादी को छद्म राष्ट्रवाद प्रिय नहीं होता और एक समझौतावादी छद्म राष्ट्रवादी को शुद्ध राष्ट्रवादी प्रिय नहीं होता। यह ठीक है कि गांधीजी कई वर्ष तक हिंदी साहित्य सम्मेलन के अध्यक्ष रहे, परंतु कालांतर में जब मुस्लिम लीग ने उग्र होकर हिंदी का विरोध करना आरंभ किया तो समझौतावादी गांधी ने अपने पद से ही त्यागपत्र दे दिया। उन्हें राष्ट्रवाद के स्थान पर तुष्टिकरण अच्छा लगा और वह देश के हितों का समझौता करते चले गये। यहीं से गांधीजी हिंदी, हिंदू और हिंदुस्तान के विरोधी होते चले गये। इस प्रकार हिंदी को स्वतंत्र भारत में जो सम्मान मिलना चाहिए था उसकी भ्रूण हत्या गांधीजी ने 'हिंदी साहित्य सम्मेलन के अध्यक्ष' पद से त्याग पत्र देकर कर दी। हिंदुस्तानी को राष्ट्रभाषा बनाने के लिए नागपुर में 1937 में एक सम्मेलन बुलाया गया था। उससे लौटकर मौलवी अब्दुल हक ने 18 सितंबर, 1937 को मियां बसीर अहमद संपादक 'हुमायूं' लाहौर के लिए पत्र लिखा-'अनायतनामा पहुंचा। बहुत शुक्रगुजार हूं। मेरे और राजेन्द्रबाबू के बयान में कहीं हिंदी का जिक्र नहीं। हमने 'हिंदुस्तानी' शब्द इस्तेमाल किया है और हिंदुस्तानी की मुजमल तारीफ (उपयुक्त व्याख्या) भी कर दी है। यानी वह जुबान जो शमाली हिन्द (उत्तरी भारत) में बोली जाती है। हिंदी से मुताल्लिक बहस नहीं, झगड□ा सिर्फ रस्म रवत का है, अगर हमारे बयान के मुताबिक हिंदुस्तानी हिंदुस्तान के तमाम सूबों की दफ्तरी और तालीमी जुबान हो जाए तो इसमें सरासर हमारी जीत है।' इस कथन में 'सरासर हमारी जीत है' शब्दों पर ध्यान देने की आवश्यकता है। इनसे पता चलता है कि 'हिंदुस्तानी' को एक षड्यंत्र के अंतर्गत इस देश के लिए लाया गया था। उर्दू के शब्द इस भाषा में भरकर यह संदेश दिया गया कि हिंदी अपने आप में एक पूर्ण भाषा नहीं है, और उसे तहजीब सीखने के लिए उर्दू की शरण लेनी पड□गी। परिणामस्वरूप आज हिंदी के ऐसे बहुत से कवि हैं, जिनकी कविताओं में उर्दू शब्दों की भरमार होती है। उन्हें यह पता ही नहीं होता कि तुम हिंदी की सेवा कर रहे हो या फिर उर्दू की सेवा कर रहे हो।

दूसरी बात यह भी विचारणीय है कि 1947 में जब देश साम्प्रदायिक आधार पर विभाजित हो गया था और उर्दू समर्थकों ने अपना अलग देश ले लिया था तो उसके पश्चात भी देश में 'हिंदुस्तानी' को ही प्रचलन में क्यों लाया गया? क्या ऐसा केवल वीर सावरकर को नीचा दिखाने के लिए किया गया था? और यदि हां, तो क्या यह सीधे देश के साथ विश्वासघात नहीं था? गांधीजी ने एक बार सरदार पटेल से भी कह दिया था कि तुम्हें उर्दू सीखनी चाहिए। तब सरदार पटेल ने उनसे कहा था -'गांधीजी! अब यह मेरा शरीर 68 वर्ष की अवस्था का हो गया है, अब क्या उर्दू सीखेंगे? पर एक बात बताओ, आपने उर्दू सीखकर क्या उनका (मुस्लिम लीगियों या देश का विभाजन करने की मांग करने वाले लोगों का) हृदय परिवर्तन करने में सफलता प्राप्त की?' गांधीजी के चेहरे की भाव-भंगिमा देखने योग्य थी।

गांधी और भारतीय स्वतंत्रता

गांधीजी आजीवन अहिंसा की बात करते रहे। कांग्रेस ने भी इसे अपनाने की घोषणाएं कीं और स्वतंत्रता के पश्चात यह भी प्रचारित किया कि देश को आजादी केवल गांधीजी की अहिंसा के कारण ही मिली है। इस पर 1961 ई. में वीर सावरकर जी ने एक लेख लिखा-'क्या स्वराज्य का श्रेय केवल कांग्रेस को ही है?' उसमें वह लिखते हैं- अपनी पाठ्य पुस्तकों द्वारा सरकार विद्यार्थियों को सिखाती है कि गांधीजी की कांग्रेस ने भारत का शासन अंग्रेजों के हाथों से नि:शस्त्र क्रांति द्वारा लिया, किंतु असल में हुआ यह कि हमारी क्रांतिकारियों की प्रेरणा से हमारी शक्तिशाली सेना ने जब तलवार म्यान से निकालकर भारत की स्वतंत्रता के उद्देश्य से अंग्रेजों पर वार करना आरंभ किया और साथ ही अपने दूसरे साथियों को भी इसके लिए उकसाने लगे तो अंग्रेज घबरा गये और उन्होंने स्वतंत्रता दान करने की बात आरंभ कर दी। यह ऐतिहासिक तथ्य स्वयं ब्रिटिश प्रधानमंत्री ने भरी पार्लियामेंट में स्वीकार किया है।

इधर 1954 ई. में अगस्त माह में एक प्रसिद्ध जापानी ग्रंथकार श्री जे.जी. आहसावा ने 'दि टू ग्रेट इंडियंस इन जापान' नामक पुस्तक प्रकाशित की है। जिसमें उन्होंने रास बिहारी बोस का चरित्र चित्रण करते हुए उनके जापान में दिये गये अभूतपूर्व क्रांतिकारी कार्यों का वर्णन किया है।

दूसरे महायुद्ध के अवसर पर जब जापानी सेना ने सिंगापुर पर चढ□ाई की और अंग्रेज एवं अंग्रेजों की भारतीय सेना से उनका युद्ध छिड□ गया, तब सेनापति रास बिहारी बोस की आजाद हिंद सेना अंग्रेजी सेना से लड□ी थी। स्वतंत्रता के लिए लड□ 50 हजार सैनिकों में से करीब 25 हजार खेत रहे।

उक्त प्रसंग में उक्त पुस्तक में स्पष्ट लिखा है कि कैसे सिंगापुर में जापान के खिलाफ लड□ने वाली ब्रिटिश सेना के भारतीय सिपाही और अफसर रास बिहारी बोस के स्फूर्तिजन्य वक्तव्य के पश्चात आईएनए में हजारों की संख्या में सम्मिलित हो गये थे। दि इंडिपेंडेंस ऑफ इंडिया एक्ट पास करते समय तत्कालीन ब्रिटिश प्रधानमंत्री सर क्लीमेंट एटली ने जो कुछ कहा था, उस पर गंभीरता से विचार करें।

जब ब्रिटिश संसद में यह बिल प्रस्तुत हुआ, तब हिंदुस्तान पर अपने साम्राज्य को हटाने की बात से दु:खी होकर साम्राज्यवादी सर विसेंट चर्चिल ने पूछा- 'क्या यह एक्ट पास कर लेने की अपेक्षा दूसरा कोई मार्ग नहीं, जिसमें भारतवर्ष को स्वतंत्र न करके अपने अधीन ही रखा जा सके।' इसका उत्तर प्रधानमंत्री ने दो-तीन वाक्यों में इस प्रकार दिया-'भारतवर्ष को स्वतंत्रता देने का कारण है कि वहां की सेना अब अंग्रेजों के प्रति केवल रोटी के लिए वफादार नहीं रही और ब्रिटेन के पास अब उतनी शक्ति भी नहीं रही कि हिंदुस्तानी सेना को दबाये रखा जा सके।'

न तो ब्रिटेन के प्रधानमंत्री एटली ने ही और न ही किसी संसद सदस्य ने यह कहा कि अहिंसा के तत्वों से हमारा हृदय परिवर्तन हो गया है।

किसी भी व्यक्ति ने या संसद ने भारत स्वतंत्रता अधिनियम को पारित कराते समय साम्राज्यवाद एक अन्याय है और औपनिवेशिक व्यवस्था को विश्व से समाप्त किया ही जाना चाहिए, ऐसा कोई शब्द नहीं बोला। इसका अभिप्राय था कि उस दिन भी वे लोग साम्राज्यवाद और औपनिवेशिक व्यवस्था के समर्थक थे, पर किसी विवशता के कारण उन्हें भारत को स्वतंत्र करना पड□ रहा था। वे ना तो गांधीजी और ना ही किसी अहिंसात्मक गांधीवाद से तनिक भी विचलित थे और ना ही उसके कारण भारत को स्वतंत्र करना चाहते थे। 1857 से लेकर 1947 तक के 90 वर्षों में वह भारत के क्रांतिकारी आंदोलन की लपटों को बुझाते-बुझाते दु:खी हो चुके थे। ...और अब जब इन लपटों को और भी बलवती करने के लिए भारतीय सेना भी अपने देशवासियों के साथ आ खड□ी हुई तो उनके लिए देश को स्वतंत्र करना ही एकमात्र उपाय रह गया था।

सावरकर जी ने गांधीजी की अहिंसा पर करारा प्रहार करते हुए कहा था कि- 'सज्जनों के साथ सज्जनता से व्यवहार करना पुण्यकारक है। लेकिन जो अपने देश पर आक्रमण करने के लिए आता है, उसको शस्त्र से कड□ा उत्तर देने में हिंदू संस्कृति पाप नहीं बताती, पुण्य बताती है। गांधीजी कहते हैं-हम किसी से द्वेष नहीं करेंगे तो हिंसा करने की आवश्यकता ही नहीं रहेगी।' इस प्रकार के विचार भीरूता व भ्रम के ही परिचायक हैं। तुम लोग द्वेष करना छोड□ दोगे लेकिन दूसरे द्वेष नहीं करेंगे, इसकी हामी कौन दे सकता है? द्वेष यह क्रिया केवल प्रतिक्रिया नहीं है। राष्ट्र की सुरक्षा व अखण्डता बनाये रखना हमारा कर्त्तव्य है। उस कर्त्तव्य की पूर्ति के लिए जो हिंसा अनिवार्य होगी, वह भी पुण्यकारक ही मानी जाएगी। अत्यधिक अहिंसा के व्यवहार से हिंसा प्रबलतर बन जाएगी। अत्यधिक अहिंसातत्व का प्रचार करने वाले व्यक्ति को मैं या तो मूर्ख समझता हूं या दुष्ट। अत्यधिक अहिंसा के विचार केवल दुर्बल व कायरों के मुख से शोभा देते हैं। हमारे प्रेरणास्रोत प्रभु श्रीराम और श्रीकृष्ण हैं। वे हमसे कहते हैं कि शस्त्र लेकर दुष्टों का मूलनाश करो। आततायियों को बिना विचारे मार डालो, यह हमारे वेदों की आज्ञा है। यह हमारा धर्म है। हमारे पूर्वज सभी देवी-देवता, अवतार, राजा महाराज सशस्त्र थे, बड□-बड□ भयंकर शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित थे।'

गांधीजी ब्रिटिश सत्ताधीशों की चापलूसी कर रहे थे और मुस्लिम लीगी देशद्रोहियों का तुष्टिकरण करते जा रहे थे। जबकि सावरकर उनकी इस नीति को कायरता बता रहे थे। वह आततायियों के विरुद्ध कठोरता प्रदर्शन के समर्थक थे।

गंगा-जमुनी संस्कृति

गांधी जी अपने स्वभाव से ही हिंदू विरोधी थे। इसे आप ऐसे भी कह सकते हैं कि बापू देश का विभाजन कराने के लिए आतुर शक्तियों या व्यक्तियों के सामने इतने झुक गये थे कि वह 'हिंदू विरोधी' हो गये थे। इन्दुलाल याज्ञिक ने अपनी पुस्तक 'गांधीजी' पर लिखा है- 'हम पुराने जेलखाने में ही थे कि ईद का दिन आया। चाहे प्रत्यक्ष आश्चर्यजनक मालूम होता है, पर यह हकीकत है कि गांधीजी ने एक कट्टर हिंदू होने के बावजूद मिस्टर अली और दूसरे हमसाया मुसलमान कैदियों के साथ ईद मनाने में अच्छा-खासा साथ दिया। वह सारे दिन उन मुसलमान कैदियों से, जो कांटेदार जंगले से गुजरते हुए नजर आते थे, ईद की मुबारकबाद लेने में व्यस्त रहे। मिस्टर अली को मुबारकबादें और दुआएं देने में वह और भी उदारता से काम लेते रहे। इतने में शाम हो गयी। नया चांद कुछ क्षणों के लिए पेड□ों के ऊपर फिजा में झूलता और जेल की कठोर दीवारों को ताकता हुआ नजर आता रहा। मि. अली से ज्यादा गांधीजी उसे देखने के लिए उत्सुक जान पड□ते थे। बहरहाल जिस समय चांद की झलक दिखायी दी, गांधीजी के खुशी की कोई हद नहीं मालूम होती थी। वह इतने उल्लास में भर गये कि चांद का पूर्ण दृश्य देखने के उत्साह में जंगल से बाहर हो गये और आहलाद्वर्धक स्वर में मिस्टर अली को पुकारने लगे। वह भी पहुंच गये, और तुरंत हम सब लोग खुले अहाते में नये चांद का धुंधला-सा सौंदर्य देखने के लिए एकत्रित हो गये।'

गांधीजी के ऐसे कार्यों को उनकी अहिंसावादी नीति और प्रेम व बंधुत्व को बढ□ाने वाली उनकी प्रवृत्ति के रूप में प्रस्तुत किया गया है, परंतु इतिहास की घटनाएं बताती हैं कि गांधीजी जिन लोगों का हृदय परिवर्तन कराना चाहते थे, उनका हृदय परिवर्तन तो क्या होना था? हां, उनका राष्ट्र परिवर्तन अवश्य हो गया था। जिससे उस समय के सभी राष्ट्रवादियों के हृदय को गहरी ठेस लगी थी। किसी भी इतिहासकार ने यह खोजने या सोचने की आवश्यकता नहीं समझी कि गांधीजी अपने 'उद्देश्य' में असफल क्यों रहे, और कैसे उनकी ये तुष्टिकरण की नीतियां देश के विभाजन का कारण बन गयीं? तनिक सुशीला की डायरी के ये शब्द भी ध्यान से पढ□ जाएं- 'शाम को घूमते समय बापू बताते रहे कि कैसे वे एक बार कुतुबमीनार देखने गये थे। दिखाने वाला इतिहास का बड□ा विद्वान था। वह बता रहा था कि कुतुब के बाहर के दरवाजे की सीढ□ी से लेकर एक-एक पत्थर मूर्ति का पत्थर है। मुझसे यह सहन (क्योंकि बताने वाला हिंदू इतिहास के गौरवमयी पक्ष को क्यों बताने लगा था? उसे तो गांधीजी के अनुसार यही बोलना चाहिए था कि यह इमारत अमुक मुस्लिम सुल्तान ने हिंदू-मुस्लिम एकता के लिए अमुक समय में तैयार करायी थी) नहीं हुआ। मैं आगे बढ□ ही नहीं सका और वापस ले चलने को कहा और मैं वापस आ गया। पीछे इस्लाम के विषय में बातें होती रहीं। बापू जानते थे कि मुसलमानों ने (हिंदुओं पर) कितने अत्याचार किये हैं। फिर भी मुसलमानों के प्रति वह इतनी उदारता और इतना प्रेम बरतते हैं? मुसलमान उन्हें गाली देते हैं तो भी उनकी खातिर वह हिंदुओं से लड□ते हैं? यह चकित करने वाली चीज है। उनकी अहिंसा की कसौटी है।' (पृष्ठ 126)

गांधीजी ने राम-रहीम सब बराबर करके देख लिये, 'गंगा-जमुनी संस्कृति' को जन्म देकर

भी देख लिया, 'ईश्वर-अल्लाह तेरो नाम' भी गाकर देख लिया-पर वह देश का विभाजन नहीं रोक पाये। कारण कि उनका 'सत्य के साथ प्रयोग' सत्य के साथ न होकर मिथ्या और भ्रामक बातों के साथ हो रहा था। जिसे ना तो तार्किक ही कहा जा सकता था और ना ही उचित कहा जा सकता था। गांधीजी के इस आचरण से अंग्रेजों को, मुस्लिम लीग के मुस्लिम नेताओं को और कांग्रेस के हिंदू नेताओं को अपने हाथों में खिलाने का अवसर मिल गया।

गांधीजी अपने जीवन में यह नहीं समझ पाये कि जब कोई व्यक्ति हिंदू से मुसलमान या ईसाई बनता है, तो वह न केवल एक विधर्मी बन जाता है, अपितु भारत के बहुसंख्यक समाज का और स्वयं भारत का एक शत्रु भी बन जाता है। इसलिए सावरकरजी ने इतिहास को बड□ी सूक्ष्मता से समझा और उसके मर्म को हृदयंगम करके यह निष्कर्ष निकाला कि धर्मांतरण से व्यक्ति का पहले तो मर्मांतरण होता है, और फिर वह राष्ट्रांतरण में जाकर समाप्त होता है। सावरकरजी को इतिहास बोध था। उन्होंने इस तथ्य को समझा था कि भारत के ईरान, अफगानिस्तान आदि के रूप में टुकड□ केवल इसलिए हुए थे कि वहां धर्मांतरण की प्रक्रिया बड□ी तेजी से चली थी। गांधीजी और उनके राजनीतिक उत्तराधिकारी नेहरूजी इतिहास के इस सच से आंखें फेरने की डगर पर बढ□ते गये। वह इसे अतीत का दु:खद अध्याय मानते रहे और इस कल्पना में डूबे रहे कि अब ऐसा नहीं होने वाला। अब तो देश का बंटवारा (गांधीजी के शब्दों में) मेरी लाश पर ही होगा। अब सावरकरजी के व्यावहारिक दृष्टिकोण को भी समझने की आवश्यकता है। उन्होंने धर्मांतरण पर कहा था-'धर्मपरिवर्तन के इस षड्यंत्र की ओर पैनी दृष्टि से देखते रहो। केवल परमार्थ की चर्चा, और अद्वैत की चर्चा का विवाद अथवा चेतन-अचेतन वस्तुओं पर अनुसंधान का अर्थ धर्म नहीं है। धर्म का अर्थ है व्यवहार। धर्म अर्थात इतिहास, धर्म अर्थात राष्ट्र। यदि इंग्लैंड का राजा प्रोटेस्टैंट न हो तो उसे त्यागपत्र देना पड□ता है। अमेरिका के प्रेसीडेंट को प्रोटेस्टैंट बाइबिल की शपथ ग्रहण करनी पड□ती है। मध्य पूर्व का प्रत्येक छोटे-से-छोटा राष्ट्र भी धर्म प्रधान है। झूठी धर्मनिरपेक्षता की डींगें हांकने से क्या लाभ? मनुष्य धर्मरहित रह ही नहीं सकता। धर्म एक प्रचण्ड सामर्थ्य है। धर्महीन स्टॉलिन को भी यह स्वीकार करना पड□ा था।...न्याय के प्रति सहिष्णुता और अन्याय के प्रति असहिष्णुता यह हिंदू धर्म का पाठ है। अन्याय के प्रति सहिष्णुता कायरता है।....समय रहते सावधान रहने से धर्मांतरान्तर्गत राष्ट्रांतरण का संकट टल सकता है।'

सावरकरजी का यह चिंतन आज भी उतना ही नवीन है, जितना उनके लिखते समय नवीन था। आज भी भारत को धर्मनिरपेक्ष रहने के लिए वही देश-प्रेरित करते हैं, जो स्वयं ईसाई देश या मुस्लिम देश कहलाने में गौरव अनुभव करते हैं। उन्हें पता है कि भारत में उनका 'मिशन' तभी सफल हो सकता है, जब यह देश धर्मनिरपेक्ष रहे। यदि सावरकरजी और गांधीजी व नेहरूजी को एक वैद्य मान लिया जाए और देश को एक रोगी मान लिया जाए, तो गांधी-नेहरू जिस प्रकार से अपने रोगी का उपचार करना चाहते थे, उससे रोगी का रोग समूल नष्ट होने वाला नहीं था। उनके उपचार से रोग बढ□ता ही जा रहा था और रोगी निरंतर 'कोमा' की ओर जा रहा था। जबकि सावरकर आयुर्वेदाचार्य थे, वह रोग को समूल नष्ट करने के लिए उपचार कर रहे थे। वह मूल पर प्रहार कर रहे थे और धर्मांतरण को रोग बढ□ाने में सबसे अधिक प्रबल कारण सिद्ध कर रहे थे, इसलिए उसे रोकने के लिए कह रहे थे। उनका मानना था कि मुसलमानों को संवैधानिक रूप से सारे मौलिक अधिकार तो प्रदान किये जाएं,

किंतु मजहबी आरक्षण की व्यवस्था को न रखा जाए। वह जातिगत आरक्षण के भी विरोधी थे-इसके स्थान पर वह आर्थिक आधार पर आरक्षण के समर्थक थे, कहने का अभिप्राय है कि सावरकरजी 'लोकोत्तर दृष्टा' थे। वह आरक्षण को जाति या साम्प्रदायिक झगड□ों का मूल कारण मानते थे। आज की परिस्थितियां बता रही हैं कि गांधी-नेहरू ने जिस प्रकार भारत रूपी रोगी का उपचार किया, उससे रोगी का रोग और गहरा गया है। आज प्रत्येक प्रकार का आरक्षण देश के गले की हड्डी बन गया है। चारों ओर अशांति है। यह अशांति गांधी-नेहरू की नीतियों का परिणाम है।

जहां तक अब कांग्रेस द्वारा सावरकरजी जैसे दूरदृष्टा को 'गद्दार' कहे जाने की बात है, तो यह रोग भी कांग्रेसियों में पुराना रहा है। नेहरूजी ने प्रधानमंत्री रहते सशक्त क्रांतिकारियों को एक बार 'विकृत मानसिकता वाले' कह दिया था। जिनमें भगतसिंह भी सम्मिलित थे-आज की कांग्रेस ने सरदार भगतसिंह को क्रांतिकारी मानकर अपने नेता नेहरू को 'आधा झूठा' तो स्वयं ही सिद्ध कर दिया है। तब सावरकर जी ने नेहरूजी को उत्तर दिया था-'नेहरूजी के मुख से खुदीराम बोस प्रभूति सशस्त्र क्रांतिकारियों को 'विकृत मनोवृत्ति' का बताया जाना घोर शर्मनाक और आपत्तिजनक है। क्रांतिकारी राष्ट्रभक्तों की मनोवृत्ति विकृत नहीं थी, अपितु उनकी घोर उपेक्षा करने वाले ही विकृति के शिकार हैं।' नेहरूजी के पास सावरकर जी की इस बात का कोई उत्तर नहीं था।

राहुल गांधी को सावरकरजी को 'गद्दार' कहने से पहले अपने पूर्वजों का ही इतिहास पढ□ना चाहिए था। क्योंकि जिस समय 26 फरवरी, 1966 को सावरकरजी का देहांत हुआ था, उस समय देश की प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी थीं। उन्होंने प्रधानमंत्री के रूप में 1980 में सावरकर जन्म शताब्दी के लिए अपनी ओर से 11 हजार रुपये का चेक दिया था और सावरकरजी को देश के एक महान सपूत के रूप में स्मरण किया था। इस प्रकार श्रीमती गांधी ने नेहरूजी द्वारा क्रांतिकारियों को 'विकृत मानसिकता' वाला कहने के शेष आधे झूठ की क्षतिपूर्ति कर दी थी। श्रीमती गांधी ने वीर सावरकर पर एक डाक टिकट भी जारी किया था, जो इस बात का प्रमाण था कि कांग्रेस सरकार वीर सावरकर को एक 'राष्ट्रवादी योद्धा' के रूप में मान्यता देती है।

अब राहुल गांधी पूर्व में ही पूर्णत: स्थापित एक सत्य को यदि झुठला रहे हैं, तो वह अपने पूर्वजों को ही अपमानित कर रहे हैं।

अब एक और तथ्य की ओर आते हैं। जैसे नेहरू जी ने सशस्त्र क्रांतिकारियों को विकृत मानसिकता वाला कहा था वैसे ही गांधीजी ने 9 अप्रैल, 1925 को 'यंग इंडिया' में शिवाजी महाराज को 'कुमंत्रित देशभक्त' लिख दिया था। उन्हें अपने कहे को सुधारने में आठ वर्ष का समय लगा। तब उन्होंने 20 नवंबर, 1933 को एक अन्य पत्र में अपनी भूल सुधार की। गांधीजी ने क्रांतिकारियों के विषय में अपने कथन को आठ वर्ष पश्चात सुधार लिया था और नेहरू की बात को इंदिरा गांधी ने सुधार लिया था, अब राहुल की कांग्रेस की मूर्खता को कौन और कितने समय में सुधारेगा? लगता तो यह है कि कांग्रेस की बार-बार की मूर्खता को अब कोई और नहीं, जनता ही सुधारेगी। क्रांतिकारियों के अपमान का यह क्रम अब टूटना ही चाहिए। समय अब एक पूर्ण उत्तर की प्रतीक्षा में है।

क्रांतिकारियों के विरोधी थे गांधी

बात दिसंबर, 1929 की है। यही वह वर्ष और महीना था, जब कांग्रेस भारत की स्वतंत्रता के लिए अपनी पुरानी मांग 'अधिशासी अधिराज्य' अर्थात डोमिनियन स्टेटस-को छोड□कर पूर्ण स्वराज्य की मांग करने वाली थी, और इसी माह के अंत में कांग्रेस ने लाहौर में अपनी बैठक में पूर्ण स्वाधीनता का संकल्प प्रस्ताव पारित कर दिया। कहने का अभिप्राय है कि 44 वर्ष पुरानी कांग्रेस अभी तक देश के लिए नहीं लड□ रही थी, अभी तक तो वह पूर्णत: अंग्रेजों की 'सेफ्टी वॉल्व' के रूप में कार्य कर रही थी। वह चाहती थी कि उसके 'अधिनायक' देश में युग-युगों तक शासन करते रहें। इसीलिए 1857 की क्रांति को भारत का प्रथम स्वातंत्र्य समर घोषित करने की आवश्यकता कांग्रेस को कभी नहीं पड□ी।

23 दिसंबर, 1929 को वायसराय लार्ड इर्विन जब दिल्ली आ रहा था, तो निजामुद्दीन के निकट उसकी ट्रेन पर क्रांतिकारियों ने बम से हमला कर दिया। इस बमकाण्ड की गांधीजी ने तीव्र आलोचना की थी। उनका यह लेख 'यंग इंडिया' में प्रकाशित किया गया था। क्रांतिकारियों के विरुद्ध लिखे गये इस लेख में गांधीजी ने जी भरकर विषवमन किया था, साथ ही जनता से अपील की थी कि वह इन क्रांतिकारियों का साथ न दे। गांधीजी के इस आलेख पर क्रांतिकारी दल ने अपना घोषणा पत्र जारी किया। जिसका शीर्षक था-'फिलॉसफी ऑफ द बम'। इस लेख को उस दिन देशभर में चुपचाप वितरित किया गया, जिस दिन कांग्रेस ने (26 जनवरी, 1930 को) पूर्ण स्वाधीनता दिवस मनाया था। इसमें लिखा था-'हाल ही की घटनाओं से, जिनसे वायसराय की ट्रेन को बम से उड□ाने की कोशिश, पर कांग्रेस का प्रस्ताव और बाद में 'यंग इंडिया' में गांधीजी का लेख विशेष रूप से उल्लेखनीय है, जाहिर है कि इंडियन नेशनल कांग्रेस ने गांधीजी के साथ मिलकर क्रांतिकारियों के विरुद्ध युद्ध शुरू कर दिया है। इसके अतिरिक्त प्रेस और प्लेटफॉर्म से भी उनकी कड□ी आलोचना की गयी है। अफसोस की बात है कि उन्हें या तो जानबूझकर या अज्ञान का कारण हमेशा गलत ढंग से पेश किया जाता है, और उन्हें समझने की कोशिश नहीं की जाती। क्रांतिकारी अपने आदर्शों और अपने कामों पर जनता की आलोचना से परेशान नहीं होते, बल्कि वे उसका स्वागत करते हैं, क्योंकि उससे इन्हें ऐसे लोगों को जो दिल से उन्हें समझना चाहते हैं, क्रांतिकारी आंदोलन के मूल सिद्धांत और आदर्श समझाने का अवसर मिलता है। जिनसे यह आंदोलन प्रेरणा और शक्ति ग्रहण करता है। अतएव घोषणा पत्र इस आशा के साथ प्रकाशित किया जा रहा है कि इससे जनसाधारण को क्रांतिकारियों को समझने का अवसर मिलेगा और वे विरोधी प्रचार से गुमराह न होंगे।'

हमारे क्रांतिकारियों ने जो कुछ इस घोषणा पत्र में लिखा था, वही उस समय के भारत का सच था। क्रांतिकारियों का लक्ष्य स्पष्ट था। वह पहले दिन से ही पूर्ण स्वाधीनता की मांग करते हुए चले थे, पर जब कांग्रेस को अपनी भूल का अनुभव हुआ और उसने भी पूर्ण स्वाधीनता का संकल्प व्यक्त किया, तो उसने तब भी अपना संघर्ष अंग्रेजों के विरुद्ध न चलाकर अपने क्रांतिकारियों के विरुद्ध ही चलाया था। जब कांग्रेस ने पूर्ण स्वाधीनता की मांग का संकल्प व्यक्त करने के लिए लाहौर अधिवेशन का शुभारंभ किया, तो हर कांग्रेसी को इस बात का

घोर कष्ट हो रहा था कि क्रांतिकारियों ने अंग्रेज वायसराय की हत्या के उद्देश्य से उसकी गाड□ी के नीचे बम रख दिया है। इसलिए गांधीजी ने पहले दिन ही प्रस्ताव रखा कि यह कांग्रेस इस बमकाण्ड की तीव्र निंदा करती है। अच्छा होता कि कांग्रेस पूर्ण स्वाधीनता की मांग के अपने संकल्प के साथ अपने क्रांतिकारियों का साथ देने का भी संकल्प प्रस्ताव पारित करती। किसी भी कांग्रेसी का यह कह देना कि कांग्रेस का हिंसा में विश्वास नहीं था-उचित नहीं है। विशेषत: तब जबकि उन्होंने मुस्लिम लीग की हिंसा और अंग्रेजों की हिंसा की कहीं आलोचना या तो की ही नहीं, या करने में जानबूझकर प्रमाद का प्रदर्शन किया। अपने घोषणा पत्र में क्रांतिकारियों ने आगे लिखा था- 'क्रांतिकारियों का विश्वास है कि देश की मुक्ति का एकमात्र मार्ग क्रांति है। वे जिस क्रांति के लिए दिन-रात काम कर रहे हैं, उसका परिणाम विदेशी सरकार और उसके पिट्ठुओं (कांग्रेसियों) तथा जनता के सशस्त्र संघर्ष के रूप में ही प्रकट नहीं होगा, अपितु वह देश में एक नया समाज स्थापित करने का कारण बनेगा। ऐसी क्रांति पूंजीवादी व्यवस्था, विषमता तथा विशेषाधिकारों को सदा के लिए दफना देगी। यह आपके लिए प्रसन्नता और उन करोड□ों इंसानों के लिए, जो विदेशी साम्राज्यवादियों और भारतीय पूंजीवादियों की लूट-खसोट का शिकार बने हैं, समृद्धि का संदेश लाएगी। इससे देश का वास्तविक रूप संसार के सामने आएगा, और वह एक नये राज्य और एक नये समाज को जन्म देगा। ...जनता का खून चूसने वाले वर्गों को सदा के लिए राजनीतिक सत्ता से वंचित कर देगा। क्रांतिकारियों को नौजवानों के असंतोष में इस आगामी क्रांति के चिह्न दिखाई दे रहे हैं। ...गुलामी के अहसास और आजादी की तड□प से आखिर वे जोश में आकर जालिमों को मौत के घाट उतारने के लिए मैदान में निकल आएंगे। ...आज तक संसार में जितनी भी क्रांतियां हुई हैं, उनसे हमारे इस दृष्टिकोण का समर्थन होता है।'

यह घोषणा पत्र बहुत लंबा था। इसमें देश की पूर्ण स्वाधीनता का वास्तविक संकल्प छिपा था। अब प्रश्न यह है कि यदि कांग्रेस भी वास्तव में ही अब पूर्ण स्वाधीनता की बातें करने लगी थी, और उसे प्राप्त करने को ही अपना लक्ष्य घोषित कर चुकी थी तो उसे अपने क्रांतिकारियों की इस घोषणा को अपनाने में क्या आपत्ति थी? वास्तव में कांग्रेस पूर्ण स्वाधीनता के साथ-साथ अंग्रेजों के प्रति 'पूर्ण सहृदयता' को भी अब बनाये रखना चाहती थी। ...और यही वह बेमेल खिचड□ी थी, जिसने कांग्रेस को अपने लोगों के साथ लगकर आंदोलन चलाने से रोका।

घोषणा पत्र में आगे कहा गया था- 'आओ, अब यह देखें कि कांग्रेस क्या कर रही है? उसने अपना ध्येय औपनिवेशिक दर्जे से बदलकर पूर्ण स्वाधीनता कर लिया है, इसके परिणामस्वरूप उससे आशा की जा सकती है कि वह ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध युद्ध की घोषणा करेगी, पर इसके विपरीत उसने क्रांतिकारियों के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी है। उनका यह प्रस्ताव जिसके द्वारा 'वायसराय -ए-हिंद' लॉर्ड इर्विन की गाड□ी को बम से उड□ाने की निंदा की गयी है, इस सिलसिले की पहली कड□ी है। इस प्रस्ताव का प्रारूप गांधीजी ने तैयार किया था और उन्होंने पास कराने के लिए एड□ी से लेकर चोटी तक का जोर लगा दिया। इसके उपरांत यह प्रस्ताव 1713 के सदन में 81 वोटों के बहुमत से ही पारित हो सका। क्या यह मामूली बहुमत सच्ची राजनीतिक आस्था का परिणाम था? इस सिलसिले में सरलादेवी चौधरी का हवाला देना उचित होगा। वह आजीवन कांग्रेस की पक्की

भगत रही हैं। उनका कहना है कि गांधीजी के बहुत से अनुयायियों से बात करने पर पता चला कि उन्होंने महज गांधीजी से वफादारी प्रकट करने के प्रस्ताव का समर्थन किया, वरना वे प्रस्ताव के पक्ष में नहीं थे...इस प्रस्ताव का एक दु:खद पहलू भी है और उसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। वह पहलू यह है कि इस बात के बावजूद भी कि कांग्रेस अहिंसा की नीति पर चल रही है और वह पिछले 10 साल से उसका प्रचार कर रही है, और इसके बावजूद प्रस्ताव के समर्थकों ने क्रांतिकारियों को कायर और उनके कृत्य को बर्बर घोषित किया, इसके अलावा गांधीजी के एक चेले ने धमकी भरे लहजे में यहां तक कहा कि अगर वे गांधीजी का नेतृत्व चाहते हैं, तो उन्हें एक मत से प्रस्ताव पारित करना चाहिए। यह प्रस्ताव बहुत मामूली बहुमत से पारित हुआ। इससे निस्संदेह यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि देश क्रांतिकारियों के साथ है। अत: हम गांधीजी के आभारी हैं कि उन्होंने इस मामले को बहस का विषय बनाकर संसार को यह जानने का अवसर दिया कि अहिंसा के गढ□ कांग्रेस में भी यदि अधिक नहीं तो उतने ही लोग क्रांतिकारियों के साथ हैं, जितने गांधीजी के साथ हैं। गांधीजी ने इस प्रस्ताव को पास कराने के बाद क्रांतिकारियों पर आक्रमण के लिए कलम उठाई और 'दि कल्ट ऑफ दि बम' के नाम से एक लेख लिखा, उनकी यह सफलता (प्रस्ताव पास कराना) उतनी उनकी विजय नहीं, जितनी हार है...।'

इससे पूर्व गांधीजी देशभक्त क्रांतिकारियों को 4 जनवरी, 1928 को अपने द्वारा जवाहरलाल नेहरू को लिखे गये एक पत्र में 'शरारती और हुल्लड□बाज' कह चुके थे। उस समय उनका यह संकेत चंद्रशेखर आजाद, सरदार भगत सिंह, राजगुरु, सुखदेव आदि की ओर था। जिसे देखकर सिद्ध होता है कि राहुल गांधी यदि आज भी जे.एन.यू. प्रकरण में देशविरोधी नारे लगाने वालों के साथ खड□ दिखाई दे सकते हैं, तो इसमें उनका कोई दोष नहीं है। यह अवगुण या कुसंस्कार उन्हें विरासत में मिला है। उसी अवगुण या कुसंस्कार के कारण आज वह वीर सावरकर जैसे देशभक्तों को 'गद्दार' कह रहे हैं। जिन्होंने 'गद्दारी' को देशभक्ति माना हो, उनके हाथ से देशभक्तों को देशभक्ति का प्रमाण पत्र मिलने की अपेक्षा भी नहीं की जा सकती।

कांग्रेस ने सिरों की गिनती के खेल वाले लोकतंत्र का प्रारंभ से ही दुरुपयोग किया है। पहले तो कांग्रेस में उन्हें भरो, जो गांधी-नेहरू की जय बोलें-फिर उन पर यह अनिवार्य शर्त लगाओ कि हम जो कहें वही तुम्हें कहना है, और उसके उपरांत बाहर आकर कह दो कि सब कुछ लोकतांत्रिक प्रक्रिया से किया गया है। इसके उपरांत भी 1713 में से लगभग आधे से अधिक सदस्य गांधीजी के प्रस्ताव के विरोध में आ जाएं-तो यह बड□ी बात थी, जो यह सिद्ध करती थी कि कांग्रेसी भी अपने क्रांतिकारियों के साथ थे। यह अलग बात है कि इन आधे से अधिक विद्रोही कांग्रेसियों में से कुछ को गांधीजी ने अपने व्यक्तिगत प्रभाव से तोड□कर क्रांतिकारियों के विरोध में खड□ा करके दिखा दिया। कांग्रेस की ऐसी परिस्थितियों को आप लोकतंत्र नहीं कह सकते। यह लोकतंत्र की हत्या थी-अथवा जलती हुई एक चिता थी-जिसमें उठा-उठाकर हमारे क्रांतिकारियों को गांधीजी जैसे कांग्रेसी अपने हाथों से डाल रहे थे। देशभक्तों के साथ ऐसा अशोभनीय व्यवहार क्या माना जाए-देशभक्ति या देश के साथ 'गद्दारी' ? निर्णय पाठक स्वयं करें।

सुभाषचंद्र के मार्गदर्शक सावरकर

जब क्रांतिवीर सावरकर ने 26 फरवरी, 1966 को अपना नाशवान शरीर त्यागा तो उस समय प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी ने अपनी भावना व्यक्त करते हुए कहा था-'सावरकर जी की मृत्यु से विद्यमान भारत के एक महान व्यक्ति को हमने खो दिया।' बात स्पष्ट है कि इंदिराजी की दृष्टि में सावरकरजी महान थे, पर अब उनके पौत्र राहुल गांधी की दृष्टि में वह 'गद्दार' हो गये हैं। इसका कारण केवल एक ही है कि राहुल गांधी को इतिहासबोध नहीं है और साथ ही उन्हें भारत की संस्कृति के उस प्राणतत्व का भी बोध नहीं है-जिसमें अपने इतिहास नायकों का सम्मान करना हम सबका दायित्व और कर्त्तव्य होता है। क्रांति महानायक वीर सावरकर को उनकी मृत्यु के समय साम्यवादी नेता हिरेन मुखर्जी तथा जनसंघ के श्री द्विवेदी ने लोकसभा में उसी प्रकार श्रद्धांजलि देने की मांग की थी, जिस प्रकार किसी देश के एक महानायक को दी जाती है। इस पर श्रीमती इंदिरा गांधी भी सहमत हो गयीं, परंतु लोकसभा का सदस्य न होने के कारण (संसदीय नियमावली का पालन करते हुए) उनके लिए सदन उस प्रकार श्रद्धांजलि नहीं दे पाया था, परंतु इस प्रकार के प्रस्ताव का साम्यवादी और जनसंघी जैसे दो धुर-विरोधी राजनीतिक दलों की ओर से आना और उस पर सत्ताधारी दल सहित सभी दलों की सहमति मिल जाना यह बताता है कि उस क्रांतिवीर के प्रति सारे सदन की भावनाएं कितनी विनम्र थीं। जिनके चलते उन्हें श्रद्धांजलि न दी जाकर भी श्रद्धांजलि दे दी गयी थी। सदन ने अपनी विनम्र भावनाओं से वीर सावरकर के परिजनों को भी अवगत कराया था। निश्चय ही यह सब किसी 'गद्दार' के लिए तो किया नहीं जा सकता था।

जब मोरारजी देसाई देश के प्रधानमंत्री बने तो 11 फरवरी, 1979 को वह अण्डमान गये थे, जहां उन्होंने वीर सावरकर की स्मृतियों को 'सैलुलर जेल' जाकर नमन किया था। इतना ही नहीं, मोरारजी भाई ने उस क्रांतिवीर की स्मृति में उस कारागृह को 'राष्ट्रीय स्मारक' बनाने की भी घोषणा की थी। मोरारजी देसाई मूलरूप से कांग्रेसी थे-पर वीर सावरकर के प्रति उनकी भावनाएं पवित्र थीं। उनकी सरकार शीघ्र ही गिर गयी, जिस कारण 'सैलुलर जेल' को 'राष्ट्रीय स्मारक' बनाने की उनकी घोषणा तो सिरे नहीं चढ□ सकी, पर उन्होंने एक प्रधानमंत्री के रूप में मां भारती के उस शेरपुत्र वीर सावरकर को अपनी ओर से सम्मान प्रदान करके यह तो स्पष्ट कर ही दिया था कि सारा देश उनका कितना सम्मान करता है?

जिस क्रांतिपुत्र नेताजी सुभाष चंद्र बोस के प्रति कांग्रेसी दुर्व्यवहार को आज सारा देश जान गया है, उन्हीं नेताजी ने अपनी एक अंतरिम सरकार की घोषणा की थी। उस सरकार में भारत के राष्ट्रपति नेताजी स्वयं थे। 30 दिसंबर, 1943 को नेताजी भारत की अंतरिम सरकार के राष्ट्रपति के रूप में अण्डमान को अंग्रेजों से मुक्त कराने में सफल हो गये थे। तब उस क्रांतिनायक ने अपने 'महानायक' सावरकर के प्रति श्रद्धा व्यक्त करते हुए इस द्वीप को 'शहीद द्वीप' का नाम दिया था। यह भी बहुत बड□ा सम्मान था।

नेताजी सुभाषचंद्र बोस और वीर सावरकर जी दोनों एक-दूसरे का बहुत सम्मान करते थे। सुभाष वीर सावरकर से छोटे थे, इसलिए उनके प्रति अत्यंत श्रद्धाभाव रखते थे। बात 1936 की है, तब तक सुभाष बाबू की हिटलर से भेंट हो चुकी थी। सुभाष बाबू ने जर्मनी के

तत्कालीन विदेशमंत्री रिबेन्ट्राप से पूछ लिया था-'आप ब्रिटेन से कब युद्ध आरंभ करेंगे?' उत्तर मिला-'अभी नहीं, अन्यथा ब्रिटेन से हम अकेले ही लड□गे। वह हमारा परंपरागत शत्रु है।'

1937 में वीर सावरकर हिंदू महासभा के राष्ट्रीय अध्यक्ष बन चुके थे। उन्होंने इस संगठन की क्रांतिकारी भावना से प्रेरित होकर ही इसे अपनी सेवाएं देकर कृतार्थ किया था। सारे देश के क्रांतिकारी उन दिनों हिंदू महासभा भवन को राष्ट्रमंदिर के रूप में मान्यता दे चुके थे। वहां से जिसको आशीर्वाद या मार्गदर्शन मिल जाता था, वही अपने आपको धन्यभाग मानने लगता था। इसलिए सुभाष बाबू के लिए यह संभव ही नहीं था कि वीर सावरकर हिंदू महासभा के अध्यक्ष हों और नेताजी उनसे मिलने न जायें? फलस्वरूप वीर सावरकर भवन में नेताजी क्रांतिवीर से 1940 में मिलने गए थे। पर जब यह भेंट हुई तो उस समय नेताजी भी कांग्रेस के अध्यक्ष थे। कहने का अभिप्राय है कि भारतीय क्रांतिकारी आंदोलन के दोनों शिखर पुरुष उन दिनों अपने-अपने दलों के भी शिखर पुरुष थे। यह बड□ा अद्भुत संयोग था कि कांग्रेस और हिंदू महासभा जैसी धुर-विरोधी राजनीतिक पार्टियों के नेता उस समय एक ही 'मिशन' के लिए समर्पित थे और उसके लिए मिलकर काम करने की ओर बढ□ रहे थे। नेहरू-गांधी को इन दोनों का मिलन जंचता नहीं था। गांधीजी क्रांतिकारियों से असहमत और असंतुष्ट रहते थे, इसलिए नेताजी कांग्रेस का अपहरण कर उसे वीर सावरकर जी की गोद में डाल दें-और उससे गांधी-नेहरू के भाग्य का सूर्य ही अस्त हो जाए-यह भला गांधीजी को कैसे स्वीकार हो सकता था? अत: सुभाष को कांग्रेस से चलता करने का 'षड्यंत्र' गांधी-नेहरू के स्तर पर प्रारंभ हो गया था।

वीर सावरकर और नेताजी सुभाषचंद्र बोस दोनों की ही अटल मान्यता थी कि सशस्त्र क्रांति ही स्वाधीनता का साधन है। इन दोनों ने यह निश्चय कर लिया था कि स्वतंत्रता के उपरांत देश के शासन प्रशासन का ढांचा कैसा और किस प्रकार का होगा? नेताजी सुभाषचंद्र बोस यूरोप में जहां भी अपना भाषण करते थे, वहां वीर सावरकर का नाम अवश्य लेते थे और भारतीय संस्कृति को विश्व की सर्वोत्तम संस्कृति कहना भी नहीं भूलते थे। उन्हें सावरकर की '1857 का स्वाधीनता संग्राम' नामक पुस्तक बड□ी पसंद थी। ये दोनों ही महानायक अपने लिए 'शिवाजी' को आदर्श मानते थे। 'भारतवर्ष' जनवरी, 1936 के अंक में लेखक विजयरत्न मजूमदार ने ऐसा लिखा था।

22 जून, 1940 को नेताजी मुंबई में जिन्नाह से मिले। जिन्नाह ने उनकी बात पर ध्यान नहीं दिया और उनके साथ उपेक्षित व्यवहार किया। कारण यही था कि जिन्नाह नेताजी को भली प्रकार जानता था कि वे उसके द्विराष्ट्रवाद के सिद्धांत से कतई सहमत नहीं होंगे। तब नेताजी 'सावरकर सदन' पहुंचे। 23 जून, 1940 को इन दोनों नेताओं की इस बैठक की सूचना का समाचार 'नवांकाल' ने दिया था। तब तक नेताजी कलकत्ता से हॉलवेल का पुतला उखाड□ने का निर्णय ले चुके थे। इस पर सावरकरजी ने उन्हें समझाया कि हमसे कोई लक्ष्य नहीं साधा जा सकता। आप जैसे ही ऐसा कार्य करोगे, आपको अंग्रेज उठा लेंगे और जेलों में सड□ा देंगे। स्वयं बंदी न बनकर शत्रु को बंदी बनाने की तैयारी करो। अपनी गोपनीयता बनाये रखकर कार्य करो, अंग्रेजों की गिरफ्तारी से बचते हुए क्रांतिकारी अभियान को आगे बढ□ाओ। मैं भी 'हिंदुओं के सैनिकीकरण' का अभियान किसी विशेष लक्ष्य को देखकर ही

चला रहा हूं। यद्यपि कई लोग मेरे इस मिशन को यह कहकर हल्का कर देते हैं कि मैं ब्रिटिशों को प्रशिक्षित लोग उपलब्ध करा रहा हूं-पर मेरे वास्तविक लक्ष्य पर ध्यान दीजिए।

पाठकवृंद! हमने यह प्रसंग यहां पर इसलिए प्रस्तुत किया है कि कई लोगों को यह भी भ्रांति रहती है कि सावरकरजी ने 'हिंदुओं का सैनिकीकरण' अभियान अंग्रेजों को ही हिंदू सैनिक उपलब्ध कराने के लिए चलाया था, पर वास्तविकता को यह प्रसंग स्पष्ट करता है कि सावरकर जी का लक्ष्य कुछ और था? जिसे नेताजी ने समझ लिया और वह यद्यपि उनके पास जिन्नाह के उपेक्षित व्यवहार की शिकायत करने आये थे-पर आज एक नया संदेश उन्हें सावरकर जी से मिल गया, और अब उन्होंने क्रांति की नई मशाल जलाने का निर्णय ले लिया। बाद का सुभाष सावरकर की प्रेरणा से बना सुभाष था। यह था उस क्रांतिवीर की प्रेरणा का चमत्कार।

नेताजी और वीर सावरकर जी की प्रेरणा के स्रोत शिवाजी थे-इसलिए दोनों ने ही शिवाजी के जीवन से प्रेरणा ली। अत: नेताजी वैसे ही देश छोड□ गये, जैसे शिवाजी औरंगजेब की जेल से भाग गये थे। इधर वीर सावरकर जी ने भी बड□ी सावधानी से 'हिंदुओं का सैनिकीकरण' अभियान चलाकर उन्हें सैन्य प्रशिक्षण देना आरंभ कर दिया। द्वितीय विश्वयुद्ध में ये प्रशिक्षित हिंदू अंग्रेजों की सेना में भी गये, पर जब द्वितीय विश्वयुद्ध समाप्त हुआ तो हमारे बहुत से सैनिकों को अंग्रेजों ने स्वार्थ पूर्ण होते ही सेना से निकाल दिया। इतिहास बताता है कि तब पहले से ही अंग्रेजों के विरुद्ध इन प्रशिक्षित भारतीयों ने अंग्रेजों के विरुद्ध क्रांति का बिगुल फूंक दिया। उधर आजाद हिंद फौज के अनेक सैनिक भी इस समय अनाथ हो गये थे-क्योंकि कांग्रेसियों की मिलीभगत से नेताजी को मृत घोषित करा दिया गया था। फलस्वरूप आजाद हिंद सेना के सैनिक और वीर सावरकर द्वारा प्रशिक्षित भारतीय सेना के ये सैनिक, जिन्हें अंग्रेजों ने अपनी सेना से निकाल दिया था-अब अंग्रेजों के विरुद्ध अपने देश की सेना से मिलने लगे। उनके प्रति हमारी सेना की स्वाभाविक सहानुभूति उत्पन्न हुई, जिससे भारत की सेना में अंग्रेजों के विरुद्ध विद्रोह उत्पन्न होने लगा। इसी विद्रोह से डरकर अंग्रेजों ने भारत छोड□ा। गांधी के 'भारत छोड□ो' आंदोलन का उन पर कोई प्रभाव नहीं था। जिस दिन इतिहास की भाषा में हमारा युवा इस सच को समझ जाएगा, उस दिन 'राहुल' को बता दिया जाएगा कि उनका स्थान क्या है और वीर सावरकर का स्थान क्या है?

हिंदी, हिंदू, हिंदुस्तान के उद्घोषक

19 जनवरी, 1941 को नासिक के सार्वजनिक वाचनालय के शताब्दी समारोह की अध्यक्षता कर रहे सावरकरजी ने अपने भाषण में कहा था-'यहां की सारी पुस्तकें पढ□ी। केवल एक ओर की पुस्तकें पढ□कर किसी को हड□बड□ी में अपने मत निश्चित नहीं करने चाहिए। सभी पक्षों की पुस्तकें पढ□ें। सभी के दृष्टिकोण जान लें। उस पर मनन करें, और तत्पश्चात ही स्वयं को जो उचित प्रतीत हो, जो जंचे, वही ग्रहण करके उसका अनुसरण करें। ज्ञानी पाठक ही किसी मत का सच्चा परिस्कार कर सकता है। वाचनालयों में ज्ञान सभायें आयोजित की जाएं। उनमें विविध विषयों पर जानकारों के भाषण रखे जाएं, तो बहुत ही उचित होगा। उससे एक-एक विषय का सम्यक ज्ञान पाने में बड□ी सुविधा होगी।'

सावरकरजी की यह विशेषता रही कि उन्होंने प्रत्येक क्षेत्र का गहरा और गंभीर ज्ञानार्जित किया है। उसके पश्चात ही किसी विषय पर उन्होंने लिखा या कहीं भाषण दिया। यही कारण रहा कि उन्हें अपने लिखे या कहे में आगे चलकर कभी संशोधन करना नहीं पड□ा। उन्होंने इतिहास को गंभीरता से पढ□ा और देखा कि आर्य (हिंदू) जाति प्राचीनकाल से ही अत्यंत वीर रही है, और विश्व को मानवतावाद से लेकर राष्ट्रवाद तक की सारी धारणाएं इसी ने प्रदान की हैं, परंतु यदि यहां विदेशी आये और उन्होंने इस वीर आर्य-हिंदू जाति को यत्र-तत्र गुलाम बनाने में सफलता प्राप्त की तो उसका कारण था कि आर्य-हिंदू जाति 'सदगुण विकृति' से ग्रस्त हो गयी थी। शत्रु को परास्त होने पर छोड□ देना, नि:शस्त्र शत्रु पर प्रहार न करना, सूर्यास्त के पश्चात युद्ध न करना, असावधान शत्रु पर घात लगाकर प्रहार न करना, शत्रु द्वारा पराजय स्वीकार कर लेने पर उस पर वार न करना इत्यादि हमारे ऐसे सद्गुण थे, जिन्होंने हमें शत्रु के सामने परास्त कराया। क्योंकि शत्रु के यहां ऐसा कोई भी सद्गुण नहीं था, उनके यहां येन केन प्रकारेण विजय प्राप्त करना ही अंतिम लक्ष्य होता था। देश-काल और परिस्थिति के अनुसार भारत की आर्यजाति को अपने आप में परिवर्तन करना चाहिए था। इसलिए वीर सावरकरजी ने इतिहास के इस गंभीर दोष को समझकर अपने समकालीन हिंदू समाज को जाग्रत करने का प्रयास किया। देश जागरण के लिए वीर सावरकरजी का यह एक ऐसा उपाय था-जिसमें सारा भारत जागता चला जा रहा था, या सारे भारत को जगाने की जिसमें क्षमता थी।

अपनी योजना को सिरे चढ□ाने के लिए सावरकरजी ने 'हिंदी, हिंदू हिंदुस्तान' का उद्घोष किया था। अपने इस उद्घोष के माध्यम से उन्होंने हिंदू समाज के सभी वर्गों को साथ ले लिया था। उनका दृष्टिकोण व्यापक था इसलिए उनके उद्घोष का अर्थ भी व्यापक था। उनके समकालीन हिंदू समाज में तीन प्रकार की विचारधाराएं कार्य कर रही थीं। एक थी आर्यसमाजी विचारधारा। यह विचारधारा भारत में आर्यभाषा (संस्कृत हिंदी), आर्य (हिंदू), आर्यावर्त (हिंदुस्तान) की बात करती थी। यह सावरकरजी ही थे, जिन्होंने इस विचारधारा की इस मान्यता को अपना समर्थन दिया और संस्कृतनिष्ठ हिंदी की बात कहकर अपने 'हिंदी, हिंदू, हिंदुस्तान' के साथ वेदों की बात करने वाले आर्यसमाज का उचित और प्रशंसनीय समन्वय स्थापित कर लिया। जब नवाब हैदराबाद ने आर्यसमाज को हैदराबाद में प्रवेश करने से निषिद्ध

किया तो सावरकरजी पहले व्यक्ति थे, जिन्होंने आर्य महासम्मेलन (कर्नाटक) के मंच से 1938 में यह घोषणा की थी कि आर्यसमाज अपने आपको अकेला न समझें, हमारा पूर्ण समर्थन उनके साथ है, और यही हुआ भी। आर्यसमाज ने पौराणिकों के मंदिरों की लड□ाई लड□ी तो सावरकरजी ने आर्यसमाज के 'सत्यार्थप्रकाश' की लड□ाई लड□ी। क्या उत्तम समन्वय था-थोड□ी सी देर में सावरकरजी का 'हिंदी, हिंदू, हिंदुस्तान' आर्यसमाज के आर्यभाषा, आर्य, आर्यावर्त के साथ इस प्रकार एकाकार हो गया, जैसे दो पात्रों का जल एक साथ मिलकर एकरस हो जाता है।

सन 1944 में सिंध के मंत्रिमंडल ने 'सत्यार्थप्रकाश' के 14वें समुल्लास को हटाने की घोषणा की। इस घोषणा के होते ही आर्यसमाज उबल पड□ा। 20 फरवरी, 1944 को दिल्ली में एक विशाल आर्य सम्मेलन का आयोजन किया गया। भारत के वायसराय को हजारों तार भेजकर सिंध मंत्रिमंडल के इस अन्याय को समाप्त कराने की मांग की गयी। केन्द्रीय असेम्बली में भाई परमानंद जी ने सिंध मंत्रिमंडल के इस निर्णय की भर्त्सना करते हुए कहा-'सिंध में मंत्रिमंडल ने आर्यसमाज की धार्मिक पुस्तक 'सत्यार्थप्रकाश' के 14वें समुल्लास पर प्रतिबंध लगाकर समस्त हिंदू जाति को ही चुनौती दी है। यदि पहचान लिया जाए कि 14वें समुल्लास को इस्लाम धर्म के खण्डन के कारण प्रतिबंधित कर दिया जाए तो कुरान का प्रत्येक शब्द ही हिंदुओं के विपरीत पड□ता है। समस्त कुरान को जब्त क्यों न कर लिया जाए।'

वीर सावरकरजी ने भी एक सभा में घोषणा की-'जब तक सिंध में 'सत्यार्थप्रकाश' पर प्रतिबंध लगा है, तब तक कांग्रेस शासित प्रदेशों में कुरान पर प्रतिबंध लगाने की प्रबल मांग की जानी चाहिए।' सावरकरजी ने भारत वायसराय के लिए तार भेजकर कहा था-'सिंध सरकार द्वारा सत्यार्थप्रकाश पर प्रतिबंध लगाये जाने से साम्प्रदायिक वैमनस्य उत्पन्न हो गया। यदि 'सत्यार्थप्रकाश' से प्रतिबंध न हटाया गया तो हिंदू कुरान पर प्रतिबंध लगाने का आंदोलन प्रारंभ कर देंगे। अत: मैं केन्द्रीय सरकार से अनुरोध करता हूं कि वह 'सत्यार्थप्रकाश' पर लगे प्रतिबंध को अविलंब रद्द कर दें।'

आर्यसमाज को अपने साथ लेकर चलने में सावरकरजी सफल रहे। आर्यभाषा, आर्य, आर्यावर्त से वह सहमत थे और आर्यसमाज को उनके 'हिंदी, हिंदू, हिंदुस्तान' से कोई विरोध नहीं था। अब आते हैं एक दूसरी विचारधारा पर- यह विचारधारा उस समय के कवियों, लेखकों व साहित्यकारों की थी। इसका आदर्श था-भारती, भारतीय, भारत। वह हिंदी को 'भारती' कह रहे थे-जो मां भारती के रूप में हमारी राष्ट्रीयता की बोधक भी थी। भारतीय वह हिंदू को कह रहे थे और भारत वह हिंदुस्तान को कह रहे थे। इस विचारधारा को भी सावरकर जी ने आत्मसात किया और इसके साथ ही ऐसा सुरीला तान छेड□ा कि यह भी उनके 'हिंदी, हिंदू, हिंदुस्तान' के उद्घोष के साथ पूर्णत: एकरस हो गयी। तीसरी विचारधारा उनके जैसे अपने क्रांतिकारियों की थी-जो 'हिंदी, हिंदू, हिंदुस्तान' के लिए उस समय कार्य कर रही थी।

तत्कालीन साहित्य का यदि विश्लेषण किया जाए तो सारा भारत देशभक्ति के जिस आत्मोत्सर्गी गीत में झूम रहा था, उसे उत्तेजित करने का कार्य ये तीनों प्रकार के संगठन या विचारधाराएं ही कर रही थीं। इनका एक ही लक्ष्य था-एक ही गीत था-एक ही संगीत था और एक ही चाल थी। वेद का संगठन सूक्त सारे राष्ट्र में चरितार्थ हो रहा था। संगठन सूक्त को

असफल करने की गतिविधियों में यदि उस समय कोई संलिप्त था तो यह थी कांग्रेस और उसके नायक गांधीजी और नेहरूजी। कांग्रेस और उसके नेता उन दिनों उन लोगों के साथ एकता की बात कर रहे थे-जिन्होंने 'हिंदी, हिंदू, हिंदुस्तान' के साथ चलने से मना कर दिया था और न केवल मना कर दिया था अपितु इन्हें वह किसी भी स्थिति में स्वीकार करने को भी तैयार नहीं थे। भारत के ये तीनों प्रतीक उनके लिए पहले दिन से निशाने पर रहे थे। जिन्हें वह मिटाकर राज्य करने का लक्ष्य बनाकर चले-संयोगवश सावरकर ने उन पर पहले सहमति बनाने की शर्त लगाकर बहुत बड□ा देशभक्ति का परिचय दिया था, जिसे उन्होंने अस्वीकार कर दिया, पर चलिए उनकी अस्वीकृति पर तो कोई आश्चर्य हमें नहीं होना चाहिए। आश्चर्य तो कांग्रेस पर और उसके नेताओं पर होता है, जिन्होंने 'हिंदी, हिंदू, हिंदुस्तान' को भी नकारा; आर्यभाषा, आर्य-आर्यावर्त को भी नकारा। फिर कौन-सा चिंतन उन्हें स्वीकार था?

उन्हें स्वीकार था भारत को बाबर और अकबर का देश बना देना और अपनी 'सद्गुण विकृतियों' से कोई शिक्षा न लेकर अपने आपको शत्रु के सामने असहायावस्था में डाल देना। इसलिए कांग्रेस और उसके नेताओं ने एक ही झटके में हिंदी के स्थान पर 'हिंदुस्तानी', हिंदू के स्थान पर 'सैकुलर सिटीजन ऑफ इंडिया' या (हिंदू मुस्लिम-सिख-ईसाई), हिंदुस्तान के स्थान पर 'इंडिया' को प्राथमिकता दी। भारत जब स्वतंत्र हुआ तो वीर सावरकरजी का 'हिंदी, हिंदू, हिंदुस्तान' आदि उपरोक्त तीनों समीकरण इसके मानचित्र से लुप्त थे। स्मरण रहे कि ये वही तीनों समीकरण थे, जिनसे उस समय का सारा भारत प्राण ऊर्जा ग्रहण करता था, सारा भारत जिनके नाम से मचलता था। अब भारत का नया समीकरण दिया गया-हिंग्लिश (हिंदी-अंग्रेजी का गुड□ गोबर) इंडियन, इंडिया का। आज के भारत की सारी समस्याओं की जड□ यही चिंतन रहा है, जो हम पर स्वतंत्रता के पश्चात थोप दिया गया है। आज इस चिंतन के नीचे दबा भारतीय राष्ट्र है। इसलिए यहां देशद्रोही नारे लगते हैं। 'हिंदी, हिंदू, हिंदुस्तान' की बात करने वालों को साम्प्रदायिक और 'गद्दार' कहा जाता है, उनसे मुक्ति की बात कही जाती है, और राहुल गांधी उस मुक्ति का समर्थन करते हैं, क्यों? कारण यही है कि उनकी पार्टी ने 'हिंदी, हिंदू, हिंदुस्तान' या आर्यभाषा, आर्य-आर्यावर्त या भारती, भारतीय, भारत से मुक्ति पाने के लिए ही संघर्ष किया था। हम भारतीयों को षड्यंत्र की गहराई को और उसके उद्देश्य को समझना होगा। कुछ लोगों का मानना है कि हम गड□ मुर्दे उखाड□कर अनावश्यक ही समय नष्ट कर रहे हैं। हमारा उनसे अनुरोध है कि इतिहास को यदि सही परिप्रेक्ष्य में नहीं लिया गया और नहीं समझा गया तो भारत नहीं रहेगा। अत: यह स्पष्ट होना ही चाहिए कि हमारे देशभक्तों का क्रांतिकारी आंदोलन किस उद्देश्य से प्रेरित होकर लड□ा गया था और किस प्रकार उसका अपहरण हो गया? साथ ही यह भी कि उस अपहृत आंदोलन के आज परिणाम क्या आए हैं? इतिहास में झांकने का अर्थ है-नींव को देख लेना कि मूल संस्कार में विकृति कहां से आयी? आज उसी मूल संस्कार को सही करने का समय आ गया है।

प्रार्थना जब तक भक्त के रोम-रोम को छूती न निकले, तब तक वह भगवान को प्रभावित नहीं करती, आंदोलन जब तक व्यक्ति-व्यक्ति की वाणी से ना निकले, तब तक वह राष्ट्र को प्रभावित नहीं करता। इसलिए प्रत्येक प्रकार की टूटन और बिखराव को समेटकर पूरे राष्ट्र को एकता के सूत्र में बांधने की आवश्यकता है, जिसे सावरकर का चिंतन ही कर सकता है,

गांधी-नेहरू के समझौतावादी चिंतन ने तो हममें बिखराव उत्पन्न कर दिया है। राष्ट्रद्रोहात्मक समझौतावाद भी एक सद्गुण विकृति है, जिसे जितनी शीघ्रता से समाप्त कर दिया जाएगा, उतना ही उचित होगा।

शास्त्री ने दिया सावरकर को मानधन

हमने पूर्व के आलेखों में स्पष्ट किया था कि वीर सावरकर और नेताजी सुभाषचंद्र बोस के आदर्श वीर शिवाजी थे। यही कारण था कि उनके लिए राष्ट्र सर्वप्रथम था। उन दिनों लुई फिशर भारत की यात्रा पर आये थे। देश के विभाजन की संभावनाएं बड□ी तेजी से बनती जा रही थीं। लुई को यह बता दिया गया था कि विभाजन पर कांग्रेस लगभग सहमत हो चुकी है, परंतु सावरकर और उनका दल अभी भी बड□ी कठोरता से विभाजन का विरोध कर रहा है। तब फिशर, जिन्नाह से भेंट करने के पश्चात सावरकर से मिलने पहुंचे। उन्होंने सावरकर जी से पहला प्रश्न ही यह किया-'आपको मुसलमानों को अलग देश देने में क्या आपत्ति है?'

सावरकरजी अपने अतिथि के मनोभावों को पूर्व से ही समझ चुके थे। इसलिए अतिथि के प्रश्न का उत्तर भी पूर्व से ही बनाये बैठे थे। उन्होंने लुई से प्रतिप्रश्न किया-'आप लोग नीग्रो लोगों की भारी मांग के उपरांत भी उन्हें अलग 'नीग्रोस्तान' क्यों नहीं दे रहे हैं?'

इस प्रश्न के उत्तर में लुई फिशर हमारे इस आधुनिक शिवाजी के जाल में घिर गया। उसने बिना सोचे-समझे कह दिया-'देश का विभाजन राष्ट्रीय अपराध होगा, इसलिए नहीं करते।' मानो सावरकर जी की बात को लुई फिशर ने अपने मुंह से कह दिया। सावरकरजी बोले-'आपका उत्तर राष्ट्रभक्ति से ओतप्रोत व तथ्यपूर्ण है। हर राष्ट्रभक्त अपने देश को खंडित होना या टुकड□-टुकड□ होने देना सहन नहीं कर सकता। देश का विभाजन चाहने वाले देशभक्त कदापि नहीं कहे जा सकते। इसीलिए हम भारत विभाजन की योजना को राष्ट्र विरोधी बताकर उसका विरोध कर रहे हैं, जबकि मुस्लिम लीगी, जो इस देश को ही नापाक मानते हैं, इसके टुकड□ करने पर तुले हैं।'

वीर सावरकर का उत्तर सुनकर लुई फिशर के पास कोई शब्द नहीं थे। बाद में उन्होंने एक लेख में लिखा था-'मैंने सावरकरजी के हृदय में राष्ट्रभक्ति की असीमित भावना देखी, वहीं जिन्नाह के हृदय में भारत व भारतीय संस्कृति के प्रति घोर घृणा के भाव दिखाई दिये।'

...और इसी जिन्नाह को गांधीजी 'कायदे आजम' कहते रहे। क्या चमत्कार है हमारे गांधीजी का कि उनकी दृष्टि में देशघातक जिन्ना तो महान नेता हैं, और सावरकरजी सुभाष या शिवाजी घृणा के पात्र हैं। कांग्रेस के राष्ट्रवाद को बड□ी गहराई से समझने की आवश्यकता है।

देश के विभाजन के लिए जब कांग्रेस लगभग सहमति दे चुकी थी या देती जा रही थी। तब 1945-46 ई. में केन्द्रीय असेम्बली के चुनावों में कांग्रेस के विषय में सावरकरजी ने अस्वस्थ होते हुए भी हिंदू महासभा के कार्यकर्ताओं को आदेश दिया कि वे केवल पूर्ण स्वाधीनता और अखण्ड भारत के सिद्धांतों को सामने रखकर चुनाव लड□ें। सावरकरजी का मत था कि इस चुनाव में कांग्रेस को वोट करना पाकिस्तान को वोट करने के समान होगा।' सावरकरजी की इस घोषणा से हिंदू समाज में ध्रुवीकरण की प्रक्रिया आरंभ हो गयी थी। जिसे देखकर कांग्रेस के 'वीर जवाहरलाल' के पांवों के तले की धरती खिसक गयी थी, फलस्वरूप उन्होंने कलकत्ता में एक चुनावी भाषण में कहा-'कांग्रेस का सदा विरोध करने

वाली मुस्लिम लीग एक साम्प्रदायिक पार्टी है। हम उससे कदापि समझौता नहीं करेंगे, और न भारत के टुकड□ होने देंगे।'

सावरकरजी ने पुन: कहा-'ये (जवाहरलाल) कांग्रेसी नेता हिंदू मतदाता को अपने चंगुल में फंसाने के लिए ही मुस्लिम लीग को साम्प्रदायिक बता रहे हैं। यह इनका ढोंग है।' इस चुनाव में हिंदू महासभा भी कांग्रेस के झूठों के जाल में फंस गयी। उसने कांग्रेस के आश्वासन पर विश्वास कर लिया कि वह देश का विभाजन कभी स्वीकार नहीं करेगी। फलस्वरूप हिंदू महासभा ने हिंदू मतदाताओं के मतों का विभाजन रोकने के लिए अपने आपको चुनाव से लगभग दूर ही कर लिया। कुछ क्षेत्रों में ही उसने चुनाव लड□ा, पर चुनावों के उपरांत कांग्रेस अपनी बात से मुकर गयी। मुस्लिम लीग के साथ जाकर देश विभाजन को स्वीकार कर लिया। 3 जून, 1947 को देश के विभाजन का विश्वासघात करते हुए कांग्रेस ने पाकिस्तान के निर्माण को अपनी स्वीकृति प्रदान कर दी। कांग्रेस और मुस्लिम लीग उस दिन दोनों ही प्रसन्न थे। क्योंकि पाकिस्तान की मांग को दोनों की मान्यता मिल जाने से एक को भारत पर तो दूसरी को पाकिस्तान पर शासन करने की संभावनाएं स्पष्ट दिखाई देने लगी थीं। सावरकर जी एक बार पुन: सही सिद्ध हो चुके थे। उन्होंने कांग्रेस के विषय में पूर्व में ही कह दिया था कि यह विश्वासघात करेगी और सत्ता में आते ही पाकिस्तान निर्माण को अपनी स्वीकृति प्रदान करेगी। कांग्रेस ने वही कर दिया।

कांग्रेस की इसी विश्वासघाती नीति पर सावरकरजी ने अश्रुपूर्ण नेत्रों से कहा था-'राष्ट्र का विभाजन कांग्रेस की कायर व तुष्टिकरण की आत्मघाती नीति का ही दुष्परिणाम है। यदि हिंदू कांग्रेस के अहिंसा व हिंदू-मुस्लिम भाई-भाई के भ्रामक नारों में न फंसते तो भारत अखण्ड रूप में स्वाधीन हो जाता। मातृभूमि के खण्ड-खण्ड करने की मांग रखने वालों के षड्यंत्र को ही खण्ड-खण्ड कर दिया जाता।'

3 जून, 1947 को भारत विभाजन को स्वीकार करने के उपरांत नेहरूजी ने कहा था-'भारत में विद्यमान हिंदू और मुस्लिम समस्या (जबकि भारत में हिंदू और मुस्लिम नाम की कोई समस्या कभी नहीं रही, इसके स्थान पर 'मुस्लिम साम्प्रदायिकता' नाम की समस्या रही है-पर उसे कांग्रेस ने कभी नहीं कहा-इसके राष्ट्रवाद और विश्वासघात का यह भी एक उदाहरण है) का सदैव के लिए समाधान करने हेतु ही हम भारत का विभाजन स्वीकार कर रहे हैं।'

नेहरूजी की इस टिप्पणी का उत्तर देते हुए सावरकरजी ने कहा था-'हिंदू मुस्लिम समस्या के समाधान के रूप में देश को खण्ड-खण्ड करने वालों को मैं चेतावनी देता हूं कि देश के बंटवारे से यह समस्या सुलझने के स्थान पर और भी अधिक उलझ जाएगी। पाकिस्तान की स्थापना होते ही, यह समस्या और भी अधिक उग्र रूप धारण कर लेगी।' आज हम देख रहे हैं कि-'भारत तेरे टुकड□ होंगे-इंशा अल्लाह इंशा अल्लाह' कहने वाले उसी नेहरू के नाम से स्थापित जवाहरलाल विश्वविद्यालय नई दिल्ली में जन्म ले चुके हैं, जो हमें बता रहे थे कि हमने भविष्य में भारत के और टुकड□ न होने देने के उद्देश्य से पाकिस्तान बन जाने पर अपनी सहमति दी है। देशभक्ति की मर्यादाएं तो उस समय टूट गयीं, जब 'नेहरू-गांधी' परिवार का उत्तराधिकारी इस अलगाववादी मनोवृत्ति को समर्थन देने जेएनयू पहुंच गया। कहने का अभिप्राय है कि कांग्रेस अपने परंपरागत संस्कारों को छोड□ने को आज भी तैयार नहीं

है।

जब 27 मई, 1964 को नेहरूजी का देहांत हो गया तो देश के शासन की बागडोर देश की मिट्टी से बने लालबहादुर शास्त्री को मिली। शास्त्रीजी ने 9 जून, 1964 को देश की बागडोर संभाली। यह व्यक्ति मनसा वाचा कर्मणा से भारतीय था। कांग्रेस के मंच पर उपस्थित रहने वाली उन कुछ महान प्रतिभाओं में से एक, जिनकी राष्ट्रभक्ति और भारतीयता पर सारे देशवासियों को गर्व है। यदि कांग्रेस में शास्त्रीजी जैसे लोगों को प्रारंभ से ही सम्मान मिलता तो कांग्रेस सचमुच महान नेताओं की एक महान पार्टी कही जाती। तब इसका वह 'विश्वासघाती' चेहरा लोगों के सामने ही नहीं आता, जिसके अनुसार इसने देशभक्तों को या तो जीते जी अपने मंच से भगा दिया था या मरने के उपरांत उनकी स्मृतियों को विस्मृति के गहरे गड्ढे में डाल दिया था। शास्त्रीजी और सरदार पटेल उन लोगों में से हैं, जिनकी स्मृतियों के साथ भी कांग्रेस ने विश्वासघात (गद्दारी) किया है। इन्हीं शास्त्रीजी ने वीर सावरकर को अपने कार्यकाल में सम्मान देकर उनकी अतुल्य देशभक्ति को नमन किया था।

मुंबई के 'आलमगीर' साप्ताहिक ने समाचार प्रकाशित किया था, उसने 28 मई, 1963 को सावरकर की 80वीं जयंती के अवसर पर लिखा था-'राष्ट्रपति के निवृत्ति वेतन में भी बढ□ातरी की गयी है। परंतु जिनके त्याग के कारण हमारे राष्ट्रपति उस पद पर आरूढ□ हो सके, उन त्यागवीर सावरकरजी के प्रति अत्यंत उपेक्षा का व्यवहार भारत में हो रहा है।'

'आलमगीर' की यह पीड□ा उस समय के सभी राष्ट्रभक्त देशवासियों की पीड□ा थी। जिस पर अक्टूबर, 1964 में लालबहादुर शास्त्री जी ने ध्यान दिया। जिन्होंने शासक की नीतियों में सुधार करते हुए सावरकरजी की देशभक्ति को सम्मानित करने का विचार किया, उन्होंने सावरकर जी को कुछ मासिक मानधन देने का निर्णय लिया। इस पर सावरकरजी ने कहा-'यदि मेरी देशसेवा के ही उपलक्ष्य में यह मानधन दिया जा रहा है, तो ही मैं स्वीकार करूंगा।' शास्त्रीजी ने इसे सहर्ष स्वीकार किया। फलस्वरूप सावरकरजी को 300 रुपये मानधन दिया जाने लगा। इस प्रकार शास्त्रीजी की कांग्रेस ने सावरकरजी के बारे में अपनी भूल सुधार करते हुए उस पर प्रायश्चित कर लिया था। जिसे इंदिरा गांधी ने भी न्यूनाधिक यथावत स्वीकृति प्रदान की, शास्त्रीजी के काल से ही सावकरजी द्वारा रचित 'जयोअस्तुते श्री मन्मंगले' जैसा स्वतंत्रता स्तोत्र आकाशवाणी से गाया जाने लगा। यह तो थी सम्मान की बात।

उधर देश के दूसरे राष्ट्रपति राधाकृष्णन भी थे, जिन्होंने श्री कृष्ण भाटिया को उनकी सिंधी पत्रिका 'अमर ज्योति' के जून, 1965 'सावरकर विशेषांक' के लिए अपना शुभकामना संदेश देना भी उचित नहीं माना था। इतना ही नहीं बड□ौदा के प्राध्यापक श्री ई. देसाई जी ने सावरकरजी के 'मरणोमुख शरयेवर' इस अनुपम काव्य का अंग्रेजी पद्यानुवाद किया था। उन्होंने भी राधाकृष्णन जी से इसकी भूमिका लिखने का अनुरोध किया था, उसे भी राष्ट्रपति ने बड□ी चतुराई से ठुकरा दिया। इसे 'असहिष्णुता' का कांग्रेसी संस्करण कहा जाना ही उचित होगा।

सावरकर, नेहरू और उनका इतिहास

वीर सावरकर एक उत्कृष्ट कोटि के राष्ट्र प्रचेता लेखक थे। वह लिखते हैं- 'विश्व का इतिहास छान-छानकर हम थक गये। देवासुरों, इंद्र, वृत्तासुर, रावण आदि की वैदिक कथाओं से लेकर प्राचीन ईरान, ग्रीस, रोम, अरब, अमेरिका, इंग्लैंड, चीन, जापान, स्पेनिश, मूर, तुर्क, ग्रीस, फ्रांस, जर्मनी, ऑस्ट्रिया, इटली आदि के ताजे-से-ताजे इतिहास तक सारी राज्य क्रांतियों के और राष्ट्र स्वतंत्रता के इतिहास तक मानवी राजनीति के अधिकतम इतिहास ग्रंथों के पारायण मैंने स्वयं किये हैं, और उस पर सैकड□ों व्याख्यान भी दिये हैं। हिंदुस्थान के कुछ प्राचीन और राजपूत, बुंदेल, सिख, मराठा आदि अर्वाचीन, इतिहास का पन्ना-पन्ना मैंने छान मारा है, और उन सबसे एक ही निष्कर्ष निकलता देखा है कि धर्म के लिए मरना चाहिए, किंतु इतना ही कहने से कार्य पूरा नहीं होता अपितु गुरु रामदास की जो उक्ति है-'मरते-मरते भी आततायी को मारो' और मारते-मारते अपना राज्य प्राप्त करो-उसे स्वीकार करना ही स्वतंत्रता की प्राप्ति का साधन है।' ('सावरकर समग्र')

इस उद्धरण से सावरकरजी के विषय में पता चलता है कि उनका इतिहास संबंधी ज्ञान भारत तक ही सीमित नहीं था। उन्होंने विश्व इतिहास का मंथन किया था और उसके मंथन से उन्हें आत्मोत्थानी क्रांति की गूंज सुनाई देती थी। वह मानते थे कि जब तक आत्मोत्थानी क्रांति को किसी राष्ट्र की सांसों का स्पंदन नहीं बनाया जाएगा, तब तक वह राष्ट्र स्वतंत्रता का अर्थ भी नहीं समझ पाएगा। सावरकरजी ने मजहब के नाम पर विश्व में किये गये भारी रक्तपात को क्रांति का नाम न देकर उसे मानवता के विरुद्ध एक पाप माना। उन्होंने मजहब को मानवता का हत्यारा माना। जिसने मानव को उन्मादी बनाकर मानवता का संहार किया। यह सावरकरजी ही थे, जिन्होंने भारत के इतिहास के रोम-रोम को जब निचोड□ कर देखा तो उन्हें सर्वत्र क्रांति अमृत ही छलकता दिखाई दिया। वह लिखते हैं- 'जिस प्रकार जो खेत उत्तम उपज देता है, वह उत्तम माना जाता है, ठीक उसी प्रकार उत्तम स्त्री-पुरुष को जन्म देने वाला देश भी श्रेष्ठ होता है। इस दृष्टिकोण से यदि हम भारत की श्रेष्ठता का अवलोकन करें तो हमें क्या दिखेगा? अंगीरस, गर्ग, वशिष्ठ, याज्ञवल्क्य, जनक आदि महान तत्ववेता। कणाद, कपिल, भास्कर, आर्यभट्ट, वराहमिहिर, भरत पाणिनि, बाणभट्ट, चरक आदि कवितादेवी के लाल। गौतमबुद्ध, शंकराचार्य, रामानुजाचार्य, मधवाचार्य, वल्लभाचार्य, गुरुनानक आदि धर्मसंस्थापक। श्री रामचंद्र, नल, युधिष्ठिर सदृश प्रजारंजक राजा। अर्जुन, कृष्ण, कर्ण इत्यादि अतिरथी महारथी। चंद्रगुप्त, शालिवाहन, अशोक, विक्रमादित्य इत्यादि साम्राज्य संस्थापक, शुक्राचार्य और हरिश्चंद्र सदृश मूर्तिमंद सद्गुणी। गार्गेयी, लोपामुद्रा, अहिल्या, तारा, मंदोदरी, सावित्री और सीता इत्यादि नारियां। बताओ दुनिया वालों अपने इस महाभाग्य की गणना हम कैसे करें? यह कार्य बहुत कठिन है।

'इन विभूतियों का नामोच्चार तो केवल एक झांकी मात्र है। यदि भारत का संपूर्ण इतिहास उपलब्ध होता तो क्या होता? जो है वह व्यवस्थित संकलित नहीं है। अभी तो भारत महोदधि के अथाह जलराशि में से यह टिटहरी केवल चोंच भर पानी ही ला पायी है। यह वर्णन तो हमारे इतिहास का पूर्वार्द्ध मात्र है। आधुनिक काल के रत्नों की सूची तो अभी अलग है।'

'चित्तौड□ के महाराणा प्रताप, बुंदेलखण्ड के छत्रसाल, बंगाल के प्रतापादित्य, रायगढ□ के हिंदूपद शाह छत्रपति शिवाजी, पूना के शनिवारवाड□ा के मालिक पेशवा, ग्वालियर के महादजी, पानीपत का रणमैदान, सिंहगढ□ की खड□ी चट्टान, ज्ञानेश्वर की लेखनी विनोबा के भक्त, समर्थ रामदास के दास कितनों को गिने-गिनायें और कहां तक वर्णन करें।' हिंदुत्व के इतिहास पर पंडित जवाहरलाल नेहरू ने भी लेखनी चलाई, पर उन्होंने नई-नई भ्रामक कल्पनाओं के उस जाल को भारत के ऊपर बुनकर डालने का कार्य किया जिससे इस देश में आत्मगौरव के स्थान पर आत्महीनता का बोध हो, एकता के स्थान पर विभिन्नताएं दिखाई दें और राष्ट्रीय भावना का सत्यानाश हो। जैसे उनकी मान्यता रही कि भारत के लोग बाहरी लोगों के वंशज हैं, यहां बाहर से काफिले आते गये और हिंदोस्तां बनता गया। 'हिंदुस्तान की खोज' उनकी इसी कल्पना को साकार करती है। स्वतंत्रता के पश्चात इस पुस्तक को भारत की इतिहास पुस्तकों में गीता के समान पवित्र और प्रामाणिक माना गया और कांग्रेसी सरकारों ने इसका बढ□-चढ□कर प्रचार-प्रसार किया। फलस्वरूप देश में बड□ी तेजी से यह विचार फैला:-

सरजमीने हिंद पर अखलाके आवामे फिराक।
काफिले आते गये और हिंदोस्तां बनता गया।।

इस मान्यता ने भारत की प्राचीनता और उसके सनातन धर्म की गंभीरता के साथ विश्वासघात किया। लोगों ने बड□ी तेजी से अपना मूल विदेशों में खोजना आरंभ कर दिया। नेहरू जी ने शक, हूण, सातवाहन, कुषाण आदि कथित विदेशी जातियों के भारत आगमन से पूर्व के उस भारत की वास्तविकता को गंभीरता से ना तो समझा और ना समझने का प्रयास या लिखने का प्रयास किया, जो इस भारत का ही नहीं अपितु सारे विश्व का मूल है। इस प्रकार नेहरूजी की अपनी सीमित जानकारी के कारण भारत ही नहीं, संपूर्ण विश्व ही अपने मूल से कट गया। विचारधाराओं का अधकचरापन जब व्यापक रूप से फैल जाता है, तो वह किसी देश की संस्कृति पर भारी कुठाराघात किया करता है। दुर्भाग्य से नेहरूजी की इतिहास संबंधी जानकारी ने भारत के साथ ऐसा ही किया है। पंडित नेहरू भारतीय धर्म संस्कृति के मर्मज्ञ नहीं थे। जबकि वीर सावरकरजी भारतीय धर्म-संस्कृति के मर्मज्ञ चिंतक थे और उसकी सूक्ष्म-से-सूक्ष्म तात्विक बातों को भी जानते थे। नेहरूजी जीवन-भर धर्म और मजहब का अंतर नहीं कर पाये, उन्हें धर्म के वैज्ञानिक स्वरूप का और धर्म एवं विज्ञान के समन्वय का ज्ञान नहीं था। वह नहीं जानते थे कि धर्म व्यक्ति के ज्ञान-विज्ञान में अंशत: भी बाधक नहीं है, अपितु धर्म व्यक्ति को अपने इहलौकिक और पारलौकिक संपूर्ण विकास की सुरक्षा प्रदान करता है। धर्म के विषय में वह हिंदुस्तान की कहानी में लिखते हैं- धर्म शब्द का व्यापक अर्थ लेते हुए हम देखेंगे कि इसका संबंध मनुष्य के अनुभव के उन प्रदेशों से है, जिनकी ठीक-ठीक माप नहीं हुई है, यानी जो विज्ञान की निश्चित जानकारी की हद में नहीं आया है। ...शायद विज्ञान के साधारण तरीके और यह बात कि उसका संबंध दृश्य जगत और उसकी क्रियाओं से है, उसे उन बातों में पूरी तरह कारगर न होने दे, जो आत्मिक, कलात्मक, आध्यात्मिक और अदृश्य जगत से संबंध रखने वाली है। जो हम देखते-सुनते और अनुभव करते हैं, यानी दिखाई पड□ने वाली और समय और अंतरिक्ष के भीतर परिवर्तनशील दुनिया

तक ही जिंदगी महदूद नहीं है। यह बराबर स्पर्श कर रही है एक अनोखी दुनिया को, जिसमें दूसरे संभवत: ज्यादा टिकने या उतने ही परिवर्तनशील तत्व हैं, और कोई विचारवान आदमी इस अनदेखी दुनिया की अवहेलना नहीं कर सकता।'

इसी पुस्तक में नेहरूजी भारत की वर्ण व्यवस्था के विषय में अपने अज्ञान को स्पष्ट करते हैं- वर्ण या जाति लफ्ज के इस्तेमाल से कुछ गलतफहमी होती है, क्योंकि अलग-अलग लोग इसके अलग-अलग मायने लगाते हैं। साधारण यूरोपियन या उसी के जैसे विचारों वाला हिंदुस्तानी यह समझता है कि यह केवल वर्णों को पत्थर की तरह मजबूत करके अलग-अलग कर देना है, और यह महज इस बात की तरकीब है कि वर्णभेद बना रहे, ऊंचे वर्ण के लोग सदा-सदा के लिए नीचे बने रहें। इस विचार में सच्चाई है... लेकिन सच्चाई का यह महज एक पहलू है और इस कैफियत से यह नहीं पता चलता कि आखिर इस व्यवस्था में इतनी शक्ति और मजबूती क्यों रही कि यह आज तक चली आ रही है। ...जिंदगी के हालात में तब्दीली आ गयी है ...संघर्ष है सामाजिक संगठन के मसले पर दो जुदा-जुदा नजरियों में। एक तरफ है पुराना हिंदू विचार कि वर्ण या गिरोह संगठन की बुनियाई ईकाई और दूसरी तरफ पश्चिम का विचार है कि जो बहुत ज्यादा व्यक्तिवाद पर जोर देता है, जो व्यक्ति को वर्ण से ऊपर रखता है।'

नेहरूजी पर्दा प्रथा पर भी इस प्रकार लिखते हैं कि जैसे कि यह भारत में सदा से रही है और इसका विरोध कभी किसी ने नहीं किया है और यदि किया है, तो वह उनकी पार्टी कांग्रेस और उनके नेता गांधीजी ने किया है। कुल मिलाकर हमारा कहने का अभिप्राय है कि नेहरूजी की भारतीय धर्म इतिहास संबंधी व्याख्या से भारत के विषय में पाठक का मत यही बनता है कि भारत पूर्णत: अंधकार में रहा है और इसका धर्म अंधकार का उपासक है। हिंदू समाज अंधकार में भटकने वाले कीड□-मकोड□ों का एक समुदाय है। यदि इसे बचाना है, तो इस देश को पश्चिम का अनुकरण करना ही होगा। नेहरूजी के इसी विचार को जेएनयू जैसी संस्थाएं फैला रही हैं। जबकि होना यह चाहिए था कि भारत के धर्म को 'तमसो मा ज्योतिगर्मय' की परंपरा को विज्ञान के साथ जोड□कर इसके धर्म और विज्ञान के समन्वय को बताया जाता, इसकी रूढि□यों को मिटाकर इसके धर्म की परंपराओं की पुनर्प्रतिष्ठा की जाती। सावरकरजी इसी मत के थे।

क्रांति पर गांधी और सावरकर का चिंतन

गांधीजी जिस आंदोलन को अहिंसक रूप से चलाने के पक्षधर थे, उसे उस समय के कई विद्वानों ने जनविरोधी और क्रांतिविरोधी कहा है। प्रश्न है कि गांधीजी का आंदोलन क्या वास्तव में ही जनविरोधी और क्रांतिविरोधी था? इस प्रश्न पर विचार करते समय हमें यह ध्यान रखना चाहिए कि हमारे स्वातंत्र्य समर के समय हमारी जनापेक्षाएं क्या थीं और उन जनापेक्षाओं को पूर्ण करने में क्रांति कितनी सफल हो सकती थी?

पहले आते हैं उस समय की जनापेक्षाओं पर। हमें अपने स्वातंत्र्य समर के विषय में यह कदापि नहीं भूलना चाहिए कि इसे हमने सैकड□ों वर्ष तक लड□ा और उस सैकड□ों वर्ष की लड□ाई का एक ही उद्देश्य था कि इस देश की पावन भूमि पर कोई विदेशी शासक हमें दीखना नहीं चाहिए। इसके लिए देश के लोगों ने हर वह उपाय अपनाया, जिससे विदेशी शासकों से मुक्ति मिल पाना संभव हो। हमारे जनगण के मन की भूमि के कण-कण से एक ही आवाज उठती थी-क्रांति! क्रांति!! क्रांति!!!

भारत अपने अंतर्मन में मचलने वाली इसी क्रांति की ज्वालाओं का धधकता अंगार बन चुका था। जनापेक्षा थी कि हमें जो भी नेता मिले वह पहले दिन से ही यह संकल्प ले कि हम विदेशियों को अपना शासक स्वीकार नहीं करेंगे, और उनको देश से बाहर भगाकर देश को राजनीतिक स्वाधीनता दिलाएंगे। दूसरी जनापेक्षा थी-भारत अपने आपको अति प्राचीनकाल से ही सांस्कृतिक रूप से समृद्ध सांस्कृतिक राष्ट्र के रूप में विकसित करने में सफल रहा था। वह अपनी संस्कृत भाषा की सामासिक संस्कृति के प्रति वचनबद्ध था। जिसे विदेशी आक्रांता शासक मिटाकर समाप्त कर देना चाहते थे, जबकि भारत उसे बचाकर चलने के लिए अपनी सांस्कृतिक और सामाजिक न्याय प्राप्ति का संघर्ष कह रहा था। भारत चाहता था कि उसका नायक या क्रांति पुत्र सांस्कृतिक सामाजिक न्याय की प्राप्ति में उसका मार्गदर्शन करे। तीसरी जनापेक्षा थी-आर्थिक न्याय की प्राप्ति की। विदेशी लोग 'लूट का माल' समझकर हमारे देश के आर्थिक संसाधनों को लूटते जा रहे थे और देश कंगाल हो रहा था। अंग्रेजों से पूर्व के लुटेरे अर्थात मुगलों और उनसे पूर्व तुर्कों को या किसी भी अन्य विदेशी जाति ने भारत को 'लूट की सैरगाह' बनाकर रख दिया था। अत: इन सभी लुटेरों से भारत को मुक्त कर 'देश का धन-देश के लिए' इस आदर्श पर काम करने की आवश्यकता थी।

वीर सावरकर इन जनापेक्षाओं पर खरा उतरने के लिए 'क्रांति' को ही एकमात्र उपाय मानते थे। '1857 का स्वातंत्र्य समर' (पृष्ठ 145) पर वह लिखते हैं कि-'निश्चित नियमों के अनुसार आज तक किसी भी क्रांति का संचालन नहीं हो पाया है। क्रांति कोई घड□ी के समान सुनिर्धारित नियम के अनुसार चलने वाला यंत्र नहीं है। यह एक अकाट्य सत्य है कि क्रांति का नियमन एक दृढ□ संकल्प से होता है। छोटे-मोटे नियमोपनियम तो उसके एक विस्फोट में ही 'तितर-बितर' हो जाते हैं। क्रांति के दिग्दर्शन का तो केवल एक ही नियम है-'रुको नहीं, बढ□ते चलो।'

गांधीजी 'क्रांति' के विपरीत 'शांति' की बात कर रहे थे। जब सारा देश क्रांति के लिए मचल रहा था, और क्रांति के माध्यम से ही अपने सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय

की प्राप्ति का संघर्ष कर रहा था, तब क्रांति की उठती ज्वालाओं पर शांति का पानी डालने वाले गांधीजी को लोगों ने आश्चर्य और कौतूहल की दृष्टि से देखा। नोआखाली जैसे कितने ही स्थानों पर गांधीजी की शांति ने पेट्रोल का कार्य किया। जिससे क्रांति की नहीं, अपितु साम्प्रदायिकता की ऐसी ज्वालाएं उठीं कि गांधीजी की अहिंसा थर-थर कांपने लगी। कई अवसर ऐसे आये, जब गांधीजी ने अपने आंदोलनों को उस समय रोकने का आकस्मिक आदेश जारी कर दिया, जब वे अपने चरम पर थे। इससे उनके आंदोलनों को लोगों ने गंभीरता से लेना बंद कर दिया था। जबकि सावरकर जी का कहना था-'क्रांति के जोखिम के समय में तो एक क्षण में ही जीवन-मरण का निर्णय हो जाता है। उतावलापन और विलंब दोनों ही इसकी सफलता में बाधक सिद्ध होते हैं। दुविधा के इन क्षणों में क्षमतावान पुरुष ऐसे मुहूर्त का चयन करते हैं, जिसमें तेजी और धैर्य से अधिकाधिक लाभ मिल सके। क्रांति का संचालन, अंकगणित के नियमों के अनुसार नहीं होता, क्रांति की सफलता तो मानव के हृदय में विद्यमान अद्भुत आत्मिक सामर्थ्य पर ही अवलंबित होती है। अकर्मण्यता और मन्दता से तो क्रांति की धधकती ज्वाला ठंडी हो जाती है। कर्मठता और तीव्रता ही क्रांति को जीवित रखती है।'

जिस समय द्वितीय विश्वयुद्ध आरंभ हुआ, उस समय कांग्रेस के अध्यक्ष सुभाषचंद्र बोस थे। लार्ड लिनलिथगो ने उस समय भारत के नेताओं से बिना परामर्श किये ही यह घोषणा कर दी थी कि भारत जर्मनी के विरुद्ध युद्ध करेगा। इस पर गांधीजी ने अपनी मौन सहमति दे दी थी। जबकि नेताजी जर्मनी के नेताओं से मिलकर इस समय ब्रिटेन के लिए संकट खड□ा करने के पक्ष में थे। उनका मानना था कि ऐसा अवसर हजार वर्ष में एक बार आता है। अत: आये हुए अवसर का लाभ उठाया जाए। विदेशी शक्ति को देश की धरती से मार भगाने में एक दूसरी विदेशी शक्ति सहयोग करे और गांधीजी चुप रहें, यह उचित नहीं था। गांधीजी तो इस बात के पक्षधर थे कि शत्रु को इस समय संकट में पड□ा देखकर हम उसकी असहायावस्था का लाभ न उठायें। पहले शत्रु को संकट से उभरने दिया जाए-तब उससे लड□ेंगे। गांधीजी भारत की उसी 'सद्गुण विकृति' से ग्रस्त थे, जिसने इसे गुलाम बनवाया था। यह दुर्भाग्यपूर्ण था कि गांधीजी इस गुलामी की दीर्घ निशा को और भी लंबा करने की डगर पर चल पड□ थे। उनका यह 'विलम्ब' सावरकर जी और नेताजी सुभाषचंद्र बोस की क्रांति के मार्ग में बाधक था। स्पष्ट है कि गांधीजी क्रांति को असफल करना चाहते थे। गांधीजी के 1942 के 'भारत छोड□ा आंदोलन' की असफलता पर यदि दृष्टिपात करें तो यह आंदोलन भी गांधीजी के हर आंदोलन की भांति असफल रहा था। इसकी असफलता के कारण भी वही रहे थे, जो पुराने आंदोलनों की असफलता के रहे थे। सर्वाधिक प्रमुख कारण था-गांधीजी का उतावलापन और योजनाहीन आंदोलन की रूपरेखा। गांधीजी ने यह आंदोलन उतावलेपन में चलाया और कोई योजना इस आशय की नहीं बनायी कि यदि बड□ नेताओं की गिरफ्तारी हो जाती है, तो उसके पश्चात आंदोलन को अंतिम लक्ष्य तक पहुंचाने के लिए क्या रक्षोपाय किये जाएंगे?

उधर ब्रिटिश सरकार गांधीजी के आंदोलन को कुचलने की तैयारी कर बैठी थी। गांधीजी ने उस ओर ध्यान ही नहीं दिया। फलस्वरूप यही हुआ कि गांधीजी का आंदोलन चलने से पहले ही समाप्त कर दिया गया। 9 फरवरी, 1943 से गांधीजी ने उपवास रखने की घोषणा

(उपवास की अवधि 21 दिन रखी गयी थी) की। सरकार गांधीजी को उपवास के कारण जेल में मरने देकर अपनी अपकीर्ति नहीं चाहती थी। इसलिए उसने घोषणा कर दी कि गांधीजी को इस काल में जेल से रिहा कर दिया जाएगा। तब गांधीजी ने कहा कि जेल से छूटने पर उन्हें उपवास की आवश्यकता ही नहीं पड□गी। प्रधानमंत्री चर्चिल ने तब कहा था- 'यदि गांधीजी जानबूझकर नहीं मरना चाहते हैं, तो सरकार कोई बाधा (उनके मरने में) नहीं डालेगी। परिणामों की जिम्मेदारी उनकी अपनी होगी।' देश में उपवास को लेकर गांधीजी के प्रति न तो लोगों में कोई उत्साह था और ना ही किसी प्रकार की अशांति ही थी।

विराज महोदय अपनी पुस्तक 'तीन गांधी हत्याएं' में गांधीजी को संत न मानकर मतांध मानते हैं। उनका मानना है कि गांधीजी घोर अहंकारी और जिद्दी पुरुष थे। आचार्य रजनीश (ओशो) की तरह वह केवल गुरु बनकर रह सकते थे। जहां अन्य सब साथी उनके शिष्यों की तरह रहें और आंख मींचकर उनकी बात मानते चलें। जो भी कोई व्यक्ति चाहे वह कितना ही बड□ा क्यों न हो, उनके साथ बराबरी के स्तर पर बात करना चाहता था, उससे उनकी पट नहीं सकती थी। उनकी बहुत-सी बातें अयुक्तियुक्त होती थीं। जब वह उनके समर्थन में कुछ उचित तर्क नहीं ढूंढ□ पाते थे, तब वह कहते थे कि यह मेरी अंतरात्मा की आवाज है। इस अंतरात्मा की आवाज के नाम पर वह अपने साथियों के बहुमत का मुंह बंद करके उन पर अपनी बात थोपते थे।

स्वामी श्रद्धानंद जी लिखते हैं- 'जब सिद्धांत का प्रश्न होता था, तब गांधीजी हिंदुओं की भावनाओं का रंचमात्र भी ध्यान रखे बिना अत्यंत दृढ□ रहते थे, परंतु मुसलमान यदि उसी सिद्धांत का उल्लंघन करें, तो वह बहुत नरमी बरतते थे। मुझे यह बात किसी तरह समझ नहीं आती कि अपने देश के करोड□ों लोगों को अपनी नग्नता ढांपने के साधन से वंचित करने और उन्हीं कपड□ों को एक दूरस्थ देश तुर्की भेज देने में कौन-सी नैतिकता थी?'

क्रांतिकारी आंदोलन के आलोचक और अपने आंदोलनों में योजनाहीन पद्धति अपनाने के अभ्यस्त गांधीजी इस का मुस्लिम साम्प्रदायिकता को बढ□ाते चले गये, जिसने एक दिन देश का बंटवारा करा दिया। गांधीजी की इस 'देशभक्ति' को क्या कहा जाए-देश के प्रति समर्पण या कुछ और...? कुछ भी हो इन सब बातों से एक बात तो स्पष्ट हो ही जाती है कि गांधीजी और सावरकरजी का स्वतंत्रता प्राप्ति के साधनों को लेकर और क्रांति को लेकर छत्तीस का आंकड□ा था। गांधीजी यदि पश्चिम की सोचते थे तो सावरकरजी उसी समय पूरब की सोचते थे, और यह पश्चिम और पूरब का चिंतन ही दोनों में महान अंतर उत्पन्न कर देता है।

भगत सिंह की फांसी और गांधी

गांधीजी ने अपने प्रभाव का प्रयोग कभी उन मुस्लिमों पर नहीं किया, जो किसी भी प्रकार से देश की मुख्य धारा के साथ चलने को तत्पर नहीं थे। यद्यपि ऐसे कई अवसर आये, जब गांधीजी अपने प्रभाव का प्रयोग करते हुए मुस्लिमों को हिंदुओं और हिंदुस्तान के साथ चलने को प्रेरित कर सकते थे। बात नवंबर 1919 की है। स्वामी श्रद्धानंदजी की अध्यक्षता में हिंदू-मुस्लिमों की एक संयुक्त सभा गोरक्षा को लेकर की गयी। हकीम अजमल खां और आसफ अली की ओर से गांधीजी को भी निमंत्रित किया गया। इसमें गोरक्षा के साथ-साथ खिलाफत पर भी विचार किया जाना था। सरकार उन दिनों प्रथम विश्वयुद्ध की समाप्ति पर विजयोत्सव मना रही थी। अत: बैठक में यह भी निश्चित किया जाना था कि इस विजयोत्सव में सम्मिलित हुआ जाए या नहीं। खिलाफत के प्रश्न पर उस समय मुस्लिम समुदाय की अंग्रेजों से दूरी बन गयी थी। ऐसे में गांधीजी के लिए यही उचित था कि वे हिंदू-मुस्लिम दोनों समुदायों को एक साथ लाने का सच्चा प्रयास करते और मुस्लिमों से स्पष्ट करते कि यदि वे वास्तव में खिलाफत के बिंदु पर हिंदुओं का सहयोग चाहते हैं, तो गोहत्या निषेध पर वे भी हिंदुओं का सहयोग करें। स्वामी श्रद्धानंद जी का मंतव्य यही था और सुखद बात यह थी कि मुस्लिम नेता मौलाना अब्दुलबारी ने भी अपने भाषण में यह स्पष्ट कर दिया था-'मुसलमानों को हिंदुओं की भावना का सम्मान करके गोवध बंद कर देना चाहिए।' परंतु उससे पहले गांधीजी ने बात का गुड□गोबर कर दिया था। उन्होंने गोवध निषेध और खिलाफत दोनों पर अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा- 'दोनों प्रश्नों पर उनके गुण-दोष की दृष्टि से विचार होना चाहिए। यदि खिलाफत के प्रश्न में तथ्य है, उसमें सरकार की ओर से अन्याय होता है, तो हिंदुओं को मुसलमानों का साथ देना चाहिए। हिंदू यदि कोई ऐसी शर्त करें कि इसके साथ गोरक्षा को जोड□ना चाहिए तो वह उन्हें नहीं करनी चाहिए। ऐसी शर्त उन्हें शोभा नहीं देगी। मुसलमान खिलाफत में मिलने वाली मदद के बदले गोवध बंद करें तो यह उन्हें भी शोभा न देगा।'

गांधीजी ने स्पष्ट कुछ नहीं किया। जबकि उस समय उन्हें मुस्लिमों से गोरक्षा के लिए स्पष्ट कहना चाहिए था कि तुम्हें इस देश को अपना देश मानते हुए इसकी परंपराओं के साथ भी तारतम्य स्थापित करना चाहिए। मुसलमानों को उस समय हिन्दुओं की सहायता की आवश्यकता थी, इसलिए वह गोवध निषेध पर अपनी सहमति दे सकते थे, पर उन्होंने बिना सोचे-समझे गोहत्या पर निषेध के प्रश्न को पीछे छोड□ अपनी ओर से 'खिलाफत' के बिंदु पर मुस्लिमों का सहयोग करना स्वीकार कर लिया।

गांधीजी का अंग्रेजों के प्रति भी दृष्टिकोण कुछ ऐसा ही था। उनके हर वायसराय से मित्रतापूर्ण संबंध रहे। मनु बहन 'गांधी की डायरी' में गांधीजी के विषय में लिखती हैं- '(गांधीजी का कहना था कि) लार्ड माउंटबेटन के विषय में कुछ भी झूठ कहना, उनके साथ अन्याय करना है। वह चाहे हिंसा की शक्ति में विश्वास करते हैं, पर ईश्वर को मानते हैं?' कहने का तात्पर्य है कि एक हिंदू यदि ईश्वरविश्वासी होकर हिंसा करता है, तो गांधी के लिए वह घृणित अपराध करता है पर यदि अंग्रेज ऐसा करता है, तो वह मानवीय है। मानवता की ऐसी ही परिभाषा थी गांधीजी की। द्वितीय विश्व युद्ध के समय गांधीजी पर वायसराय की

काउंसिल के एक भारतीय सदस्य ने आरोप लगा दिया था कि वह जापान से मिल गये हैं, तो इस पर गांधीजी को बहुत बुरा लगा। इस सदस्य का नाम न बताकर गांधीजी ने शाम को घूमते समय कहा था-'...ऐसा कहता है तो और किसी को मैं क्या कहूं? ...का और मेरा पुराना संबंध रहा है। वायसराय को मैंने ही कहा था ...को अपनी काउंसिल में बुलाओ।'

बापू की कारावास कहानी

इस विश्वासपात्र व्यक्ति को लॉर्ड वेवल ने गांधीजी के कहने पर अपनी काउंसिल में रखा था। यह अधिकार भारत के किसी अन्य नेता को प्राप्त नहीं था। इसका अभिप्राय है कि गांधीजी और ब्रिटिश सरकार दोनों एक-दूसरे की गुप्त बातों को जानते थे। सरदार भगत सिंह को फांसी से न बचाने में गांधीजी ने जिस प्रकार की शिथिलता का प्रदर्शन किया था, वह एक प्रकार से राष्ट्र के साथ विश्वासघात ही था। उस प्रकरण में जब बाद में कुछ तथ्य सामने आये तो पता चला कि गांधीजी अंग्रेजों के साथ कितना मिलकर चल रहे थे।

महात्मा गांधी और ब्रिटिश सरकार की पारस्परिक समन्वय की भावना को देखकर तो यह लगता था कि गांधीजी का संघर्ष अंग्रेजों से न होकर हमारे क्रांतिकारियों से था और ब्रिटिश सत्ताधीशों का संघर्ष गांधी से न होकर भारत की जनता से था।

हंसराज रहबर लिखते हैं कि इर्विन से समझौते के समय गांधीजी ने भगत सिंह और उनके साथियों को फांसी से बचाने के लिए क्या प्रयत्न किया? इस विषय में बहुत-सी अफवाहें फैली हुई हैं। इन अफवाहों को फैलाने में गांधी और वायसराय दोनों की दिलचस्पी थी, लेकिन राष्ट्रीय लेखागार की फाइलों से कुछ नये तथ्य प्रकाश में आये हैं, जिन्हें मन्मथनाथ गुप्त ने 'नवनीत' में प्रकाशित करके उद्धृत किया है। जैसे लॉर्ड इर्विन ने अपने रोजनामचे में लिखा है- 'दिल्ली में जो समझौता हुआ, उससे अलग और अंत में मिस्टर गांधी ने भगत सिंह का उल्लेख किया है, उन्होंने फांसी की सजा रद्द कराने के लिए कोई पैरवी नहीं की, पर साथ ही उन्होंने वर्तमान परिस्थितियों में फांसी को स्थापित करने के विषय में कुछ नहीं कहा। (फाइल नं. 5-45/1931 के मध्य डब्ल्यू-2 गृहविभाग राजनीतिक शाखा)

20 मार्च को गांधीजी वायसराय के गृहसदस्य हर्बर्ट इमरसन से मिलेंगे। इमरसन ने भी अपनी दैनन्दिनी (रोजनामचा) में लिखा है- 'मिस्टर गांधी की इस मामले में अधिक रुचि ज्ञात नहीं हुई। मैंने उनसे यह कहा था कि यदि फांसी के उपरांत अव्यवस्था नहीं हुई तो वह बड□ी बात होगी। मैंने उनसे यह कहा कि वह सब कुछ करें जिससे कि (भगत सिंह की फांसी के पश्चात बने परिवेश में) अगले दिनों में सभायें न हों, और लोगों के उग्र व्याख्यानों को रोकें। इस पर उन्होंने अपनी स्वीकृति (कितना बड□ा विश्वासघात था, देश के साथ) दे दी और कहा जो कुछ भी मुझसे हो सकेगा मैं करूंगा।' (फाइल नं. 33/1/1931)

कहने का अभिप्राय है कि गांधीजी न केवल इस बात के प्रति संकल्पबद्ध थे कि वे भगत सिंह और उनके साथियों की फांसी नहीं रुकवाएंगे, अपितु इससे भी बढ□कर वह अंग्रेजों की सहायता करने के उद्देश्य से यह भी सुनिश्चित कर रहे थे कि भारत में भगत सिंह की फांसी को लेकर कोई सभा या शोकसभा भी न की जाए। ऐसे गांधीजी से आप अपने देशभक्तों को श्रद्धांजलि की अपेक्षा भी नहीं कर सकते।

भगत सिंह की फांसी से मात्र तीन दिन पूर्व गांधीजी ने इमरसन के लिए एक पत्र लिखा था। पत्र की भाषा इस प्रकार थी- 'प्रियवर इमरसन, अभी-अभी आपका जो पत्र मिला इसके लिए धन्यवाद। आप जिस सभा का उल्लेख कर रहे हैं, उसका मुझे पता है। हर ऐहतियात ले ली है और आशा करता हूं कि कोई गड□बड□ नहीं होगी। मैं सुझाव देता हूं कि पुलिस शक्ति का कोई दिखावा न किया जाए, और सभा में किसी प्रकार का हस्तक्षेप न हो। रही उत्तेजना, सो तो होगी। इस उत्तेजना को सभाओं के जरिए से निकल जाने दिया जाए, यही उचित होगा।' (फाइल नं. 4-21/1931)

गांधीजी यहां स्पष्ट कर रहे हैं अपने चरित्र को। उन्होंने ब्रिटिश सरकार की भलाई के लिए उसे यह सुझाव दिया कि भगत सिंह आदि की फांसी के पश्चात यदि कोई सभा हो तो उसे होने दिया जाए, उसे बाहर रहकर हम संभाल लेंगे। यदि आपने पुलिस बल नियुक्त किया और शक्ति दिखाई तो अनावश्यक ही मामला बढ□ जाएगा। विरोध को शांतिपूर्वक सभाओं के माध्यम से निकल जाने दिया जाए। यही उचित होगा। अब यदि कहीं भगत सिंह की फांसी पर गांधीजी या किसी अन्य कांग्रेसी ने उस समय मुंह भी लटकाया हो तो वह केवल नाटक था, सच तो यही था कि भगत सिंह जैसे लोग उनके लिए मर जाने ही ठीक थे। गांधीजी ने 1930 में वायसराय के नाम एक पत्र लिखा था-जिसमें उन्होंने क्रांतिकारियों को क्रांतिकारी न कहकर 'हिंसक दल' के लोग कहा है। ('आज का भारत' पृष्ठ 240) शहीद सुखदेव ने स्पष्ट शब्दों में गांधी पर यह आरोप लगाया था कि- 'आप क्रांतिकारी आंदोलन को कुचलने में नौकरशाही का साथ दे रहे हैं।'

पंजाबी पत्रिका 'हेम ज्योति' मार्च, 1971 में सुखदेवजी का एक लेख लिखा गया, जिसमें उन्होंने गांधीजी से पूछा- 'समझौता करके आपने अपना आंदोलन रोक लिया है। इसके परिणामस्वरूप सत्याग्रह के सारे कैदी रिहा हो गये हैं। पर क्रांतिकारी बंदियों के बारे में आपका क्या कहना है? 1915 में 'गदर पार्टी' के कैदी आज भी जेलों में पड□ सड□ रहे हैं। जबकि उनकी सजाएं पूरी हो चुकी हैं। मार्शल लॉ के सैकड□ों कैदी आज भी जीवित होते हुए कब्रों में दफनाए हुए हैं। ...इन सबके विषय में आपको क्या कहना है? लाहौर साजिश केस ने तीन कैदी, जिन्हें फांसी की सजा मिली है, और जिन्होंने संयोग से देश में बड□ी प्रतिष्ठा प्राप्त कर ली है, क्रांतिकारी दल के सब कुछ नहीं हैं। दल के समक्ष केवल उन्हीं की किस्मत का सवाल नहीं है। वास्तव में उनकी सजा में परिवर्तन से देश का कुछ नहीं संवरना, जितना उन्हें फांसी पर चढ□ा देने से संवरेगा।'

गांधीजी के पास सुखदेव के इस पत्र का कोई उत्तर नहीं था। उनका मौन बता रहा था कि वह हर स्थिति में क्रांतिकारियों को फांसी चढ□ जाने देना चाहते थे। वह नहीं चाहते थे कि उनके रहते देश में किसी अन्य की जय-जयकार हो।

उधर वीर सावरकर थे। 23 मार्च, 1931 को स्वतंत्रता का यह परमोपासक वरवड□ नामक गांव में उसकी पाठशाला के वार्षिकोत्सव में सम्मिलित थे। बंदरगाह पर आने वाले जहाज से एक समाचार पत्र ज्ञात हुआ कि भगत सिंह, राजगुरु को फांसी हो गयी है। उस समाचार को पढ□ते ही क्रांतिवीर की आंखें नम हो गयीं। वहां से वह लौटे तो रत्नागिरि में उन हुतात्माओं को समर्पित एक गीत की रचना की। गीत के भाव थे- 'भगत सिंह हाय हाय! तुम हमारे लिए फांसी हो गये। राजगुरु हाय हाय! जूझते-जूझते समरभूमि पर वीरों तुमने

वीरगति पायी है। हुतात्माओं जाओ, तुम्हारी सौगंध लेकर हम प्रण करते हैं कि-तुम्हारा कार्य करने के लिए हम शेष रहे हैं।'

यह अंतर था सावरकर और गांधी में। गांधी जहां अपने 'शेरों' की स्मृति में कोई सभा भी न होने देने या हो जाने पर भी उन्हें मरने देने की योजना अंग्रेजों से मिलकर बना रहे थे-वहीं सावरकर उनकी स्मृतियों को लेकर सौगंध उठा रहे थे कि तुम्हारा शेष कार्य हम पूर्ण करेंगे।

हिंदुत्व और हिंदुस्तान की कहानी

स्वतंत्रता आंदोलन के काल में हमारे क्रांतिकारी जब भी कोई 'आतंकी घटना' कर ब्रिटिश सरकार को हिलाने का प्रशंसनीय कार्य करते थे, तभी हमारे कांग्रेसी नेताओं की कंपकंपी छूट पड□ती थी। उस कंपकंपी से मुक्ति पाने के लिए गांधीजी की कांग्रेस तुरंत एक 'माफीनामा' निंदा प्रस्ताव के रूप में पारित करती। ऐसा करके वह स्पष्ट करती थी कि ब्रिटिश सत्ताधीश मुझे किसी प्रकार से दंडित न करें। कांग्रेस ने ऐसे 'माफीनामे' अपने जन्मकाल से लेकर स्वतंत्रता प्राप्ति तक निरंतर लिखे।

कांग्रेस वीर सावरकरजी के जिस 'माफीनामे' की बात कहती है, उसके विषय में सावरकरजी स्वयं स्पष्ट कर चुके थे कि यह 'माफीनामा' उन्होंने अंग्रेजों को झांसे में डालने के लिए लिखा था। उधर अंग्रेज थे कि वे वीर सावरकर के व्यक्तित्व से और कृतित्व से भली प्रकार परिचित थे। फलत: उन्होंने सावरकर के 'माफीनामे' को 'रद्दी की टोकरी' में फिंकवा दिया था। उन्होंने चुपचाप उनके 'माफीनामे' की जांच करायी थी कि क्या उनका हृदय परिवर्तन वास्तव में हो गया है? जिसमें पाया गया था कि वीर सावरकर का हृदय परिवर्तन नहीं हुआ है। यही कारण रहा कि अंग्रेजों ने उनके 'माफीनामे' से सावरकर को जेल से मुक्त नहीं किया। सावरकरजी संसार के मायामोह से ऊपर उठकर सार्वजनिक जीवन में आये थे। एक बार जेल में मिलाई करने पहुंची अपनी पत्नी की आंखों में अश्रुधारा देखकर उन्होंने उनसे कहा था- 'धीरज रखो! केवल संतान पैदा करना, खाना-पीना और मौज करना-यही मात्र मानव जीवन का उद्देश्य नहीं है। ऐसा जीवन तो पशु-पक्षी भी बिता रहे हैं। हमें तो समाज और देश की दुर्दशा को मिटाना है और भारत माता की गुलामी की बेडि□यों को चूर-चूर करना है। इसी उद्देश्य से हमने अपने व्यक्तिगत सुखोपभोगों का त्यागकर यह कंटकाकीर्ण मार्ग स्वेच्छा से अपनाया है। हमने स्वयं अपने हाथों अपने व्यक्तिगत स्वार्थ को तिलांजलि दे दी है, जिससे कि भारत के करोड□ों लोगों के कष्ट दूर हों।'

इस पर पत्नी ने कह दिया था- 'आप चिंता न करें। मुझे क्या यह कम सुख है कि मेरा वीर पति मातृभूमि की सेवा के लिए कठोर साधना कर रहा है।'

सावरकरजी शिवाजी महाराज से किस सीमा तक प्रभावित थे, इसका पता हमें उनके 'अभिनव भारत' नामक संगठन की उस शपथ से चलता है, जो प्रत्येक सदस्य द्वारा ली जाती थी। शपथ इस प्रकार थी- 'छत्रपति शिवाजी के नाम पर, अपने पवित्र धर्म के नाम पर और अपने प्यारे देश के लिए पूर्व पुरुषों की कसम खाते हुए मैं यह प्रतीक्षा करता हूं कि अपने राष्ट्र की पूर्ण स्वतंत्रता के लिए अंतिम सांस तक संघर्ष करता रहूंगा। मैं न तो आलस्य करूंगा और न अपने उद्देश्य से हटूंगा। मैं 'अभिनव भारत' के नियमों का पूर्णरूपेण पालन करूंगा तथा संस्था के कार्यक्रम को बिलकुल गुप्त रखूंगा।'

सावरकरजी अपने भाषणों में अकसर युवाओं को उत्तेजित और प्रेरित करने के लिए 'छत्रपति शिवाजी की संतानों'-ऐसे शब्दों का प्रयोग किया करते थे। अब जो व्यक्ति अपने संगठन की शपथ को छत्रपति शिवाजी के नाम से प्रारंभ करे, अपने भाषण का शुभारंभ उन्हीं के नाम से करे तो उसके जीवन पर छत्रपति शिवाजी के जीवन का, उनके व्यक्तित्व और

कृतित्व का प्रभाव ना हो, भला यह कैसे संभव था? जैसे सुभाष चंद्र बोस अंग्रेजों की स्थानबद्धता से निकल भागे थे, वैसा ही प्रयास सावरकरजी ने समुद्र में छलांग लगाकर किया था। वह चाहते थे कि जेलों में सड□ने के स्थान पर सक्रिय जीवन जीते मरा जाए तो उत्तम होगा। अपने इसी लक्ष्य की प्राप्ति के लिए उन्होंने उस समय कोई कथित 'माफीनामा' लिख दिया, तो इसमें आश्चर्य की क्या बात है? जब सावरकरजी को जेल ले जाने की तैयारी की जा रही थी, तब उन्होंने अपने साथियों के सामने बड□ ओजपूर्ण शब्दों में कहा था- 'मेरी लाश कहीं पर भी गिरे, चाहे अण्डमान की अंधेरी कालकोठरी में अथवा गंगा की परम पवित्र धारा में, वह हमारे संघर्ष को प्रगति ही देगी। युद्ध में लड□ना तथा गिर पड□ना भी एक प्रकार की विजय ही है। अत: प्यारे मित्रों! विदा!'

जेल के भीतर अकेले सावरकर ही ऐसे थे, जिन्होंने वहां भी कैदियों को स्वतंत्रता संग्राम के लिए प्रेरित करते हुए 'स्वाध्याय मंडल' की स्थापना कर दी थी। जिसमें वह उन कैदियों को भारत के गौरवमयी इतिहास, संस्कृति, साहित्य और राजनीति की विशेष जानकारी देते थे। वही एकमात्र ऐसे बंदी थे, जो जेल के हिंदू बंदियों पर किसी मुस्लिम वार्डर या ईसाई अधिकारी के अत्याचारों के विरुद्ध हिंदू कैदियों को उकसाते थे और उसके कष्टकर परिणाम स्वयं भोगते थे। अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए उन्होंने जेल में भी 25 हजार पुस्तकें एकत्र कर ली थीं।

मन्मथनाथ गुप्त सावरकर जी के विषय में लिखते हैं- 'भारतीयों ने अपने इस वीर देशभक्त को एक दिन के लिए भी नहीं भुलाया था। उनके साहसिक कृत्यों की जनता में सर्वत्र प्रशंसा की जाती थी। समाचार पत्रों एवं सार्वजनिक सभाओं में इनकी शीघ्र रिहाई के लिए अनवरत प्रयास किये जाते रहे। इनकी मुक्ति के लिए 'सावरकर सप्ताह' मनाया गया और लगभग 70 हजार हस्ताक्षरों से एक प्रार्थना पत्र सरकार के पास भेजा गया। उस समय तक किसी नेता की रिहाई के लिए इतना बड□ा आंदोलन कभी नहीं हुआ था।'

अंग्रेज सरकार ने जब देखा कि एक सावरकर को जेल में डालने के उपरांत भी जेल से बाहर कितने सावरकर हैं, तो उसे पसीना आ गया था। फलस्वरूप 21 जनवरी, 1921 को सावरकर जी को कालापानी से भारत के लिए रवाना कर दिया गया। यहां भी उन्हें रत्नागिरि में स्थानबद्ध कर दिया गया। जिससे कि वह किसी प्रकार की राजनीतिक गतिविधियों में भाग लेने एवं भाषण देने से निषिद्ध रहें। रत्नागिरि आकर सावरकर जी ने 'श्रद्धानंद' और 'हुतात्मा' नामक साप्ताहिक पत्रों का प्रकाशन किया। जिनमें अपने छह नामों से लेख एवं रचनाएं प्रकाशित करते थे। 1924 में जब उन्हें रत्नागिरि से नासिक ले जाया गया तो वहां उनके लिए हजारों की संख्या में लोगों ने एकत्र होकर स्वागत की तैयारियां की थीं। इन लोगों के नायक थे- डॉ. मुंजे, जगतगुरु शंकराचार्य व डॉ. कुर्तकोटिजी महाराज। लोगों ने अपने नायक के लिए अभिनंदन पत्र प्रस्तुत किया, जिसमें उनकी देशभक्ति को नमन किया गया था।

वीर सावरकरजी की उत्कृष्ट देशभक्ति और उनकी लोकप्रियता का ही परिणाम था कि वे 1937 में जेल से जैसे ही रिहा किये गये तो भारत के विभिन्न राजनीतिक दलों ने उन्हें अपने साथ आने का निमंत्रण दिया था। कांग्रेस में लाने के लिए उनके पास स्वयं पंडित जवाहरलाल नेहरू पहुंचे थे। जवाहरलाल नेहरू ने उन्हें कांग्रेस में लाकर 'ऊंचा पद' देने का प्रस्ताव भी रखा था। कितने आश्चर्य की बात है कि जिसे कांग्रेस आज 'गद्दार' बता रही है, उसी

सावरकर को कभी उसका एक बड□ा नेता 'ऊंचा पद' देने का विश्वास दिलाकर अपने संगठन में लाने के लिए लालायित था। उधर सावरकरजी थे, जिन्होंने उस समय कांग्रेस के इस प्रस्ताव को इन शब्दों में ठुकरा दिया था- 'मैं अहिंसा के सिद्धांतों में विश्वास नहीं करता। मैं सशस्त्र क्रांति के द्वारा ही स्वतंत्रता प्राप्ति करने का समर्थक हूं। अत: मैं किसी ऐसे दल से संबंध नहीं रखना चाहता, जो मेरे सिद्धांतों के विपरीत हो।'

गुजरात के कर्णावती (अहमदाबाद) में 31 दिसंबर, 1937 को हिंदू महासभा का अधिवेशन संपन्न हुआ। दूसरे दिन वहां के महाराष्ट्र मंडल ने उनका स्वागत किया। तब-'आप कांग्रेस में क्यों नहीं गये?' प्राध्यापक श्री रा. ब. आठवले के इस प्रतिनिधिक प्रश्न का उत्तर देते हुए उन्होंने कहा- 'कुछ लोगों को ऐसा लगता है कि यदि मैं कांग्रेस में जाता तो कांग्रेस का भी अध्यक्ष बनता, किंतु वर्तमान दासता में अध्यक्ष क्या कांग्रेस का, क्या हिंदू महासभा का! उसमें क्या सम्मान है? दोनों ही गोबर के कीड□ हैं, एक ऊपर के स्तर का तो दूसरा नीचे के स्तर का। और उधर हमारी माता-बहनों पर अत्याचार चलते रहने पर भी उसके विरुद्ध चूं तक निकालते नहीं अथवा यूं कहिए कि जो ऐसे कृत्यों को मूक सम्मति ही देते हैं, उनकी पंक्ति में मैं क्यों जाकर बैठूं? केवल 'जी हां' कहकर मिलने वाला बड□प्पन नहीं चाहिए मुझे। मैं मार्सेलिस से खिसककर यदि अमेरिका पहुंच सकता तो शायद अमेरिका का भी प्रेसिडेंट बनता, किंतु उसके लिए वहां जाकर रहना, यह क्या वीरता का लक्षण होगा?'

अंत में हम कांग्रेस को 'गद्दारों का मठ' इसलिए भी मानते हैं कि इसने सदा ही भारत के ऋषि-मुनियों, वीर पुरुषों और वेदादि धर्मग्रंथों की उपेक्षा की है, इसने भारत को मारकर 'इण्डिया' खड□ा करने का राष्ट्रघाती प्रयास किया है। जबकि 30 दिसंबर, 1937 को अहमदाबाद में हिंदू महासभा के अधिवेशन में अध्यक्षीय भाषण देते हुए वीर सावरकर ने कहा था- 'इस भारत भूमि को हम इसलिए पुण्यभूमि मानते हैं कि यह हमारे ऋषि-मुनियों देवताओं, वीर पुरुषों और संत महात्माओं की जन्मभूमि है, कर्मभूमि है। इससे हमारी वंशगत और सांस्कृतिक आत्मीयता के संबंध जुड□ हुए हैं।'

कांग्रेस ने इस देश का जन्म 15 अगस्त, 1947 से माना है, इसलिए उसने किसी को इस देश का 'राष्ट्रपिता' तो किसी को 'चाचा' बताना आरंभ कर दिया। यह उसका स्वयंभू अधिकार था, जिसके लिए उसने कभी इस देश की आम स्वीकृति प्राप्त करने का प्रयास नहीं किया। सारा देश स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात से कांग्रेस के इन स्वयंभू विश्वासघातों से लड□ता-जूझता चला आ रहा है। कुछ भी हो, आज जब इस देश का युवा 'सावरकर प्रकाश' के माध्यम से अपने देश के विषय में जान रहा है कि 'दो-ढाई हजार वर्ष पूर्व के काल में सिंधु नदी के उस पार ईरान की सीमा तक भारतीयों की बस्तियां और राज्य फैले हुए थे। आज जिसे 'हिंदुकुश' पर्वत कहते हैं, उसे ग्रीक लोक 'पेरोपनिसस' कहते थे। आज जिसे हम अफगानिस्तान कहते हैं, उसे उस समय गांधार कहा जाता था। अफगानिस्तान का प्राचीन नाम 'अहिगण स्थान' था। काबुल नदी का तत्कालीन नाम कुंभा था। हिंदुकुश पर्वत तक व्याप्त इन सभी क्षेत्रों में भारतीयों के छोटे-बड□ राज्य फैले हुए थे। यहां इन राज्यों से लेकर उस स्थान तक जहां सिंधु नदी समुद्र का आलिंगन करती है, सिंधु के दोनों तटों पर वैदिक धर्मानुयायी राज्य फैले हुए थे। इनमें से अधिकांश राज्यों में जनतंत्र था। उस काल में उन्हें गणराज्य कहा जाता था।'

राहुल गांधी की कांग्रेस को चाहिए कि वह 'हिंदुस्तान की कहानी' पढ□ने के लिए सावरकर की चेतना का प्रयोग करे, क्योंकि देश की जनता नेहरू की 'हिंदुस्तान की कहानी' के सच को समझ चुकी है और उसे रद्दी की टोकरी में फेंककर सावरकर के हिंदुत्व से और अपने स्वर्णिम अतीत से ऊर्जा लेने लगी है, 'सांस्कृतिक राष्ट्रवाद' की ओर बढ□ चुकी है। इसी से पता चल जाता है कि देश में 'सावरकर की जय' और इंडिया बसाने वालों की पराजय हो चुकी है। 26 मई, 2014 को मोदीजी देश के प्रधानमंत्री बने, संयोग से 27 मई को नेहरू का मरण दिन और 28 मई को सावरकरजी का जन्मदिन था। क्या अद्भुत संयोग था- एक गया तो दूसरा आ गया।

गांधी और सावरकर की कार्य शैली

अब हम देखेंगे कि गांधीजी और वीर सावरकरजी की कार्यशैली व चिंतनशैली में कितना मौलिक मतभेद था? सावरकर जी ने उन मुस्लिम लीगी और अलगाववादी मुस्लिम नेताओं को लताड□ते हुए कहा था, जो देश के बंटवारे की कीमत पर ही स्वतंत्रता आंदोलन में सहयोग करने की बात करते थे- 'साथ आओगे तो तुम्हारे साथ, न भी आओगे तो तुम्हारे बिना, विरोध में जाओगे तो तुम्हारा भी विरोध करते हुए (अर्थात हर स्थिति में) हम स्वातंत्र्य समर जारी रखेंगे।'

बात स्पष्ट है कि सावरकरजी को स्वतंत्रता चाहिए थी और यदि उसमें कोई सहयोग करता है तो उत्तम और उसका स्वागत भी, पर यदि कोई विरोध करता है, तो उसको भी विरोधियों में सम्मिलित करके स्वतंत्रता की सतत साधना करते जाना उनका उद्देश्य था। वह जानते थे कि यदि मात्र तीन लाख अंग्रेज सात समंदर पार आकर भारत के 30 करोड□ लोगों पर शासन कर सकते हैं, तो भारत के 30 करोड□ लोगों में से जिस दिन मरने-मारने के लिए मात्र तीन लाख लोग एक साथ निकल पड□ेंगे, अंग्रेज उसी दिन भारत छोड□ जाएंगे। वह भारत के पौरुष और साहस को जानते थे कि इतने लोगों को बाहर निकालना भारत जैसे देश में कोई बड□ी बात नहीं है। इसलिए वह साहस की बात करते थे, शौर्य और वीरता की बात करते थे।

उधर गांधीजी थे। उनका मानना था कि अंग्रेजों से स्वराज्य तभी मिल सकता है, जब मुस्लिम साथ होंगे। उन्होंने कहा था-'हिंदू-मुस्लिम एकता के बिना स्वराज्य सर्वथा असंभव है।'

गांधीजी का जन्म 1869 में और सावरकरजी का जन्म 1883 में हुआ था। स्पष्ट है कि सावरकरजी गांधीजी से 14 वर्ष छोटे थे। 1896 में सावरकर 13 वर्ष के थे। तब उन्होंने एक 'गौरवगीत' रचा और महारानी विक्टोरिया की मूर्ति का मुंह काला कर उसे जूतों की माला पहनाई। मानो उन्होंने उसी दिन कह दिया था कि स्वतंत्रता हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है। गांधीजी 1896 में 27 वर्ष के थे और इस अवस्था में विक्टोरिया रानी हीरक समारोह के सदस्य थे। तब उन्होंने बच्चों को 'गॉड सेव द क्वीन' गीत कंठस्थ कराया था। कहने का तात्पर्य है कि 27 वर्षीय गांधीजी का रानी को जूतों की माला पहनाने का तो दूर, देश से सम्मानपूर्वक चले जाने को कहने का भी साहस नहीं था। 1897 में सावरकरजी ने वाक्यस्पर्धा में ओजस्वी भाषण देकर नासिकवासियों का मन जीत लिया था। जबकि 1895 में गांधीजी सभा में अपना पहला भाषण भी नहीं पढ□ पाए थे। उनका भाषण किसी अन्य व्यक्ति ने पढ□कर सुनाया था।

1904 में सावरकरजी ने घोषणा की थी- 'आसुरी शस्त्र बल से अपने देश पर शासन चलाने वाली विदेशी दण्डसत्ता को दैवी शस्त्रबल से ही उखाड□ फेंकना अनिवार्यत: संभव है। राजकीय स्वतंत्रता की कल्पना तक उस राष्ट्र को छोड□ देनी चाहिए, जिस राष्ट्र को सशस्त्र क्रांतियुद्ध का संघर्ष अशक्य व असंभव लगता हो। इतिहास का यही कठोर सिद्धांत है।'

इसी समय गांधीजी कह रहे थे- 'एडवर्ड राजा के भारतीय तथा यूरोपियन प्रजाजनों को निकट लाना। लोकमत को इष्ट रूप से प्रवाहित करना। हिंदी जनों को उनके अपने दोष, त्रुटियां समझाना तथा अपने न्यायपूर्ण अधिकारों को स्थापन करने हेतु उनकी सहायता करना।'

इस पर सावरकरजी से 1906 में एक युवक ने प्रश्न किया कि क्या आप गांधीजी के इस प्रकार के मत से सहमत हैं, तब उन्होंने लंदन जाते-जाते जहाज पर मिले उस युवक से कहा था- 'ब्रिटिशों के राजकाज में सुधार लाना हमारा प्रश्न नहीं है, ब्रिटिश राज को ही हम नहीं चाहते। ब्रिटिशों की पहनाई हुई बेडि□यां चाहे सोने की हों, बेडि□यां ही तो हैं, जिन्हें तोड□कर हम चाहते हैं कि हिंदुस्तान को स्वतंत्र करें।'

1907 में वीर सावरकर ने 1857 की क्रांति की 50वीं वर्षगांठ लंदन में समारोहपूर्वक मनाई। अपने स्वतंत्रता सैनानियों को 'स्वातंत्र्यवीर' कहा, पर गांधीजी ऐसा कहने का साहस नहीं कर पाये। 1909 में विजयदशमी के दिन लंदन में क्रांतिकारियों ने एक विशेष कार्यक्रम किया। जिसके आयोजक सावरकरजी और उनके साथी ही थे। कार्यक्रम की अध्यक्षता गांधीजी से करायी गयी। तब गांधीजी ने कहा था- 'कुछ मतभिन्नता के उपरांत भी देशभक्त सावरकरजी के साथ कुछ समय बिताने का सौभाग्य मिला, यह मेरे लिए प्रसन्नता की बात है। 'उनकी देशभक्ति तथा उनका स्वार्थत्याग, इनके परिणामस्वरूप मधुर फल अपने देश को निरंतर प्राप्त होवें।' वीर सावरकर ने 1857 का स्वातंत्र्य समर जब लिखा, तो उसको लिखने का उद्देश्य स्पष्ट करते हुए लिखा- 'स्वराज्य एवं स्वधर्म के कारण जूझते-जूझते रणक्षेत्र में सहस्रावधि अज्ञात हुतात्माओं का पतन हो गया। आप जैसे वीरों की स्मृति को यह ग्रंथ समर्पित है। मानवता की सेवा करने हेतु जो अपना देहार्पण किया, उन नामों का उच्चारण तक का सौभाग्य भी दुर्भाग्यवश हमें प्राप्त नहीं हुआ। विजय हाथों से निकलते देखकर भी आपने अपनी कीर्ति पर किंचित मात्र धब्बा नहीं लगने दिया। ...आपका वही पराक्रम भविष्य के लिए चैतन्य निधान एवं प्रेरणा का स्रोत बना रहे।'

स्पष्ट है कि वीर सावरकर सहस्रावधि से जलती आ रही स्वतंत्रता की ज्योति को और भी अधिक प्रज्ज्वलित करना चाहते थे। इसलिए अपने वीरों के शौर्य को जीवंत बनाये रखने के लिए उन्होंने यह ग्रंथ लिखा। उधर गांधीजी थे, जिन्होंने 'हिन्द स्वराज्य' नामक पुस्तक केवल इसलिए लिखी कि भारत में अंग्रेजों के विरुद्ध जिस पराक्रम, शौर्य और वीरता का प्रदर्शन क्रांतिकारी कर रहे हैं, उसकी ज्योति को जितना शीघ्र हो सके बुझा दिया जाए। वह लिखते हैं- 'भारत में तथा दक्षिण अफ्रीका में 'हिंसावादी पंथ' बढ□ रहा है (क्रांतिकारी सक्रिय हो रहे हैं) उस पंथ को इस राह पर से परावृत्त (अंग्रेजों के विरुद्ध संघर्ष से परे हटा दिया जाए) कर दिया जाए, इस हेतु से यह पुस्तक लिखी गयी है।'

सावरकरजी ने कितने ही लोगों को सत्याग्रह और अनशन करने से रोककर शत्रु को क्षति पहुंचाने वाली देशभक्ति के मार्ग पर चलने की प्रेरणा दी। कारण कि वह सत्याग्रह, अनशनभरी अहिंसा को अपने देश की स्वतंत्रता के मार्ग में बड□ी बाधा मानते थे। उनके कारावास के काल में नानी गोपाल नामक राजबंदी अंग्रेजों के अत्याचार से दु:खी होकर एक बार आमरण अनशन पर जाने लगे, तो उन्होंने श्री गोपाल को समझाते हुए कहा- 'इस भांति मरने की अपेक्षा कुछ पराक्रम करें, शत्रु पक्ष की हानि किया करें और फिर मरें यही उचित होगा।' जब 1914 में प्रथम विश्वयुद्ध आरंभ हुआ तो सावरकरजी उन दिनों जेल में थे। अण्डमान में उन्हें

इसकी सूचना मिली तो कहने लगे- 'बहुत बुरी बात तो यह है कि इस पर्व के सुअवसर पर हम यहां अण्डमान में बंद पड□ हैं।' इसका अभिप्राय था कि वीर सावरकर जी विश्वयुद्ध में उलझे ब्रिटेन की विवशता का लाभ उठाकर तथा उसके शत्रुओं से उस समय हाथ मिलाकर अपना काम सिद्ध कर जाना उपयुक्त मान रहे थे।

इसके विपरीत गांधीजी 8 अगस्त, 1914 को जब लंदन पहुंचे तो उस समय उन्होंने एक सभा को संबोधित करते हुए कहा था- 'इंग्लैंड पर आये हुए महायुद्ध के संकट का लाभ उठाकर हम अपनी मांगें बड□ जोर से और बड□ी ताकत के साथ पेश करेंगे। इस विचारधारा को रखने वाला एक वर्ग था, किंतु मेरे मन में है कि इंग्लैंड पर छाये इस प्रकार के संकट का लाभ हम न लें।' जो लोग गांधीजी की इस घोषणा से सहमत थे, उन सबके हस्ताक्षर सहित एक आवेदन उन्होंने ब्रिटिश सरकार को भेज दिया, जिससे कि ब्रिटिश सरकार भारतीय लोगों से आश्वस्त हो जाए कि वे इस आपदकाल में उसके विरुद्ध ऐसा कुछ भी नहीं करेंगे, जो उसके लिए कष्टकर हो। गांधीजी की इस घोषणा का एक अभिप्राय यह भी था कि यदि हमारे इस आवेदन के उपरांत भी कोई व्यक्ति ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध कोई क्रांतिकारी गतिविधि करता है तो यह उसका व्यक्तिगत विचार होगा। हम भारतीयों का (आवेदन पर हस्ताक्षर इसीलिए कराये गये थे कि वह आवेदन सब भारतीयों की ओर से लिखा गया, माना जाए) उससे कोई लेना-देना नहीं होगा। ऐसे गांधीजी से किसी भगत सिंह या उसके साथी को फांसी से बचाने की अपेक्षा भला कैसे की जा सकती थी?

सावरकरजी देश में एक देव, एक देश, एक आशा, एक जाति, एक जीव, एक भाषा के समर्थक थे। अपने आजीवन कारावास के दिनों में वह लोगों को यही पाठ पढ□ाते थे। जिससे पता चलता है कि वे किस प्रकार की राष्ट्रीय एकता के समर्थक थे, पर गांधीजी देश में हर स्थान पर विभिन्नताएं ही खोजते रहे और उन्हें खाद-पानी भी देते रहे। जिससे देश में साम्प्रदायिकता बढ□ी और गांधीजी के राष्ट्रवाद में मिलने वाले विभिन्नता के बीज का लाभ उठाकर मुस्लिम लीग का द्विराष्ट्रवाद का सिद्धांत विकसित होते-होते एक दिन वट वृक्ष बन गया। गांधीजी ने 4 फरवरी, 1916 को लॉर्ड हार्डिग के हाथों काशी में हिंदू विद्यापीठ के भवन की नींव रखे जाने के अवसर पर अपना भाषण देते समय स्पष्ट कहा था- 'इन अत्याचारी (क्रांतिकारी) विद्रोहियों की देशप्रीति के कारण मेरे लिए वे आदर के पात्र हैं। अपने देश के वास्ते वे मृत्यु को गले लगाने के लिए तैयार रहते हैं। उनकी यह वीरवृत्ति मेरे लिए निरंतर कौतुक का विषय है। फिर भी उनका मार्ग मुझे पसंद नहीं है।' 1916 में गांधीजी ने इसी विद्यापीठ के इस कार्यक्रम में विद्यार्थियों को शिक्षा प्रदान करने का माध्यम उनकी मातृभाषा ही होनी चाहिए, ऐसा कहा था, पर 1925 में गांधीजी अपनी बात से पलट गये-जब उन्होंने हिंदुस्तानी को राष्ट्रभाषा बनाने संबंधी पारित प्रस्ताव पर अपनी सम्मति प्रदान कर दी।

सावरकरजी के प्रति लोगों में कितना सम्मान भाव था, इसका पता हमें सावरकरजी से अण्डमान में मिले कुछ बंदियों के इस कथन से चल जाता है- 'आप जबसे अण्डमान आये हैं, अमेरिका से जलयान में आने वाले हिंदी लोग अण्डमान की ओर सम्मुख होकर नमस्कार करते हैं।' यह सम्मान केवल इसीलिए था कि वे क्रांति में विश्वास करते थे। 12 अप्रैल, 1919 को कर्णावती (अहमदाबाद) में क्रांतिकारियों ने बड□ा ऊधम मचाया। वहां पर सैनिक शासन लागू कर दिया गया। तब 23 अप्रैल को गांधीजी वहां चले गये। उन्होंने कहा- 'इस

नगर में कुछ दिन पहले जो घटनाएं हुईं, वे लांछनास्पद हैं। यह सब मेरे नाम पर किया गया, इसलिए मैं बहुत शर्मिंदा हूं।' जलियांवाला बाग हत्याकाण्ड पर भी गांधीजी के विचार देखने योग्य हैं- 'वहां अपने निरपराध बांधवों का कत्लेआम कर दिया गया, इस बात का मुझे अफसोस है, लेकिन अपने लोगों ने अंग्रेजों के खून किये इस बात का मुझे अधिक दु:ख है।' सरदार भगत सिंह और उनके साथियों को फांसी गांधीजी के कारण हुई थी। जिस पर हमने पूर्व में प्रकाश डाला है। इसी वर्ष (1931) 4 अगस्त को उन्होंने कहा था- 'कुछ युवक मुझसे कहते हैं कि अगर तुम हमारी सहायता नहीं करते हो तो चुपचाप बैठे रहो। उत्तर में मेरा कहना है कि क्या अंग्रेज अधिकारियों का खून करना चाहते हो? तो फिर उसके पूर्व तुम मुझे ही जान से क्यों नहीं मार डालते हो? जब तक मैं जिंदा हूं, तुम्हारा प्रतिरोध करता ही रहूंगा। अगर मुझे जिंदा रखना चाहते हो तो सरकारी अधिकारियों के खून मत किया करो।' दु:ख की बात यह थी कि गांधीजी ने ऐसे कठोर शब्द कभी भी अंग्रेजों या मुस्लिमों से नहीं कहे कि मेरे देशवासियों या हिंदू लोगों का खून करना बंद करो, अन्यथा मैं जिंदा नहीं रह सकता। बस उनका यह दोगलापन ही आज तक बहुत से देशवासियों को अखरता है।

गांधी से चार गुणा अधिक जेल में रहे सावरकर

हमारे क्रांतिकारियों ने हर वर्ष की भांति 1933 के प्रारंभ से ही कई स्थानों पर बम विस्फोट कर-करके सरकार की नाक में दम कर दिया था। सरकार का उन दिनों वश चलता तो वह एक क्रांतिकारी को भी नहीं छोड□ती, परंतु क्रांतिकारियों के पीछे जनता-जनार्दन का व्यापक समर्थन था, इसलिए सरकार पूर्णत: क्रूर और आततायी होते हुए भी कुछ करने से पहले कई बार सोचती थी। इसका एक कारण यह भी था कि भारत में उन दिनों अंग्रेजों की कुल संख्या अधिकतम तीन लाख ही थी। इतनी संख्या के बल पर भारत में शासन करना 'फूट डालो और राज करो' की उनकी नीति के आधार पर ही संभव था। इसके लिए एक सबसे बड□ी बाधा उनके सामने यह थी कि सारे क्रांतिकारियों में से उन्हें कोई संगठन या व्यक्ति (एक दो अपवाद को छोड□कर) ऐसा नहीं मिलता था, जो उन्हें भारत के स्वातंत्र्य समर की क्रांतिकारी गतिविधियों को शिथिल कराने में सहायक हो जाए। पर हां, गांधीजी अंग्रेजों को अवश्य समय-समय पर अपनी ओर से 'सहायता' करने का कार्य करते रहते थे।

1933 की क्रांतिकारी गतिविधियों के दृष्टिगत गांधीजी ने 8 मई, 1933 से अनशन प्रारंभ किया। इस पर सरकार ने उन्हें कारागृह से मुक्त कर दिया। तब उन्होंने बाहर आकर जो लिखा, वह आंखें खोलने वाला है- 'इस आंदोलन के साथ-साथ गुप्त मार्गों का इस आंदोलन के प्रवाह में जो चञ्चु प्रवेश होता जा रहा है, वह बड□ा ही घातकारक रहेगा। सरकार को मैं आश्वस्त करता हूं कि मेरी मुक्ति का गलत प्रयोग मैं कभी नहीं होने दूंगा। (कहने का तात्पर्य है कि मैं ऐसा कोई कार्य नहीं होने दूंगा, जो ब्रिटिश सरकार के हितों के विपरीत हो) अपने अनशन के बाद देशभर की स्थिति वर्तमान जैसी ही रहेगी, तो मैं सरकार से प्रार्थना करूंगा कि मुझे फिर यरवदा के (यहां गांधीजी कहना चाहते हैं कि यदि मेरे बाहर रहते हुए भी क्रांतिकारी गतिविधियां यथावत जारी रहीं तो) कारागृह में लेके रखा जाए।' सावरकर जी गांधीजी की अहिंसा के तीव्र आलोचक थे। वह नहीं चाहते थे कि गांधीजी की अहिंसावादी नीतियों को इस देश के स्वतंत्रता आंदोलन की मुख्यधारा घोषित कर दिया जाए, या उसे इस रूप में मान्यता दी जाए। क्योंकि इस अहिंसावादी आत्मघाती नीति ने सावरकरजी की दृष्टि में भारत के स्वातंत्र्य समर को ही तेजोहीन कर दिया था।

सावरकरजी ने लिखा था- 'स्वर्गीय लोकमान्य जी के पश्चात शीघ्र ही खिलाफत जैसा अत्यंत आत्मघातक आंदोलन चला और एक वर्ष के भीतर-भीतर चरखा चला-चला के एवं अहिंसा और सत्यपूर्ण असहयोग से स्वराज्य पाएंगे। पर सत्य और अहिंसा की विपरीत परिभाषाओं से तेजोहीन तथा तेजनाशक असहयोग से स्वराज्य प्राप्ति की आकांक्षा आत्मवंचक उन्माद अर्थात बुद्धि भ्रम जैसा आतंक फैलता गया।'

गांधीजी की आलोचना करना सावरकरजी के लिए इसलिए भी आवश्यक हो गया था कि गांधीजी का मुस्लिम प्रेम देशघातक होता जा रहा था और उसके उपरांत भी गांधीजी थे कि इस

सत्य को मानने को तैयार नहीं थे। जिस मुगल या तुर्क सत्ता से हिंदू सदियों से संघर्ष करते आये थे, गांधीजी का मुस्लिम प्रेम सारे हिंदू समाज को फिर उसी मुगल बादशाहत की कैद में डालने को भी तैयार था। यह आश्चर्य की बात थी कि गांधीजी देश को पुनः मुगलों का गुलाम बनाने को भी आजादी ही मान रहे थे। उनकी यह अनोखी धर्मनिरपेक्षता थी कि देश को मुस्लिम शासन के अधीन रखने पर तो उन्हें लगता था कि हम उसमें धर्मनिरपेक्ष लोकतांत्रिक भारत का निर्माण कर लेंगे, पर हिंदू राज्य में ऐसा नहीं हो पाएगा। जबकि सावरकर का मानना था कि भारत में पंथनिरपेक्षता का वास्तविक स्वरूप तभी बच सकता है, जब भारत को 'हिंदू राज्य' घोषित किया जाएगा।

गांधीजी का कहना था- 'हिंदू-मुस्लिम एकता की खातिर, जो भी मुस्लिमों को चाहिए, उन्हें दे देना चाहिए। ...अंग्रेज सरकार अगर तमाम हिंदुस्तान की सत्ता मुस्लिमों को सौंप दे तो भी हमें कोई एतराज नहीं। निजाम अगर तख्तनशीन बादशाह भी बने तो भी मैं समझूंगा कि वह सौ टका स्वराज्य ही है।'

गांधीजी के इस चिंतन ने महाराणा प्रताप, शिवाजी, गुरु गोविन्द सिंह, वीर बंदा वैरागी आदि वीरों की उस परंपरा के पौरुष को तेजोहीन कर दिया, जो भारत को मुगलकाल में विदेशी सत्ताधीशों के अत्याचारों से मुक्त करने के लिए कठोर परिश्रम करते रहे थे। इन महान वीरों की उपेक्षा का दोष भी इस प्रकार गांधीजी के उपरोक्त विचारों को ही दिया जा सकता है। यह भी गांधीजी ही थे, जिन्होंने सुभाष को कांग्रेस से केवल इसलिए निकाल बाहर किया था कि नेताजी सुभाषचंद्र बोस ने जनवरी, 1939 में कांग्रेस के अध्यक्ष पद का चुनाव गांधीजी के प्रत्याशी पट्टाभिसीता रमैया को परास्त कर 1375 मतों के मुकाबले 1580 मत प्राप्त करके जीत लिया था। इस पर गांधीजी ने नेताजी सुभाषचंद्र बोस को अपने सामने से स्थायी रूप से हटाने का निर्णय लिया। उधर नेताजी ने सारी परिस्थितियों को समझकर कांग्रेस के अध्यक्ष पद से त्यागपत्र दे दिया, परंतु गांधीजी को इतने से भी चैन नहीं मिला, इसलिए उन्होंने नेताजी सुभाषचंद्र बोस को बाहर का रास्ता दिखाने के लिए तीन वर्ष के लिए कांग्रेस से निकालने संबंधी प्रस्ताव कांग्रेस से पारित करा दिया। कारण केवल यह था कि नेताजी सुभाषचंद्र बोस अंग्रेजों को हिंसा के बल पर अपने देश से बाहर भगाने के समर्थक थे और कांग्रेस के लोगों का बहुमत उनके साथ था। इसलिए अपने विचार और अपनी नीतियों में बाधक नेताजी सुभाषचंद्र बोस को एक 'महात्मा' अपने साथ रखने के लिए 'सहिष्णुता' का प्रदर्शन नहीं कर सका।

1940 में जब ऊधम सिंह ने लंदन में जाकर ओ. डायर को मार डाला तो गांधीजी ने कहा था- 'मैं इसे बहके हुए पगले (व्यक्ति) का कृत्य मानता हूं।' उधर सावरकरजी थे, जिन्होंने ऊधम सिंह द्वारा ओ. डायर के मार डालने का समाचार पाते ही लिखा- 'सशस्त्र क्रांतिकारी अंग्रेज अधिकारियों की बलि लेते ही सारी जनता एवं ब्रिटिश राजसत्ता डर के मारे कांप उठती थी। कुछ देशभक्त वीरों को फांसी मिलती थी, तो यह भी सुनिश्चित था कि ब्रिटिश राजसत्ता को पहुंचे हुए आघात से हिंदुस्तान का लोकमत शांत करने के लिए कुछ सुधार का चारा दे दिया जाता था।'

15 सितंबर, 1940 को गांधीजी ने मुंबई में कांग्रेस महासमिति के समक्ष कहा- 'मैं यह बिलकुल नहीं चाहता हूं कि इंग्लैंड को (द्वितीय विश्वयुद्ध)परास्त होना पड□। या उसकी

मानहानि होकर उसे मुंह की खानी पड□। इंग्लैंड सशस्त्र युद्ध करता है और मैं पूर्णतया अहिंसावादी हूं, फिर भी अंग्रेजों के प्रति मेरे मन में सहानुभूति की भावना है।'

यह दुर्भाग्यपूर्ण ही कहा जाएगा कि गांधीजी की सहानुभूति अपने क्रांतिकारियों के साथ न होकर अंग्रेजों के साथ थी। वह अंग्रेजों की अहिंसा को भी अहिंसा नहीं मानते थे। इस प्रकार की बातों को देखकर ही 20 जनवरी, 1942 को सावरकरजी ने एक पत्र में बताया कि-'जब तक कांग्रेस की बागडोर गांधीजी जैसे (नायक) के हाथों में है, तब तक ब्रिटिश सरकार के लिए डरने की कोई आवश्यकता नहीं है। मैं अच्छी तरह से जानता हूं कि ब्रिटिश सरकार के तथा ब्रिटिश जनता के वे शुरू से ही हितचिंतक रहे हैं। वे यद्यपि कहते हैं कि ब्रिटेन और फ्रांस ही बड□ लोकतांत्रिक राष्ट्र हैं। ब्रिटिश राज्य के ऊपर युद्ध जैसी विपत्ति आते ही कांग्रेस ने प्रांतिक सत्ता स्थान भी छोड□ दिया, किंतु अब, राजनैतिक सरकार में काम करने के लिए कांग्रेस तरसती है, इसलिए शासन उससे (कुछ तरस खाये और) चर्चा करे।'

सावरकरजी, ब्रिटिश सत्ताधीशों को, जहां भी दांव लगता था और जहां भी वे उचित मानते थे, लताड□ने से चूकते नहीं थे और गांधीजी अंग्रेजों की चापलूसी के किसी अवसर को जाने देना नहीं चाहते थे। वीर सावरकर के कठोर दृष्टिकोण और स्पष्टता लिए हुए राष्ट्रवाद के दृष्टिगत अंग्रेजों ने अपनी ओर से हिंदू महासभा उनकी किसी चाल को सफल नहीं होने देगी। हां, कांग्रेस को वे जैसे चाहें, मूर्ख बना सकते थे। जून, 1945 में डॉ. खरे ने भारत के वायसराय से निवेदन किया कि वह शिमला परिषद में हिंदू महासभा के नेताओं को भी निमंत्रण दें। तब वायसराय लॉर्ड वेवल ने कहा था- 'मैं हिंदू महासभा के नेताओं को कभी नहीं बुलाऊंगा। चूंकि कांग्रेस की अपेक्षा हिंदू महासभा ब्रिटिश साम्राज्यशाही के विरोध में बड□ी कड□ाई रखती है।'

आज के कांग्रेसी अकसर यह भी कह दिया करते हैं कि देश का विभाजन हिंदू साम्प्रदायिक नेताओं की देन है। इसमें भी पता चलता है कि वे इतिहास के तथ्यों का किस प्रकार 'शवोच्छेदन' कर रहे हैं? उन्हें 3 जून, 1947 को कांग्रेस के नेहरूजी की यह टिप्पणी तनिक ध्यान से पढ□नी चाहिए, जो उन्होंने आकाशवाणी पर जाकर व्यक्त की थी- 'हिंदू भूमि का 'पार्टीशन' करना पड□ रहा है, यह हम सबके लिए अफसोस की बात है, लेकिन वह घर हमेशा के लिए खून से रंगता रहे, इसकी अपेक्षा प्राप्त परिस्थितियों में उस पर 'शस्त्रक्रिया' करना ही ठीक रहेगा। इस विचार को सामने रखकर देश विच्छेदन को स्वीकार किया गया है।'

4 जून को गांधीजी ने कहा- 'देश विच्छेदन के लिए माउण्टबेटन को दोषी नहीं ठहराया जाएगा। मुस्लिम लीग के हठ को पूरा करने के लिए कांग्रेस खड□ी है। ...खून-खराबा टालने के लिए उभय पक्षों की स्वीकृति से विभाजन किया गया है।'

कांग्रेस के दोनों बड□ नेताओं ने किसी क्रांतिकारी को या किसी हिंदूवादी दल को विभाजन के लिए दोषी नहीं माना। दोनों ने ही हिंदूभूमि के विभाजन के लिए मुस्लिम लीग के साम्प्रदायिक दृष्टिकोण को ही प्रमुख रूप से दोषी माना है।

1 जुलाई, 1947 को वीर सावरकरजी ने एक 'पत्रक' में लिखा कि- 'हिंदुओं यदि आप आत्मघात करेंगे तो आपका भविष्य उज्ज्वल है। निराश न होइये। प्रण कीजिए कि हम हिंदू ही

राष्ट्र हैं। अखण्ड हिंदुस्तान ही हमारी पितृभूमि एवं पुण्यभूमि है। भ्रांत राष्ट्रवादी कांग्रेस वालों ने विश्वासघात करके (अर्थात नेहरू-गांधी ने गद्दारी करके) देश के विच्छेदन को स्वीकार किया है, तो भी पाकिस्तान से अलग फूटने वाले प्रांतों को भारत में पुन: सम्मिलित करते हुए हम अखण्ड हिंदुस्तान बना देंगे। इसके लिए राजनीति का हिंदूकरण और हिंदुओं का सैनिकीकरण इस मार्ग का अनुसरण करते रहेंगे।' दुर्भाग्यवश आज हिंदू महासभा पर उन लोगों का कब्जा है, जो स्वार्थ में डूबे हैं। 'जय हिंदू राष्ट्र' कहते हैं 'भारत देश अखण्ड हो' का नारा भी लगाते हैं-परंतु स्वयं खण्ड-खण्ड हैं। सावरकर के सपने कैसे साकार होंगे? बालाराव सावरकरजी ने गांधीजी और सावरकरजी के विषय में लिखा है कि कुल मिलाकर सावरकरजी को 5545 दिन प्रत्यक्ष कारागार में तथा 4865 दिन स्थानबद्धता में रहना पड□ा। दोनों को मिलाकर 10,410 दिन अर्थात 28 वर्ष 200 दिन उन्हें अंग्रेजों की जेल या स्थानबद्धता में व्यतीत करने पड□। जबकि गांधीजी को 905 दिन का कारावास और 1365 दिन के लिए स्थानबद्ध किया गया। कुल मिलाकर यह अवधि 7 वर्ष 10 महीनों की बनती है। पाठकवृन्द अनुमान लगायें कि कष्ट किसने अधिक सहे और अधिक कष्ट सहकर भी कौन अधिक आत्माभिमानी रहा? यदि मैं और आप एक ही निष्कर्ष के हों तो बोलिए- 'स्वातंत्र्य वीर सावरकर की जय।' और 'सावरकर का मंत्रमहान-हिंदी, हिंदू, हिंदुस्तान।' फिर भी गांधीजी के प्रति हम उचित सम्मान अवश्य रखें।

1857 की क्रांति पर सावरकर का चिंतन

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के जिस क्रांतिपुंज वीर सावरकर की बात हम कर रहे हैं, उनका जन्म 28 मई, 1883 को महाराष्ट्र के नासिक जिले के ग्राम भगूर में चितपावन वंशीय ब्राह्मण श्री दामोदर सावरकर के घर हुआ था। उनकी माता का नाम राधाबाई था। माता-पिता दोनों ही भारतीय संस्कृति के प्रति समर्पित थे, विचारों से दोनों ही हिंदुत्वाभिमानी और धार्मिक वृत्ति के थे। पिता अपने पुत्र को अपनी संस्कृति के प्रति समर्पित करने के उद्देश्य से बचपन से ही महापुरुषों के जीवनवृत्त सुनाया करते थे। रामायण और महाभारत की कथा बालक विनायक दामोदर सावरकर को बचपन में ही कंठस्थ करा दी गयी थी। मां राधाबाई की स्थिति भी ऐसी ही थी। वह भी अपने वैदुष्य को अपने बालक के सुकोमल मन में पूर्णत: उंड□ल देने का प्रयास करती थीं। अपनी हर संतान का पालन-पोषण दोनों पति-पत्नी ने इसी प्रकार किया था। मां अपने पुत्र विनायक को वैसे ही संस्कारित करती थीं, जैसे माता जीजाबाई शिवाजी को किया करती थी। बालक विनायक दामोदर सावरकर भी अकसर कह दिया करता था- 'मां मैं बड□ा होकर शिवाजी बनूंगा।' तब मां को बड□ी प्रसन्नता मिलती थी। प्रसन्नता से मां अपने बच्चे का चुम्बन ले लेती। मुख चूमती, सिर पर हाथ फेरती।

जब बालक विनायक 10 वर्ष का ही था, तभी माता राधाबाई का देहांत हो गया। पर संसार से जाने से पूर्व मां इस पुत्र को इतना कुछ दे गयी थी कि उस दिये हुए को विनायक आजीवन समाप्त नहीं कर पाया। मां के जाने के पश्चात बालक विनायक अपने देश की स्वाधीनता के सपने लेने लगा। वह हिंदी स्वराज्य के लिए संघर्ष करने की बात सोचता और उसी की योजनाओं में डूबा रहता। विनायक ने पांचवीं तक की शिक्षा अपने गांव में प्राप्त की और उससे आगे की शिक्षा के लिए उसे नासिक भेज दिया गया। बालक विनायक अब युवा होता जा रहा था। ज्यों-ज्यों वह बड□ा हो रहा था, त्यों-त्यों उसके भीतर का 'तात्या' (उनका अपना घरेलू नाम था) मचलता और उसे हिंदवी स्वराज्य के लिए कुछ करने को प्रेरित करता। उससे प्रश्न पूछता कि मां को जो वचन दिये गये थे, वे अंतत: पूर्ण कब और कैसे किये जाएंगे? भागते हुए समय को देखकर विनायक यथाशीघ्र कुछ करने के संकल्पों से भर जाता था।

लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक उन दिनों 'केसरी' का संपादन कर रहे थे। उनके इस पत्र की उस समय के युवाओं और क्रांतिकारियों में अच्छी धूम मची थी। उनके लेख बड□ ओजस्वी होते थे और वह उस समय युवाओं के लिए प्रेरणा स्रोत बन चुके थे। विनायक ने अपने इस नायक लोकमान्य के 'केसरी' को पढ□ना आरंभ किया और 'हिंद केसरी' बनने के मार्ग पर आरूढ□ हो गया। अपने साथियों के साथ मां दुर्गा के सामने प्रतिज्ञा ली कि- 'मैं देश की स्वाधीनता के लिए जीवन के अंतिम क्षणों तक सशस्त्र क्रांति के माध्यम से जूझता रहूंगा।'

इसी युवा ने जिस संकल्प के साथ देशभक्ति के कंटकाकीर्ण मार्ग का अनुगमन किया, उसी पर चलते हुए जीवन व्यतीत किया और संसार से जाने से पूर्व अंतिम वसीयत में बड□ गर्व के साथ लिखा:-

'मेरा वंश संपूर्ण मानवजाति की सेवा में समर्पित रहा है। मैंने अपने संकल्प के अनुसार प्रत्येक दिवस के कार्य को किये बिना सूर्य को अस्त नहीं होने दिया। अपने समस्त कर्त्तव्यों की पूर्ति की चेष्टा मैंने भरसक की है। अपने कृतकार्यों से मेरा जीवन संपन्न बना है। धार्मिक, सामाजिक कोशिश, कर्त्तव्यों का पालन मैंने पूर्ण मनोयोग से किया है। मृत्यु के पश्चात होने वाली अवस्था में सुयोग्य निवास पाने के लिए मैंने अपने कर्मों से ही अग्रिम किराया चुका रखा है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि मैं मृत्यु उपरांत अपने कर्मों के बल पर एक अच्छी-सी कोठी प्राप्त करूंगा।'

अपनी प्रतिज्ञा पर आजीवन प्रसन्नता व्यक्त करने वाले वीर सावरकर ने अपने भाई को अंडमान से एक पत्र लिखा- 'संकटों को झेलने में ही हम सबकी कर्त्तव्यनिष्ठा समाविष्ट है। यशापयश केवल योगा-योग की ही बात है। जीवन भर युद्ध करते-करते आस्ट्रेलीट्ज को जीतकर भी नेपोलियन बिछौने पर चल बसता है। इसी प्रकार स्वातंत्र्य युद्ध में महारानी लक्ष्मीबाई तलवार के एक घाव से स्वर्ग सिधार जाती है।'

जैसा जिसका चिंतन होता है, जैसा जिसका संकल्प होता है, व्यक्ति वैसा ही बन जाता है। हम कैसे हैं या कैसे होंगे, इसे नापने के लिए बाहर किसी से जाकर पूछने की आवश्यकता नहीं है। हम वैसे ही हैं, और वैसे ही होंगे, जैसे लोगों को हम अपना आदर्श मानते हैं। क्योंकि ये आदर्श हमारे भाव जगत को भाव जगत विचार जगत को और विचार जगत कार्य जगत को बड□ा गंभीरता से प्रभावित करता है। कार्य जगत अंत में लोगों के मानस में जाकर हमारे विषय में उनके भीतर पुन: भाव जगत और विचार जगत का निर्माण करता है। तब वह हमारे विषय में कुछ कहते या लिखते हैं। उनके कहने या लिखने में देर हो सकती है, पर हमारे अंतर्मन पर लिखे हमारे आदर्शों को पढ□ने में हमें देर नहीं हो सकती। उन्हें पढ□ा और अपने विषय में अपना भविष्यफल स्वयं निकाल लो।

विनायक ने अपना भविष्यफल उसी दिन निकाल लिया था, जिस दिन उसने अपनी माता राधाबाई को यह वचन दिया था कि वह शिवाजी बनेगा। मानो उस दिन से शिवाजी उनके आदर्श बन गये। शिवाजी को आदर्श बनाने का अर्थ ही यह था कि स्वयं को संकटों के लिए तैयार कर लेना। मां भारती को पराधीनता की बेडि□यों से मुक्त करने हेतु देश में क्रांति का साज सजाना।

विनायक ने अपने कुछ उत्साही साथियों का चयन किया और 'मित्र मेला' संस्था के तत्वावधान में 'गणेशोत्सव' 'शिवाजी महोत्सव' आदि कार्यक्रम आयोजित करके युवकों में स्वाधीनता के प्रति चेतना का भाव उत्पन्न करने का कार्य आरंभ किया।

उन्हीं दिनों (जब वह 18 वर्ष के थे) तो 22 जनवरी, 1901 को महारानी विक्टोरिया का निधन हो गया। जिस पर देश में कांग्रेस के 'राजभक्तों' ने स्थान स्थान पर शोकसभाएं आयोजित कीं। परंतु राष्ट्रभक्त विनायक दामोदर सावरकर और उनके साथियों ने 'मित्र मेला' की बैठक के द्वारा स्पष्ट निर्णय लिया कि 'इंगलैंड की रानी हमारे शत्रु देश की रानी है। अत: हम शोक क्यों मनायें?'

उनके ऐसे विचारों को उनकी अंतश्चेतना सदा धारदार बनाती रही। 'अभिनव भारत' के विसर्जन समारोह में भाषण देते हुए कहते हैं- 'अपने देश की रक्षा व कल्याण के लिए

क्रांतिकारी शूरवीर कष्ट उठाते हैं। अब देश की आजादी की रक्षा के लिए किसी भूमिगत क्रांतिकारी संगठन की आवश्यकता नहीं है। अब राष्ट्र का निर्माण गोली से नहीं, मतपत्र से ही अपेक्षित है। किंतु आजादी की रक्षा के लिए सशक्त की महती आवश्यकता है। हमारे वैदिक सनातन धर्म में अहिंसा को मूल रूप में ग्रहण करने का कोई संकेत नहीं।'

'1857 का भारतीय स्वातंत्र्य समर' में वह कहते हैं- 'स्वराज्य की प्राप्ति का एकमात्र मार्ग है समरभूमि में शत्रु दलन। स्वतंत्रता की देवी भीख मांगने से नहीं, शीश-दान से रिझायी जाती है। 1857 में इस ऐतिहासिक तथ्य का प्रत्येक स्वातंत्र्य वीर ने साक्षात्कार कर लिया था। अत: चारों ओर एक ही नाद गूंज रहा था-युद्धाय पूज्यसव।'

जब सावरकर पुणे के फर्ग्यूसन कॉलेज में इंटरमीडिएट में पढ□ रहे थे, तो वहीं से क्रांतिकारी, गतिविधियों को बढ□ाने में सम्मिलित होने लगे थे। उन्होंने विभिन्न समाचार पत्र एवं पत्रिकाओं में लेख व कविताएं प्रकाशित करानी आरंभ कीं, जो कि देशभक्ति पर आधारित होती थीं। उनका इस प्रकार के लेखन का मूल उद्देश्य देश के युवा को अपने देश में क्रांति के माध्यम से स्वाधीनता का मार्ग प्रशस्त करने के लिए प्रोत्साहित करना होता था। उनके लेखों को 'काल' के संपादक श्री परांजपे ने प्रकाशित करना आरंभ किया था। इस प्रकार देश धर्म के एक महान नक्षत्र को अपनी प्रतिभा के प्रदर्शन का उचित मंच एवं माध्यम उपलब्ध हो गया। इन्हीं परांजपे महोदय ने ही सावरकर का परिचय लोकमान्य बालगंगाधर तिलक से कराया था। इन्हीं तिलक जी के विषय में उन्होंने अमरावती में भाषण देते समय कहा था- 'यह बात सही है कि महात्मा तिलक कांग्रेस में थे। लेकिन यह भी सही है कि महात्मा तिलक की कांग्रेस ने किसी पंथ, जाति या सम्प्रदाय या पक्ष के साथ पक्षपात का बर्ताव नहीं किया, उसे महत्त्व नहीं दिया गया था और न ही देशभक्ति को बाजारू रूप दिया गया था। बिना अहिंसा के राज्य क्रांति अशक्त है-इस पगली भाषा का उच्चारण तक उन दिनों किसी ने नहीं किया था। महात्मा तिलक कांग्रेस में थे और मैंने महात्मा तिलक से देशभक्ति की शिक्षा ली थी और उन्हीं की शिक्षा-दीक्षा पर मैं आज तक चल रहा हूं, मुझे विश्वास है कि उनके सिद्धांतों से मैंने कभी विश्वास घात नहीं किया। मैं हमेशा यही कहता आया हूं कि राष्ट्र कार्य या राजनीति में किसी प्रकार का पक्षपातपूर्ण व्यवहार नहीं होना चाहिए। हिंदू महासभा की तो यह नीति ही रही है कि धर्मपंथ या पक्ष के साथ पक्षपात का बरताव न किया जाए। यदि इस वास्तविक रूप में और सच्चे मार्ग से कांग्रेस चलेगी तो मैं भी खुशी के साथ उसमें सम्मिलित हो जाऊंगा।'

जब सावरकर जी बी.ए. के छात्र थे, तब उन्होंने 1905 में विदेशी वस्त्रों की होली के दहन का कार्यक्रम किया। पुणे के बीच बाजार में विदेशी वस्त्रों का ढेर लगाकर उन्हें अग्नि के समर्पित करने का एक कार्यक्रम आयोजित किया गया। जिसकी अध्यक्षता लोकमान्य तिलक ने की थी। इससे सावरकर पूरे देश में चर्चा में आ गये। उस समय अंग्रेजों का सामना करना हर किसी के वश की बात नहीं थी। इसका परिणाम यह हुआ कि सावरकर को फर्ग्यूसन कॉलेज के अधिकारियों ने कॉलेज से निष्कासित कर दिया। सावरकर के लिए यह कोई अप्रत्याशित बात नहीं थी, वह मनोवैज्ञानिक रूप से इस प्रतिक्रिया के लिए पूर्व से ही तैयार थे। तब उन्होंने बंबई विश्वविद्यालय से बी.ए. की परीक्षा उत्तीर्ण की। इसके पश्चात आपने 'अभिनव भारत' की स्थापना की। इस संगठन ने युवाओं में राष्ट्रभक्ति के भावों का संचार

करके शिवाजी महाराज को अपना आदर्श मानकर देश को स्वतंत्र कराने की दिशा में महत्त्वपूर्ण कार्य किया। इनके युवा साथी देशभक्ति के नशे में धुत्त होकर देश को स्वतंत्र कराने की शपथ लेते थे। उसके पश्चात अपने अभीष्ट की प्राप्ति के लिए यथेष्ट प्रयास करते थे।

1906 ई. में तिलकजी के आग्रह पर श्याम जी कृष्ण वर्मा ने 'शिवाजी छात्रवृत्ति' सावरकर को देना स्वीकार कर लिया। तत्पश्चात सावरकर 9 जून, 1906 ई. को इंग्लैंड के लिए प्रस्थान कर गये। उन दिनों लंदन में श्यामजी कृष्ण वर्मा अपनी क्रांतिकारी गतिविधियों के लिए बड□ा ख्याति प्राप्त कर चुके थे। उनका संगठन भारतीय छात्रों को विशेष रूप से अपने देश की स्वतंत्रता के लिए तैयार करता था। उनकी क्रांतिकारी गतिविधियों के लिए उन दिनों 'इंडिया हाउस' का प्रयोग किया जाता था। सावरकर अपने अध्ययन के लिए इसी 'इंडिया हाउस' में रहते थे। यहां पहुंचने के पश्चात उन पर वही मुहावरा लागू हो गया कि 'जहां चाह-वहां राह।' अर्थात जैसी उनकी विचारधारा थी और जैसा वह करना चाहते थे यहां उनसे वैसे ही लोग टकराने लगे। फलस्वरूप उनकी 'मित्र मंडली' का बड□ा तेजी से विस्तार हुआ। इस 'मित्र मंडली' में भाई परमानंद, सेनापति बापट, लाला हरदयाल, सरदार सिंह राणा, मैडम कामा और वीरेन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय जैसी अनेक विभूतियां और क्रांतिकारी व्यक्तित्व सम्मिलित थे। इसी 'इंडिया हाउस' में मोहनदास करमचंद गांधी भी 1906 में ही ठहरे थे।

'इंडिया हाउस' हमारे इस क्रांति नायक-महानायक और स्वाधीनता के विधायक-विनायक के कई महान कृतित्वों का साक्षी बना। इसी हाउस में रहते उन्होंने इटली के महान देशभक्त मेजिनी का जीवन चरित लिखा था। यहीं रहकर 'सिखों का इतिहास' नामक ग्रंथ लिखा। यहीं रहते उन्होंने पहले तो 1857 की क्रांति से संबंधित अभिलेखों का सूक्ष्मता से अध्ययन किया और फिर '1857 का प्रथम स्वातंत्र्य समर' नामक अपने महान ग्रंथ की रचना की। यह 1907 की बात है। उस समय हमारे देश में 1857 की क्रांति के 50 वर्ष पूर्ण होने पर लोग उसके अर्द्धशताब्दी समारोहों का आयोजन कर रहे थे। लोगों में अपने देशभक्तों और क्रांतिकारियों के प्रति बड□ा उत्साह था। उस समय सावरकर जी का यह ग्रंथ गरम लोहे पर चोट मारने वाला सिद्ध हुआ। सावरकर जी बड□ उत्साही क्रांतिकारी युवा थे। उन्होंने अंग्रेजों के घर लंदन में ही अपनी 1857 की क्रांति का अर्द्धशताब्दी मनाने की तैयारियां आरंभ कर दीं। 10 मई, 1907 को 'इंडिया हाउस' को दुल्हन की भांति सजाया गया था। अपने देश के स्वातंत्र्य समर में भाग लेने वाले हमारे अनेकों क्रांतिकारियों ने इस गौरवप्रद समारोह में अपनी सहभागिता सुनिश्चित की। भवन में मानो लघु भारत की उपस्थिति हो गयी थी। सर्वत्र गर्व-गौरव की सौरभ बिखरी पड□ी थी। स्वाधीनता के उत्साह के इत्र की सुगंधि से सारा वातावरण सुगंधित हो रहा था। जिसके वैभव में मंगल पाण्डे, लक्ष्मीबाई, वीर कुंवर सिंह, तात्या टोपे, बहादुरशाह जफर, नानाजी पेशवा आदि के चित्र और भी अधिक वृद्धि कर रहे थे। भारतीय युवक 1857 के 'वीर अमर रहें' के बिल्ले अपनी भुजाओं पर लगाकर घूम रहे थे या कार्यक्रम में आ रहे थे।

इसी कार्यक्रम में महानायक विनायक ने जब अपना संबोधन प्रारंभ किया तो 'इंडिया हाउस' भी अपने भाग्य को सराहने लगा था। क्योंकि आज पहली बार एक ऐसा वक्ता वह देख रहा था, जो वक्ता कम और व्याख्याता अधिक था। सावरकर जी ने सप्रमाण सिद्ध किया कि 1857 की क्रांति को केवल 'गदर' नहीं कहा जा सकता। यह क्रांति सुनियोजित थी और

भारत की स्वाधीनता का प्रथम समर था।

यहां कुछ युवा ऐसे भी आये थे, जो ऑक्सफोर्ड और कैम्ब्रिज विश्वविद्यालयों के छात्र थे। वे जब यहां से अपनी बांहों पर हमारे देशभक्त शहीदों के नाम या चित्र के बिल्ले लगाकर अपनी कक्षाओं में गये तो उनके अध्यापक उनके इस कृत्य पर अत्यंत क्रोधित हुए। पर उन्होंने उनके इस क्रोध की तनिक भी चिंता नहीं की। सावरकर जी के इस कार्यक्रम ने और उसमें दिये गये उनके भाषण ने संपूर्ण इंगलैंड को हिलाकर रख दिया था। क्रांति की इतनी बड□ी वकालत और वह भी शत्रु के घर में वस्तुत: आज से पूर्व कभी नहीं की गयी थी। इसलिए अब सावरकर कोई साधारण सावरकर नहीं रह गये थे, अब तो वह अंग्रेजों की दृष्टि में आ गये थे।

सावरकर जिस मिट्टी के बने थे, उसमें कहीं रुक जाना तो लिखा ही नहीं था। इसलिए क्रांति के गुणगायक ने अब क्रांति पथ का निर्माण करने का निर्णय लिया। उन्होंने बम बनाने की विधि का अध्ययन किया। बापट और साथी हेमचंद दास को इस कार्य के लिए उन्होंने पेरिस भेजा। जिन्होंने बम मैनुअल की प्रतियां तैयार कीं और वे प्रतियां भारत में भी भेजी गयीं। इन प्रतियों को देखकर लोकमान्य तिलक की आंखों में आंसू आ गये थे। उन्हें लगा कि सावरकर को खोजकर उन्होंने अपने जीवन का सबसे बड□ा रत्न पा लिया था। अपने क्षेत्र में तिलक यदि गुरु बिरजानंद थे, तो सावरकर आज दयानंद सिद्ध हो गये थे।

देशजागरण ही स्वधर्म : सावरकर

'दिव्य मातृ सेवा व्रत की ईश्वरीय दीक्षा में सहभागी होने से मधुरतर हुए मधुमय मित्रता के रेशमी धागे से जिनके हृदय बंधे हुए हैं ऐसे मित्रों! तुम्हें मेरा यह अंतिम प्रणाम। कली की सुगंध को धीरे से जागृत करने वाले प्रात:काल के ओस जल जैसे तरोताजा और वैसा ही मृदुल विदाई का प्रणाम स्वीकार करो।

विधाता द्वारा सौंपे हुए कार्य करने के लिए हम दूर जा रहे हैं। वह कार्य करते हुए कभी हम सुलगते पाषाण से बांधे या बंद किये जाएंगे या कीर्ति की उछलती लहर पर हिचकोले खाएंगे। क्षण में दिखें, तो क्षण में छिपें। कभी शिखर पर तो कभी तल में गड□। उस उत्कृष्ट सेनानायक ने अपने को कहीं भी कार्य पर नियुक्त किया हो, पर वही सर्वोत्तम करेंगे। मानो उस स्थान पर वैसा काम करना ही अपना जीवन कार्य है।

किसी प्रतिभापूर्ण पौरस्त्य कवि ने कहा 'नाटक में भरतवाक्य के समय मृत या जीवित सारे पात्र इतिहास के विस्तृत रंगमंच पर संतुष्ट हुए समग्र मनुष्य जाति के प्रेक्षकों के कृतज्ञ यशोगर्जन से और तालियों से घाटी पर्वत गूंजते समय हम सब फिर इकट्ठा होंगे।

मुझ दीन की अस्थियां कहीं भी गिरी रहें, जिसका आक्रोश करने वाला प्रवाह चारों ओर की भयानकता का बेसुरा राग गाता हो, ऐसे अण्डमान के किसी उदास पोखर में वे फेंकी हुई हों या जिसमें तारा सुंदरी मध्य रात्रि में नृत्य करती है, ऐसी श्रीगंगा की स्फटिक शिला पर बहते पावन प्रवाह ने उनको अपने हृदय के पास जतन से संजो रखा हो, जब विजय की तुरही की विश्वकप ध्वनि उच्च स्वर से गर्जना कर उठेगी कि श्रीरामचंद्र ने उनके प्रिय लोगों के मस्तक पर कभी भी म्लान होने वाले फूलों का सुवर्ण यश किरीट रखा है। आज तक धूम मचाए हुए उस भूत को जहां से वह पहली बार बाहर आया। उस समुद्र तक फिर से पीटते हुए ले जाकर डुबो दिया है और देखो, वह अपनी माता हिंद देवी संपूर्ण मनुष्य जाति को रास्ता दिखाते दीप स्तंभ की तरह ऐश्वर्य के साथ खड□ा है, तब उस कार्य में आत्म हवन करने वाले तलवार धारियों और मालाधारियों उठो। जिस युद्ध में तुम लड□ और मर गये वह युद्ध अब जीत लिया जाएगा, तब मेरी अस्थियां पुन: चैतन्य से सुलगकर प्रदीप्त होंगी।'

सन 1910 में लंदन में अपनी गिरफ्तारी के पश्चात स्वातंत्र्य वीर सावरकर द्वारा अपने मित्रों को भेजा गया संदेश है यह। आत्महवन करने वाला सचमुच कोई स्वातंत्र्य वीर ही हो सकता है, और जिसकी अस्थियां पुन: चैतन्य से सुलगकर प्रदीप्त हो उठें, वह भी स्वातंत्र्य वीर ही हो सकता है। अब हम अपने उसी क्रांतिवीर स्वातंत्र्य वीर सावरकर जी के विषय में कुछ चर्चा करेंगे, जिनके क्रांतिकारी कार्यों और स्वतंत्रता प्रेमी भावना ने इस देश को स्वतंत्र कराने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया था।

उनकी स्पष्ट मान्यता थी कि- 'जब अत्याचार और अन्याय के पराकाष्ठा पर पहुंच जाने से परिणामस्वरूप मानव मन प्रतिशोध की भावनाओं के प्रचण्ड आवेग से अनियंत्रित होकर भड□क उठता है, उन स्थितियों में राष्ट्रहित के लिए अक्षम्य ठहराई जाने वाली हत्याएं तथा अत्याचार होना क्षम्य व अनिवार्य हो जाता है। इसलिए 1857 के भारतीय स्वातंत्र्य समर में

चार-पांच स्थानों में ही हुए हत्याकांडों की क्रूरता पर आश्चर्य व्यक्त करने की आवश्यकता नहीं। अंग्रेजों ने तो अपने अत्याचारों के कोल्हू में संपूर्ण भारत को पेरकर उसके अस्थिपंजर मात्र छोड□ थे। जब दमन, उत्पीड□न और अत्याचार पराकाष्ठा पर पहुंच गये तो भारतीय जनशक्ति ने भी इस अत्याचार और अन्याय के मुख पर कसकर थप्पड□ मारा। इस प्रसंग में हिसाब चुकाने के लिए जो हत्याकांड हुए थे, वे असीम तो नहीं थे।''

इसी पुस्तक के पृष्ठ 254 पर उन्होंने लिखा 'अन्याय का समूल उन्मूलन कर सत्य धर्म की स्थापनार्थ, क्रांति, रक्तपात तथा प्रतिशोध प्रकृति प्रदत्त साधन ही हैं। अन्याय के फलस्वरूप होने वाला उत्पीड□न तथा उद्दण्डता ही तो इन साधनों के उपयोग के लिए निमंत्रण देती है। न्याय के सिंहासन द्वारा अपराधी को मृत्युदण्ड दिया जाता है, उसे कोई दोषी नहीं ठहराता। इसके विपरीत जिस अन्यायी के कर्त्ता के रूप में किसी को प्राणदण्ड दिया जाता है। वह अन्यायी ही उस पाप का दोषी समझा जाता है। इसलिए ब्रूट्स की तलवार पावन है, तो शिवाजी का व्याघ्र नख परम वंदनीय।'

सावरकर अपने समकालीन लोगों में ऐसे प्रथम व्यक्ति थे, जो केवल क्रांति में विश्वास रखते थे और कांग्रेस की किसी भी प्रकार की अहिंसावादी आत्मघाती नीति के परम आलोचक थे। वह उन क्रांतिकारियों से सहमत थे, जो स्वतंत्रता को भारत और भारतीयों का मौलिक अधिकार मानते थे। उसके लिए वह याचना के स्थान पर 'रण' के समर्थक थे। वह अंग्रेजों के सामने हाथ फैलाकर अपनी स्वतंत्रता को भीख में मांगना अपराध मानते थे। साथ ही यह भी मानते थे कि जो अंग्रेज भारत में बलात अपनी सत्ता स्थापित करने में सफल रहे और जिस सत्ता को उन्होंने बड□-बड□ अत्याचारों से सींचा है, उस सत्ता को वह बातों-ही-बातों में थाली में सजाकर हमें देने वाले नहीं हैं। उनकी अत्याचारों से सीचीं गयी सत्ता को केवल बलिदानों से ही उखाड□ा जा सकता है। अत्याचारों का प्रतिशोध ही अत्याचारों के पैर उखाड□ता है, यदि अत्याचार के सामने अहिंसावादी याचना की गयी तो उससे अत्याचार का और भी अधिक मनोबल बढ□ जाता है। इसलिए सावरकर प्रारंभ से ही क्रूर विदेशी सत्ता को देश से यथाशीघ्र उखाड□ फेंकने के पक्षधर थे। उनका कहना था- 'हिंदुस्थान को विश्वबंधुत्व और अहिंसा की सुरा ने इतना अधिक मदमत्त बना दिया था कि पाप, अपराध और आक्रमण का प्रतिकार करने की हमारी शक्ति ही नष्टप्राय होने लगी थी। ऐसी अवस्था में अन्याय के विरुद्ध देश के चित्त में तीव्र तिरस्कार उत्पन्न कर उसके प्रतिकार की अदम्य शक्ति का प्रस्फुरण करने के निमित्त हमें इस आवश्यकता की अनुभूति हुई कि जिसके साथ हमें दो-दो हाथ करने हैं, उससे प्रत्येक दृष्टि में श्रेष्ठता उत्पन्न की जाए।'

वीर सावरकर ने क्रांति को ईश्वर का वरणीय तेज स्वरूप ही मान लिया था। जैसे ईश्वर का वरणीय तेज स्वरूप दुष्टों का संहारक होता है और हर व्यक्ति का साहस ईश्वर के वरणीय तेज स्वरूप का सामना करने का नहीं होता है, उसी प्रकार गायत्री के उपासक इस महान देश को जगाने के लिए सावरकर जी ने गायत्री और क्रांति को एक-दूसरे का पूरक ही बना दिया था। उन्होंने देश के लोगों में क्रांति का संचार करते हुए '1857 का स्वातंत्र्य समर' पृष्ठ 326 पर लिखा -

'अन्यायों और अत्याचारों का उन्मूलन करने वाली क्रांति तो वस्तुत: वरेण्य है, किंतु एक प्रकार के अन्याय और अत्याचार का उन्मूलन करने वाली क्रांति यदि उसी प्रकार अत्याचारों

और अन्यायों का बीज बो देती है, तो वह क्रांति भी तत्काल ही पापमयी और अपावन बन जाती है। उसी पाप के गर्भ में पलने वाले असंख्य विष बीजों से ऐसे पादप फूट पड□ते हैं कि वे ही उस क्रांति को निष्प्राण बना देते हैं।'

सावरकर ने शस्त्रबल के विषय में इस देश को बताया कि जब तक शास्त्रधर्म का पालन इस देश में होता रहा, तब तक किसी भी विदेशी आक्रांता का साहस इस देश की सीमाओं का अतिक्रमण करने का नहीं हुआ, इसलिए स्वतंत्रता के हरण पर विचार किया जाना अपेक्षित है कि यह कितने कारणों से हरण की गयी थी? यदि ऐसा विचार किया जाएगा तो शस्त्र बल के प्रति कहीं शिथिलता का हमारा भाव भी एक उत्तरदायी कारक के रूप में दिखायी देगा। जिसका निवारण किया जाना समय की आवश्यकता है। उन्होंने 'भारतीय इतिहास के छः स्वर्णिम' पृष्ठ भाग-1 पृष्ठ 63 पर लिखा था-''सम्राट अशोक जब तक क्षात्रधर्म पूजक वैदिक धर्म का अनुयायी था, तब तक अर्थात ईसा पूर्व 252 वर्ष तक भारत की सेना शस्त्र सज्जा और अजेय बनी रही। परंतु अशोक द्वारा बौद्ध धर्म स्वीकार कर लेने पर यह संपूर्ण सुरक्षितता अकस्मात ही धराशायी हो गयी।''

स्वयं भगवान बुद्ध ने जिस प्रकार से अपने सारे साम्राज्य का परित्याग कर भिक्षुत्व स्वीकार किया, उसी प्रकार यदि बौद्ध धर्म स्वीकार करते ही सम्राट अशोक ने भी साम्राज्य का परित्याग कर दिया होता तो भारतीय राष्ट्र पर इतने बड□ संकट का पहाड□ कभी न टूटता। सम्राट अशोक की बौद्ध धर्म निष्ठा की परीक्षा भी हो जाती। परंतु मृत्यु पर्यन्त अशोक भारतीय साम्राज्य के सम्राट पद का परित्याग नहीं कर सका। इसके विपरीत उसने उस साम्राज्य को ही धर्म प्रचार के एक बड□ मठ के रूप में परिवर्तित कर दिया।

धर्म विजय शस्त्रविजय से श्रेष्ठ है- 'अक्रोधोव जयेत क्रोध-अहिंसा परमोधर्मः-मा हिंस्यात सर्वभूतानि' आदि बौद्ध धर्म के उपदेशों को प्रचारित किया जाने लगा। बौद्ध भिक्षुओं के झुण्ड-के-झुण्ड यह प्रचार करते घूमने लगे-'शस्त्र बल महापाप है' सैनिकों में भी बौद्धधर्म का प्रचार होने लगा। इससे सीमावर्ती क्षेत्रों में भी क्षात्रवृत्ति तथा शस्त्रबल का पतन होने लगा।

सावरकर जी ने भारत के पतन की कहानी का प्रारंभ या मूल खोज लिया और लोगों को उस मूल के परिणाम भी बताये, संपूर्ण साम्राज्य छिन्न भिन्न हो गया। केन्द्रीय सत्ता शिथिल हो गयी तो छोटे-छोटे राज्य स्थापित होने लगे। बहुत सारे गौरवपूर्ण तथ्य यद्यपि हमारा साथ देते रहे, परंतु इस एक दुर्गुण ने कि अहिंसा ही परमधर्म है-हमारा भारी अहित कर दिया।

सावरकर जी की भारतीयों को जगाने की अपनी अदभुत शैली थी। उन्होंने अपनी बात कही तो उसका इतिहासगत प्रमाण भी दिया, जिससे कि हम किसी भ्रांति में न रहें। अथवा हमें तथ्य का साथ-के-साथ ज्ञान हो जाए।

वैसे भी लोगों को प्रमाण सहित बताने या समझाने से उनकी समझ में शीघ्रता से बात आ जाती है। उन्होंने छोटी-से-छोटी बातों को अच्छे ढंग से प्रस्तुत किया, जिससे भारतवासी जागें और विदेशी क्रूर सत्ता का सामना करने के लिए सामूहिक राष्ट्रीय प्रयास करें। इसी संदर्भ में उन्होंने भारतीय समाज में आयी अस्पृश्यता की भावना को लेकर भी देशवासियों को स्पष्ट शब्दों में कहा- 'अस्पृश्यता हमारे देश और समाज के लिए मस्तक पर एक कलंक है। अपने ही हिंदू समाज के धर्म के, राष्ट्र के करोड□ों हिंदू बंधु इससे अभिशप्त हैं। हम अपने ही रक्त

के बंधुओं को अस्पृश्य मानते हैं और उन्हें उतना भी अपने निकट नहीं आने देते, जितना किसी अब्दुल रशीद औरंगजेब अथवा पूर्वी बंगाल में कत्लेआम करने वाले विधर्मी धर्मोन्मत्त व्यक्ति को । उन विधर्मियों का हम जिस प्रकार जिस सीमा तक आगे बढ□कर सम्मान करते हैं, अपने इन अस्पृश्य कहे जाने वाले बंधुओं को अपने घर में पास तक भी नहीं फटकने देते हैं।

अस्पृश्यता जब तक हम बनाये हुए हैं, तब तक हमारे राष्ट्र में स्पृश्य अस्पृश्य इन दो भेदों को उभारकर जाति के अनुसार प्रतिनिधित्व देकर परस्पर कलह की आग सुलगाकर हमारे राष्ट्र की शक्ति को टुकड□-टुकड□ में विभाजित करने में हमारे शत्रु सफल रहेंगे। (सावरकर विचार धर्मन से)

हमारे भीतर अस्पृश्यता के भाव ने हमारी राष्ट्रीय सामाजिक समरसता को भी प्रभावित किया। यह भी सत्य है कि इस्लामिक काल में जब अशिक्षा और अविद्या का बोलबाला बढ□ा तो देश में अस्पृश्यता का भाव और भी प्रबलता से बढ□ा। जो लोग या तो मुस्लिम हो गये थे या मुस्लिमों की भांति मांस-मछली खाने लगे थे, उन्हें भी लोगों ने विधर्मी मानकर अस्पृश्य बना दिया। पर कुल मिलाकर ये सारी बातें हमारे लिए घातक सिद्ध हुईं। मुस्लिमों ने उन्हीं लोगों का धर्मांतरण करने में सफलता प्राप्त की, जिन्हें हमने किसी भी कारण से अस्पृश्य मान लिया था। सावरकर इस महापाप को मिटा देना चाहते थे। जिससे कि हमारी जातीय एकता और सामाजिक समरसता की भावना अखण्ड रहे। वह इस देश में एक जाति द्वारा दूसरी जाति पर अपनी श्रेष्ठता सिद्ध करने या आरोपित करने के भी विरोधी थे। वस्तुत: क्रांति की सफलता के लिए उस समय सभी लोगों का साथ आवश्यक था। इसलिए सावरकर जी ने लोगों को सावधान किया- 'ब्राह्मण मराठों के पुरोहित बनना चाहते हैं, मराठे, चमारों-के-चमार भंगियों के अर्थात यह जाति अहंकार का पागलपन केवल ब्राह्मण के शरीर में समाया हुआ नहीं है। ब्राह्मणों से चण्डाल तक सारे-के-सारे हिंदू समाज की हड्डियों में प्रवेश कर यह उसे चूस रहा है और सारा-का-सारा हिंदू समाज इस जाति अहंकारगत द्वेष के कारण जाति कलह रूपी यक्ष्मा के आघातों से जीर्णशीर्ण हो गया है।' (सावरकर विचार दर्शन, पृष्ठ 114)

जिस समय सावरकर देश के बहुसंख्यक समाज में क्रांतिभाव उत्पन्न कर उसका मार्गदर्शन कर रहे थे, उस समय पहले तो मुस्लिमों के उत्पीड□न से और फिर अंग्रेजों के व्यंग्य बाणों से हिंदू में कुछ आत्महीनता का भाव उत्पन्न हो गया था। जिसे निकालने के लिए महर्षि दयानंद ने हिंदू को उसकी वास्तविकता पहचान 'आर्य' दी और उसके भीतर श्रेष्ठता का भाव उत्पन्न करने के लिए यह बोध कराया कि तू विश्व की सर्वश्रेष्ठ जाति है। इसी बात को वीर सावरकर ने अनुभव किया कि इस समय हिंदू में जातीय उत्कृष्टता का बोध कराने की आवश्यकता है। इसलिए उन्होंने भी हिंदू को जातीय उत्कृष्टता के भाव से भरने का प्रयास प्रारंभ से ही किया। 22 जून, 1937 को रत्नागिरि में अपने स्वागत का उत्तर देते हुए वह कहते हैं- 'मैं हिंदू पुत्र हूं तथा अपने आपको हिंदू कहलाने में मुझे सदैव गर्व रहेगा। मैं जब भी किसी कार्य का निश्चय करूंगा तब उसमें राष्ट्र हित को ही सर्वोपरि महत्त्व दूंगा।'

आज वह (हिंदू जाति) उतार पर है, किंतु फिर भी समुद्र ही है। सुप्त होने पर भी ज्वालामुखी है। बेसुधी के चक्कर में उस विराट राष्ट्रपुरुष के द्वारा प्रमाद के कार्य हो रहे हैं,

किंतु यह बेसुध स्थिति ऊर्ध्व की है, मृत्यु की नहीं। इस हिंदू राष्ट्र और हिंदू धर्म के उत्कर्ष के लिए हवन (शहीद) होने के लिए आज शताधिक हुतात्माओं के शरीर का बिंदु-बिंदु मचल रहा है। उन हुतात्माओं का तेज और आत्म यज्ञ ही इस हिंदू राष्ट्र के अक्षुण्ण जीवन का साक्षी रहा है। इसके पुनरुत्थान और पुनरुज्जीवन का हामी है।' 'भारतीय इतिहास के छह स्वर्णिम' पृष्ठ पृ. 61 पर वह भारतवासियों का आवाहन करते हुए लिखते हैं- 'जब सभी वर्णों वाली महाबलशाली सेना विदेशी शत्रुओं का पराभव करने के लिए समरांगण की ओर कूच करती थी, तब स्वयं सम्राट को उस चतुरंगिणी सेना को संबोधित करते हुए यह वीरोचित आहवान करना पड□ता था- 'शूरवीरों को रण में वही सदगति मिलती है, जो अन्य लोगों को अनेक यज्ञ करने से। धर्मयुद्ध में प्राणार्पण करने वाले वीरों को तत्क्षण स्वर्ग प्राप्त होता है, इस राज्य का उपयोग भी आपको मेरे समान ही करना है, फिर देखते क्या हो? शत्रु पर टूट पड□ो और उसका संहार करो।' आक्रमण और अन्याय के विरुद्ध 'परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम' के लिए जो युद्ध करना पड□ता है, उसे वैदिक धर्म हिंसक मानता ही नहीं। उसे तो धर्मयुद्ध की संज्ञा दी गयी है।'

देश जागरण के लिए ऐसे ही शब्दों की आवश्यकता होती है और देश मरण के लिए स्वयं को 'राजभक्त' बना लेना चाहिए। सावरकर देश मरण की राह पर चलना पाप और देश जागरण की राह पर चलना धर्म मानते थे।

हिंदी के अनन्य भक्त

सावरकर जी के हिंदू राष्ट्र में 'राजनीति का हिंदूकरण' हो जाने पर कुछ ये बातें स्वाभाविक रूप से देखने को मिलतीं-

हिंदी को प्राथमिकता दी जाती

सावरकर जी मूलरूप से मराठी भाषा को बोलने वाले थे। पर उनका अपना चिंतन अत्यंत राष्ट्रवादी और पवित्र था। मराठी भाषी होकर भी वह हिंदी के अनन्यतम भक्त थे। हिंदी को वह देश की एकता और अखण्डता के दृष्टिगत अपनाया जाना आवश्यक मानते थे। पर इसका अभिप्राय यह भी नहीं था कि वे भारत की अन्य क्षेत्रीय भाषाओं का विकास नहीं चाहते थे। उन्होंने मुसलमानों को भी हिंदी अपनाने के लिए कभी विवश नहीं किया था। अण्डमान में रहते उन्होंने हिंदी को सरकारी कामकाज की भाषा बनाने में सक्रिय सहयोग प्रदान किया था। जो हिंदू लोग अपने निमंत्रण पत्र भी उर्दू में छपवाने लगे थे, अब वे भी उन्हें हिंदी में छपवाने लगे थे। वह बातचीत के दौरान अण्डमान के लोगों को समझाते थे- 'तुम हिंदू हो, हिंदी तुम्हारी राष्ट्रभाषा है। अण्डमान में तो वही धर्म भाषा है। तुम्हें चाहिए कि अपनी संतानों को यथाशीघ्र हिंदी पढ□ाओ।' वह लिखते हैं- मैं उन्हें प्रेरित करता कि यदि तुम लोग सरकार के पास सामूहिक आवेदन पत्र भेजकर हिंदी के अध्ययन को आवश्यक करने की मांग करोगे तो सरकार विद्यालयों में हिंदी सिखाने की व्यवस्था अवश्य करेगी।

हिंदी के प्रचार-प्रसार को वह इसलिए भी आवश्यक मानते थे कि इसके प्रचार-प्रसार से देश के बच्चों में रामायण, महाभारत, शिवाजी, महाराणा प्रताप, गुरु गोविन्द सिंह आदि के जीवन चरित्र पढ□कर राष्ट्रीय संस्कार उत्पन्न होंगे। जिससे हमारी राष्ट्रीय एकता का भाव विकसित होगा। सावरकर जी ने जिस प्रकार हिंदूनिष्ठ राजनीति के प्रति अपनी निष्ठा व्यक्त की थी और राजनीति का हिंदूकरण करने का सपना संजोया था, उसका एक ही लक्ष्य था-हिंदू राष्ट्र की स्थापना। उनके हिंदू राष्ट्र में हिंदी में संविधान होता, और हिंदी में ही सरकारी कार्य संपन्न होते, शासक वर्ग हिंदी में सोचता, हिंदी में बोलता और हिंदी में ही अपना लेखन कार्य करता। अंडमान में अपने द्वारा की गयी हिंदी सेवा के विषय में सावरकर जी लिखते हैं- 'मैं हिंदी के बारे में तमाम आक्षेपों और आशंकाओं का बार-बार समाधान करने का प्रयास किया करता था। हिंदी का व्याकरण किस प्रकार पूर्णत: वैज्ञानिक है-उसका साहित्य कितना समृद्ध है, उसकी अभिव्यक्ति की क्षमता कितनी सशक्त है? समय-समय पर मैं बंदियों को समझाया करता था। मैं उन्हें यह भी समझाता था कि देश में हिंदी भाषियों की संख्या सर्वाधिक होने से भी वही राष्ट्रभाषा बनने की अधिकारी हैं।

...रामेश्वरम् (दक्षिण भारत) का वैरागी संत तथा व्यापारी पृथ्वीराज के काल से भी पहले से तीर्थयात्रा के दौरान हरिद्वार और बद्रीनाथ आने पर हिंदी के माध्यम से ही कार्य चलाता आया है। चारों धामों की तीर्थयात्रा करने वाले हिंदुओं के बीच बातचीत का माध्यम हिंदी ही तो होती है। मैंने अपनी इन युक्तियों से राजबंदियों को हिंदी सीखने के लिए प्रवृत्त किया। साधारण बंदी भी हिंदी के महत्त्व को समझने लगे।'

भारतवर्ष के साथ विश्व की भी धरोहर बनती हिंदू राजनीति वीर सावरकर जी का कथन है कि- 'हम एक सनातन और पुरातन राष्ट्र हैं, जब विश्व का मानव कच्चा मांस भक्षण करता था और अपने शरीर को रंगों से रंगता था, अज्ञान की गहराई में गोता लगाता था तब हम उन्नति के शिखर पर विराजमान थे, विश्व संस्कृति और विश्व सभ्यता का प्रतिनिधित्व करते थे।' हिंदू राष्ट्र और हिंदूनिष्ठ राजनीति का अंतिम उद्देश्य ऐसे ही गौरवपूर्ण लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए निर्धारित की जाती, उसकी यात्रा का शुभारंभ 'जयहिंदू राष्ट्र' से होता, जिसका अभिप्राय होता-'सबका साथ सबका विकास' परंतु उन मूल्यों के साथ, जो कि संपूर्ण मानवता की धरोहर हैं और सामान्यत: ये सारा संसार जिसे 'वैदिक संस्कृति' के नाम से जानता है। राजनीति का हिंदूकरण करने का अभिप्राय था कि सारी राजनीति के केन्द्र-अपने राष्ट्र को आत्मगौरव से अभिभूत कर डालना, और एक लक्ष्य निर्धारित कर उसकी प्राप्ति के लिए कमर कस लेना, महर्षि दयानंद जी महाराज ने भी सत्यार्थप्रकाश में छठे समुल्लास में आर्यों को चक्रवर्ती साम्राज्य स्थापित करने की प्रेरणा दी है। स्पष्ट है कि महर्षि दयानंद आर्यों के जिस चक्रवर्ती साम्राज्य की बात कर रहे थे, उसी को स्थापित करना अर्थात विश्व में वैदिक संस्कृति की पुन: धूम मचाना-सावरकर जी के हिंदू राष्ट्र का उद्देश्य था। यह बड□ दुर्भाग्य की बात है कि आत्मगौरव की इस विचार धारा को देश की राजनीति का अंग बनाने को कांग्रेस और उसके नेताओं ने पहले दिन से ही साम्प्रदायिक करार दिया। इसलिए राजनीति का हिंदूकरण करना, (जो कि वास्तव में राजनीति का मानवतावादीकरण करना था) भी कांग्रेस को अतार्किक लगा।

हिंदू राजनीति के सात अवयवों को दी जाती प्राथमिकता

हिंदू राजनीति के सात अंग माने गये हैं:-

1. स्वामी- (शासक, सम्राट, राजा या राष्ट्रपति) यह राजा ब्राह्मण जैसा परम विद्वान, न्यायकारी और पक्षपात रहित व्यवहार करने वाले राजा के 8 गुणों से सुभूषित होता। जिसकी विधि लोककल्याण के लिए निर्मित की जाती और सदा लोगों के कल्याण में रत रहती।

2. अमात्य- (मंत्री या पुरोहित प्रत्येक विषय/मंत्रालय का विशेषज्ञ) मंत्री या अमात्य का अपने मंत्रालय के कामकाज और विषय का पूर्ण मर्मज्ञ होना अनिवार्य किया जाता। आजकल के मंत्री अपने अधिकारियों की सलाह पर पूर्णत: निर्भर रहते हैं, कारण कि अधिकांश मंत्री अयोग्य होते हैं। इनकी अयोग्यता को छिपाने के लिए इनके नीचे योग्य अधिकारी बैठाये जाते हैं। पर यह प्रणाली तो अंग्रेजों ने अपनी अयोग्यता को छिपाने के लिए लागू की थी, पर भारत में अब तो अंग्रेजी शासन नहीं है। हां, इतना अवश्य है कि भारत में शासन की अंग्रेजी प्रणाली अब भी विद्यमान है। फलस्वरूप देश की राजनीति का 'मुखौटा' तो अयोग्य होता है, और उसे पीछे से कोई बताता-समझाता है। हम इसे लोकतंत्र कहते हैं, पर यह लोकतंत्र पीछे से नौकरशाही से शासित होता है जिसे लोकतंत्र नहीं कहा जा सकता। 'हिंदूनिष्ठ राजनीति' में वास्तविक लोकतंत्र को साकार रूप दिया जाकर नौकरशाही की स्वेच्छाचारिता को समाप्त किया जाता और प्रत्येक जनप्रतिनिधि को एक 'जनलोकपाल' का दर्जा देकर उसे लोकहित का प्रहरी बनाने की हरसंभव चेष्टा की जाती।

3. जनपद या राष्ट्र- (राज्य की भूमि और प्रजा) आर्यावर्त कभी ये सारा भूमंडल कहा

जाता था, अर्थात तब सारा भूमंडल ही आर्यों का था। कालांतर में इसकी सीमाएं घट गयीं तो भी मनु महाराज ने भूमध्यसागर के इस ओर का सारा भू क्षेत्र आर्यों के अधीन मानकर इनके चक्रवर्ती राज्य की सीमाएं वहां तक स्थापित कर दीं।

इस राज्य की समस्त प्रजा वेदज्ञान की ज्योति से ज्योतित होकर अपने श्रेष्ठतम होने या आर्यत्व का परिचय देते रहने की अभ्यासी रही हैं। हिंदूनिष्ठ राजनीति का या 'राजनीति के हिंदूकरण' का अभिप्राय है कि देश की प्रजा को पुन: वेदज्ञान के प्रचार-प्रसार के प्रति समर्पित कर देना और अपने आर्यों के चक्रवर्ती साम्राज्य की सीमाओं को खोजने के लिए सचेष्ट हो उठना।

4. दुर्ग- दुर्ग आज के समय में यद्यपि अप्रासंगिक हो चुके हैं, परंतु उनका अभिप्राय या अर्थ परिवर्तन कर उनकी उपयोगिता को थोड□ा सकारात्मक सोच के साथ देखने व समझने की आवश्यकता है। हमारी सेना के निवास स्थान या छावनी, हमारे सैन्य उपकरण रखे जाने के केन्द्र, परमाणु बम आदि रखने के केन्द्र ये सभी आज के दुर्ग हैं। जिन तक हर किसी का पहुंचना आज भी संभव नहीं है। ये सारे केन्द्र जितनी भारी मात्रा में होंगे-शत्रु को उतना ही अधिक कष्ट होगा। वैसे दुर्ग शब्द के कई अर्थ हैं यथा-राष्ट्र का प्राचीर, खाई, राजधानी अथवा पुर वर्तमान संदर्भों में राज्य की सशस्त्र सेनाओं की पूर्ण व्यवस्था।

इस प्रकार हिंदूनिष्ठ राजनीति में देश की सुरक्षा को प्राथमिकता दी जाती है। यदि राजनीति का हिंदूकरण करने की प्रक्रिया पहले दिन से प्रारंभ हो गयी होती तो नेहरूजी जैसों की मूर्खता के कारण देश को 1947-48 में कश्मीर (पीओके) के एक भाग से हाथ धोना नहीं पड□ता और 1962 ई. में चीन के हाथों करारी पराजय का सामना भी नहीं करना पड□ता।

तुर्कों, मुगलों या अंग्रेजों ने कभी इस देश को अपना देश नहीं माना था, आज भी ऐसी शक्तियों को सत्ता सौंपना खतरनाक हो सकता है, जो इस देश का नमक खाकर गीत विदेशों के गाते हैं और राम-कृष्ण की संतानें होकर भी अपने आपको बाबर की संतानें मानते हैं। राजनीति के हिंदूकरण का यह सबसे प्रमुख तत्त्व है कि देश की सत्ता उन्हीं को मिलेगी, जो इस देश की माटी से प्यार करते हैं और इसके लिए सर झुकाने को ही नहीं, सर कटाने तक को भी तैयार रहते हैं। मैं जानता हूं कि बहुत से मुस्लिम ऐसे हैं, जो इस देश को इसी प्रकार प्रेम करते हैं और यही कारण है कि उन्हें राजनीति के हिंदूकरण से या हिंदू राष्ट्र के निर्माण तक से कोई आपत्ति नहीं है। पर गांधीजी और नेहरूजी को सावरकर की यह सोच आपत्तिजनक लगती थी।

5. राष्ट्रीय कोष- देश की सरकार को देश चलाना होता है। देश चलाने के लिए कोष की आवश्यकता होती है। सरकार को सड□क, बिजली, स्वास्थ्य, शिक्षा आदि के सार्वजनिक कार्य करने होते हैं, जिसके लिए धन की आवश्यकता होती है, इसलिए सरकारें लोगों पर कर लगाकर अपने आय के स्रोत बनाती हैं। 'हिंदूनिष्ठ राजनीति' में आय के स्रोत बनाने के लिए 'राजा' या राष्ट्रपति लोगों पर कर तो लगाता पर ऐसे लगाता है, जैसे धान से चावल को और उसके छिलके को अलग करने में यह सावधानी बरती जाती है कि छिलका तो अलग हो जाए, पर चावल के दाने टूटने न पायें। ऐसे कर को देने के लिए देश की जनता को मनोवैज्ञानिक रूप से तैयार किया जाता और उन्हें यह समझाया जाता कि यदि आप ऐसा कर

देंगे तो देश के विकास में आपकी सहभागिता भी सुनिश्चित होगी। आजकल लोग कर देते हैं पर चोरी करते-करते देते हैं, 'इनकम टैक्स' से बचने के लिए तरह-तरह के जुगाड□ भिड□ाते हैं-यह सब इसलिए किया जाता है कि देश के लोगों को अंग्रेजी काल से ही यह नहीं बताया जा रहा है कि आपका पैसा देश के विकास में काम आएगा। अंग्रेजों के काल में इस टैक्स को लोग दण्ड समझते थे, जिसे अंग्रेज लोग अपने देश को ले जाते थे। इसलिए लोग टैक्स देने से बचते थे।

देश को स्वाधीन हुए अब 70 वर्ष हो रहे हैं, पर हमारा टैक्स को दण्ड समझने का संस्कार अभी भी छूटता नहीं है। कारण यही है कि हमें यह नहीं समझाया जा रहा है कि टैक्स एक दण्ड न होकर देश की उन्नति में आपका एक अंशदान है। राजनीति के हिंदूकरण की प्रक्रिया में कर को सरकार एक चंदा के रूप में वसूलती है और देश के स्वयंसेवी संगठनों को और श्रमदान करने में विश्वास करने वालों को या सरकारी संस्थानों को जनहित के कार्य करने हेतु लौटा देती है।

इस प्रकार हिंदूनिष्ठ राजनीति में अंशदान श्रमदान में परिवर्तित हो जाता है। दो के सारे हाथ एक साथ मिलकर विकास के लिए उठते हैं और मंजिलों को अपने पांवों तले ले आते हैं। 'सबका साथ सबका विकास' तब एक नया स्वरूप ले लेता है- 'सबका सबके द्वारा विकास।' इस प्रकार हिंदूनिष्ठ राजनीति में देश का एक बहुत ही सुंदर स्वरूप उभर कर सामने आता है। हम मान लेते हैं कि गांधी जी के रामराज्य में भी ऐसी ही संभावनाओं की कल्पना समाहित रही होगी। यदि बापू ऐसा ही रामराज्य चाहते थे तो हमें उसे भी अपनाने में कोई आपत्ति नहीं है। पर उनके राजनीतिक शिष्य और देश के पहले प्रधानमंत्री पं. जवाहरलाल नेहरू ने अपने शासन में हिंदूनिष्ठ राजनीति के साथ-साथ गांधी जी के 'रामराज्य' की भी हवा निकाल दी थी। इस प्रकार गांधी जी की हत्या वास्तव में नेहरू ने की थी।

देश की सरकारों ने स्वतंत्रता के उपरांत जिस मार्ग का अनुकरण किया है, उससे देश में प्राचीनकाल से चला आ रहा श्रमदान का हमारा राष्ट्रीय संस्कार मर सा गया है। फलस्वरूप हम छोटी-छोटी बातों के लिए सरकार पर निर्भर होकर रह गये हैं। गली-मोहल्लों की समस्याओं के लिए लोग कोई समाधान न खोजकर सड□कों पर आकर नारेबाजी करते हैं, धरना प्रदर्शन करते हैं, रोड जाम करते हैं। यह प्रवृत्ति ठीक नहीं है। मैंने देखा है कि एक मोहल्ले में 100-200 रुपये के बल्ब लगाकर लोग रात्रि में प्रकाश की व्यवस्था नहीं कर पाते हैं। गली के अंधेरे को सह लेंगे पर एक बल्ब अपने घर के सामने नहीं लगाएंगे। आप आरंभ करके देखिये, एक बल्ब गली में अपने घर के सामने लगाइये, मोहल्ले में रहने वाले दो-चार अन्य लोगों को आपसे प्रेरणा मिलेगी और आप देखेंगे कि गली का अंधेरा भाग गया।

इस संस्कार को बलवती करना राजनीति का हिंदूकरण करना है। क्योंकि यह संस्कार हमारा प्राचीन राष्ट्रीय संस्कार है। हिंदूनिष्ठ राजनीति का विरोध करने वाले पहले सावरकर की राजनीति के हिंदूकरण की उक्ति का रहस्य समझें तब कुछ कहें तो अच्छा है।

हिंदूनिष्ठ राजनीति : गांधी और सावरकर

6. दण्ड- भारतीय हिंदूनिष्ठ राजनीति में दण्ड भी राज्य व्यवस्था का एक आवश्यक और अपरिहार्य अंग माना गया है। बिना दण्ड की व्यवस्था के राज्य व्यवस्था चलनी असंभव है। जो लोग यह मानते हैं कि अहिंसा से ही देश की राज्यव्यवस्था चल सकती है, वे अज्ञानी हैं। ऐसे अज्ञानी जनों को यह भली प्रकार पता होना चाहिए कि अहिंसा की रक्षार्थ हिंसा करना भी एक प्रकार की अहिंसा ही है। वीर सावरकर जी ऐसी ही हिंसा के समर्थक थे, जबकि गांधी जी की अहिंसा अत्याचार के सामने भी कायरतापूर्ण ढंग से मौन खड□ा रहकर पिटना अच्छा मानती है। गांधीजी की अहिंसा प्रकृति के नियमों के विपरीत है और वीर सावरकर जी की हिंसा प्रकृति के नियमों के अनुकूल है। जब घोर सूखा पड□ रही हो तो उस समय सभी बारिश की कामना करते हैं, और जब बारिश आती है तो नदी में बाढ□ लेकर आती है, जिससे कितने ही प्राणधारियों के जीवन संकट में पड□ जाते हैं, या कितने ही प्राणियों की मृत्यु भी हो जाती है। जैसे नदी में बाढ□ आना और उस बाढ□ में अनेकों प्राणधारियों के जीवन को संकट आ उपस्थित होना, अपने प्राणों से ही हाथ धो बैठना हिंसा की श्रेणी में नहीं आता है, अपितु प्रकृति के नियमों के अनुकूल उस सारी प्रक्रिया को उचित ही माना जाता है, वैसे ही समाज के शांतिप्रिय लोगों के जीवन को संकट उत्पन्न करने वाले दुष्ट आततायियों का संहार करना हिंसा नहीं माना जाता। ऐसे लोगों को दण्ड देना राजा का धर्म है।

मनु महाराज मनुस्मृति (7/7) में कहते है- 'वह राजा अपने प्रभाव=सामर्थ्य के कारण अग्नि के समान दुष्टों=अपराधियों का विनाश करने वाला और वायु के समान गुप्तचरों द्वारा सर्वत्र गतिशील होकर प्रत्येक स्थिति की जानकारी रखने वाला, सूर्य के द्वारा किरणों से जलग्रहण करने के समान कष्ट रहित कर लेने वाला है।'

'देश, समय, शक्ति, विद्या अर्थात अपराध के अनुसार उचित दण्ड का ज्ञान, इन बातों को ठीक-ठीक विचार कर अन्याय का आचरण करने वाले लोगों में उस दण्ड को यथायोग्य रूप में प्रयुक्त करे।' (मनु. 17/11)

इस दण्ड की व्यवस्था को सुनिश्चित करने के उद्देश्य से भारतवर्ष में प्राचीनकाल से ही सेना, राष्ट्रीय सुरक्षाकर्मी स्वयं दण्ड व्यवस्था के निमित्त रखे जाने वाले बलों के रखने का विशेष प्रावधान राजनीति में किया गया।

मित्र: इसमें कार्यपालिका एवं विधायिका के सदस्यगण सम्मिलित होते हैं। पड□ोसी देशों को भी इसी में सम्मिलित किया गया है। 'हिंदूनिष्ठ राजनीति' की यह अनूठी विशेषता है, कि वह पड□ोसियों को पड□ोसी न मानकर मित्र मानती है। एक पड□ोसी आपके प्रति संवेदनाशून्य और भावशून्य हो सकता है, आपके प्रति उसका उपेक्षापूर्ण व्यवहार हो सकता है, वह आपके प्रति पूर्णत: निरपेक्ष हो सकता है, परंतु मित्र ऐसा नहीं हो सकता। वह तो आपसे लड□कर भी आपके मन की बात जानने का प्रयास करेगा और करेगा भी क्यों नहीं, क्योंकि यह उसका विशेषाधिकार है।

पश्चिमी देशों की राजनीति ने पड□ोसी को पड□ोसी न मानकर उसे शत्रु माना है।

फलस्वरूप जहां पड□ोसी को मित्र बनाने की 'हिंदूनिष्ठ राजनीति' से विश्वशांति स्थापित होने की असीम संभावनाओं का जन्म होता है, वहीं पड□ोसी को शत्रु मानने से सब कुछ विध्वंस में समाहित हो जाता है। आज के विश्व में अशांति व्याप्त हो जाने का यही एकमात्र कारण है कि दो पड□ोसी देशों में अविश्वास का परिवेश तो मिलता है, पर मित्रता का परिवेश नहीं मिलता। यही कारण है कि संपूर्ण विश्व में इन दिनों हथियारों की होड□ मची है।

गांधीजी देशों को मित्र बनाने के पक्षधर थे। उनका यह विचार सर्वथा उचित ही था। उनसे गलती वहां हो रही थी, जहां वे शत्रु को मित्र मानने की जिद करने लगते थे और व्यक्ति से लेकर राष्ट्र तक को शत्रु के सामने मित्र बनाकर उसे असहाय करके डाल देते थे। मित्र का अभिप्राय यह नहीं है कि शत्रु चाहे जो करे, उसे करने दिया जाए पर आप मौन खड□ रहिए। इसके विपरीत सावरकर जी शत्रु के साथ कुछ देर मित्रता के और उसके बाद शत्रुता के भाव रखने के समर्थक थे।

अपनी 'हिंदूनिष्ठ राजनीति' और 'हिंदूराष्ट्र' की विचारधारा पर विचार व्यक्त करते हुए सावरकरजी ने लिखा है- 'कहा जाता है हमारा देश 'हिंदुस्थान' या 'हिंदू राज्य' नहीं हो सकता। क्योंकि इसमें अहिंदू भी रहते हैं। लेकिन पारसियों, ईसाइयों व हिंदुओं के रहते हुए भी पाकिस्तान नाम क्यों स्वीकार किया गया?

हर एक देश का नाम उसके राष्ट्रीय बहुमत वाले नाम से ही पुकारा जाना चाहिए। क्या कभी बलूचिस्तान, वजीरस्थान, अफगानिस्तान, तुर्किस्थान, आदि नामों पर भी आपत्ति की गयी, जबकि इन देशों में भी गैर मुस्लिम बस रहा है? फिर हिंदुस्थान या 'हिंदूराज्य' का नाम लेते ही इसकी सांस क्यों उखड□ने लगती है?- जैसे कि उन्हें सांप ने ही काट खाया हो?' (विनायक दामोदर सावरकर पृष्ठ 228)

1938 में हिंदू महासभा के नागपुर अधिवेशन में अध्यक्षीय भाषण देते समय उन्होंने कहा था- 'पौराणिक काल को यदि छोड□ भी दें तो हमारे वर्तमान इतिहास में चंद्रगुप्त मौर्य, चंद्रगुप्त द्वितीय, विक्रमादित्य, यशोवर्धन, पुलकेशी, हर्ष एवं अन्य सम्राटों तथा चक्रवर्ती राजाओं ने हमारे लोगों में एकता की भावना जागृत की। ग्रीकों, शकों, हूणों एवं विदेशी जातियों के तीव्र आक्रमणों ने हमारे राष्ट्र को एक सामान्य भय की चुनौती दी, जिस कारण उस भय से निपटने के लिए सदियों तक उन्हें संघर्ष करना पड□ा। हूणों पर हिंदुओं की अंतिम विजय एवं भारत पर मुसलमानों के आक्रमण तक के शांतिपूर्ण लंबे अंतराल में हमारे राष्ट्र की धार्मिक, सांस्कृतिक,जातीय एवं राजनीतिक एकता के दृढ□ीकरण में उल्लेखनीय वृद्धि हुई। जब मुसलमान आये तो उन्होंने भारत को हिंदू राष्ट्र के रूप में पूर्णत: विकसित पाया।'

'हिंदूनिष्ठ राजनीति' या 'राजनीति का हिंदूकरण' सावरकर जी की दृष्टि में तभी पूर्ण होना था, जब अपने अति प्राचीन हिंदू इतिहास पर सटीक, तार्किक और बौद्धिक अनुसंधान संपन्न होता। गांधीजी और उनके विचारों से सहमत लोग भारत को 'हिंदूराष्ट्र' नहीं मानते थे, उनकी दृष्ट में भारत एक खिचड□ी (धर्मनिरपेक्ष) राष्ट्र हो। ऐसी 'खिचड□ी' जिसकी अपनी कोई निजी विचारधारा नहीं है, निजी महत्त्वाकांक्षा नहीं है और निजी मान्यता नहीं है। ऐसा 'खिचड□ी' राष्ट्र जिसमें विदेशी जातियों के नदी-नाले आते गये, मिलते गये, और 'हिन्दोस्तां

बनता गया।' इस 'खिचड□ी राष्ट्र' में जितने नदी-नाले आ आकर मिले, गांधीवाद कहता है कि उन सबका योगदान इस राष्ट्र को बनाने में है, इसलिए ये ढूंढो कि इन सबका इसे बनाने में अंश क्या है, अर्थात हमारी भाषा पर, हमारी भूषा पर, हमारे भेष पर, हमारे भोजन पर, हमारी सभ्यता पर, इनका क्या प्रभाव पड□ा? जितना-जितना जिसका प्रभाव पड□ा हो, उतना-उतना अंश उसे देकर ईमानदारी से पूरा एक रुपया (राष्ट्र) बना लो। गांधीवादी सोच के इस दरवाजे के खुलते ही एक मूर्खतापूर्ण सोच देश में विकसित हुई कि सबने अपना मूल विदेशों में खोजना आरंभ कर दिया। सबको एक रुपया बनाना था-राष्ट्र नहीं। अत: उस रुपया में देखने लगे कि मेरा अंश कितना है? दूसरे शब्दों में राष्ट्र के निर्माण में 'आरक्षण की मांग' उठने लगी।

गांधीवाद की इस विचारधारा के विपरीत सावरकरवाद की राष्ट्र निर्माण की योजना इसके अनुसार हमें रुपया दस्सी-पंजी से जोड□-जोड□कर नहीं बनाना, अपितु राष्ट्र को बना-बनाया 'एक' रुपया मानना है। उस 'एक' में अपना अस्तित्व नहीं खोजना, अपितु उस 'एक' के लिए अपना अस्तित्व मिटाना है। 'राजनीति के हिंदूकरण' की सावरकर की यह अनिवार्य शर्त थी।

वह लिखते हैं- 'हिंदुस्थान को जो हिंदू राष्ट्र नहीं मानते, वे ग्रेट ब्रिटेन, अमेरिका, रूस, जर्मनी आदि को राष्ट्र क्यों मानते हैं? ग्रेट ब्रिटेन में कम-से- कम तीन भाषाएं हैं। भिन्न-भिन्न वंश रक्त और जातियों का यह मिश्रण है। जब उसे राष्ट्र मानते हो तो भारत को 'हिंदू राष्ट्र' क्यों नहीं मानते?

हिन्दुस्थान राष्ट्र के अर्थ में अनन्य पितृभूमि है, जिसमें सभी प्रचलित भाषाएं उत्पन्न हुईं और विकसित हो रही हैं और आज भी धर्मग्रंथों तथा साहित्य की सर्वमान्य भाषा संस्कृत हिंदी है।

हिंदुस्थान जिसके वैदिक ऋषि पाणिनि, पतंजलि आदि वैदिक व्याकरणकार, भावभूति, कालिदास उसके कवि श्रीराम, कृष्ण, शिवाजी, प्रताप, गुरु गोविन्द सिंह, वीर बंदा जिसके वीर पुरुष और स्फर्ति केन्द्र, बुद्ध, महावीर, शंकराचार्य जैसे सर्वमान्य अवतारी महापुरुष और तत्ववेत्ता हैं। समान जीवन, एकरूपता, समान पितृभू तथा समान पुण्यभू हिंदुस्थान के हिंदू राष्ट्र बनने की कसौटी है।' (वीर वाणी-पृष्ठ 15)

गांधीजी के और नेहरूजी के अनुसार यह राष्ट्र यूं ही चलते-चलते ही बन गया। चलते-चलते युवक-युवती टकराये और उनमें प्यार हो गया। कितनी खोखली है-यह विचारधारा? इसका खोखलापन इससे भी स्पष्ट होता है कि जिस कांग्रेस को हिंदुस्थान को हिंदूराष्ट्र घोषित करने में या इसकी राजनीति का हिंदूकरण करने में आपत्ति रही है-उसी ने पाकिस्तान को साम्प्रदायिक आधार पर 'मुस्लिम राष्ट्र' स्वीकार कर लिया था। इस दोरंगी मानसिकता के लिए कांग्रेस को लताड□ते हुए सावरकर जी ने कहा था- 'कांग्रेसियों की दृष्टि में हिंदू राज्य की मांग यदि निंदनीय और साम्प्रदायिक है, तो उन्होंने मुसलमानों की मुस्लिम राज्य की मांग स्वीकार क्यों की? क्या वह साम्प्रदायिक नहीं थी? क्या मुसलमानों ने पाकिस्तानी प्रांतों की मांग इस आधार पर नहीं की थी कि उन प्रांतों में मुसलमानों का बहुमत था? तब उस साम्प्रदायिक मांग को क्यों स्वीकार किया गया? और हमारी मातृभूमि के टुकड□ कराकर एक स्वतंत्र मुस्लिम राज्य क्यों सहन किया गया? मुस्लिम राज्य (पाकिस्तान) की मांग करने

की बजाय स्पष्ट साम्प्रदायिक आधार पर भारतमाता के दो टुकड□ करने में कांग्रेसियों ने योग दिया। 'पाकिस्तान' मुसलमानों को ऐसी सरलता से सहर्ष सौंप दिया, जैसे किसी प्रिय अतिथि को आदर के साथ चाय का प्याला दिया जाता है।' (विनायक दामोदर सावरकर, पृष्ठ 227)

हमारा मानना है कि जब एक रुपया को 'दस्सी-पंजी' एकत्र कर बनाने का प्रयास करोगे तो हर 'दस्सी पंजी' अपना अलग अस्तित्व खोजेगी ही,और एक रुपया को कभी 'एक' नहीं होने देगी, वह उसे खरीज के रूप में ही रखना चाहेगी, जिससे कि समय आने पर अपने आपको अलग किया जा सके।

राजनीति के हिंदूकरण की प्रक्रिया में हर स्थिति में राष्ट्र को (एक) रखना अनिवार्य है, सारे देशवासियों का यह 'राष्ट्रीय संकल्प' घोषित होना है कि वे राष्ट्र की एकता और अखण्डता को क्षतिग्रस्त नहीं करेंगे और ऐसा करने वालों को अपना शत्रु समझेंगे। इसीलिए सावरकर जी ने सभी लोगों के भीतर राष्ट्रीय भावना का संचार करने के उद्देश्य से एक भावना भरने के लिए 'जय हिंदू राष्ट्र' का अभिवादन आरंभ किया। अध्ययन के अभाव में 'जय हिंदू राष्ट्र' का अभिवादन करने वालों में से अधिकांश की सोच आजकल यह हो गयी है कि हिंदू राष्ट्र में किसी अन्य मतावलंबी का कोई अस्तित्व नहीं होगा, वह तो केवल हिंदुओं का होगा। यह सोच तो सिरे से ही गलत है। सावरकर जी की सोच के अनुसार 'जय हिंदू राष्ट्र' में सभी भाषाओं का और सभी मतों का सम्मान होगा, उनका अस्तित्व सुरक्षित रहेगा, पर सबका अस्तित्व 'एक' (हिंदू राष्ट्र भारतवर्ष) के लिए होगा। सबको एक-दूसरे का सम्मान करना होगा जिससे 'एक' को मजबूत किया जा सके। हिन्दुस्थान में रहकर 'हिंदुस्तानी भाषा' को नहीं, अपितु हिंदुस्थानी संस्कारों को सीखना होगा और 'वंदेमातरम' या 'भारतमाता की जय' बोलने पर कोई आपत्ति किसी को नहीं होगी। इस सोच को बदलना होगा कि मैंने या मेरे संप्रदाय ने भारत को क्या दिया है?

इसके स्थान पर इस सोच को अपनाना होगा कि मुझे और मेरे संप्रदाय को भारत ने क्या दिया है? किसी के प्रति निष्ठा या कृतज्ञता तभी ज्ञापित की जाती है जब उसके दिये हुए को ध्यान में रखा जाता है। मां को मां नहीं मानोगे तो उसके दूध से उऋण कैसे होओगे? हिंदूनिष्ठ राजनीति मां को मां मानती है और उसके ऋण से उऋण होने के लिए प्रेरित करती है। सावरकर राजनीति में इसी संस्कार को आरोपित करना चाहते हैं।

हिंदुत्व के प्रति निष्ठा

'राजनीति का हिंदूकरण' का अभिप्राय हिंदुत्व के प्रति संपूर्ण राष्ट्र को एकनिष्ठ और सत्यनिष्ठ बनाना है। जी हां, वही हिंदुत्व, जो इस देश की एक जीवन पद्धति है, जीवन जीने की एक उत्कृष्टतम कला है, और जो जीवन को सहज-सरल व उपयोगी बनाती है। 'विनायक दामोदर सावरकर' (पृष्ठ 167) में सावरकर जी लिखते हैं- 'हिंदुत्व कोई ताड□पत्र पर लिखी हुई पोथी नहीं है, जो ताड□पत्र के चटकते ही चूर-चूर हो जाएगी, और न आज उत्पन्न होकर कल नष्ट होने वाली कागज पर लिखी हुई घटना ही। हिंदुत्व की एक महान जाति का जीवन है। वह सहस्रावधि पुण्यात्माओं के हुतात्माओं के युगानुयुग के अथक परिश्रम एवं प्रयत्नों का परिणाम है। आज वह उतार पर है, किंतु समुद्र ही है, सुप्त होने पर भी ज्वालामुखी है।

इस हिंदू राष्ट्र और हिंदू धर्म के उत्कर्ष के लिए बलिदान (हवन) होने को आज भी जिन शतावधि हुतात्माओं के शरीर का बिंदु-बिंदु मचल रहा है, उन हुतात्माओं के तेज और आत्म यज्ञ ही हिंदू राष्ट्र के अक्षुण जीवन का साक्षी है। इसके पुनरुत्थान एवं पुनरुज्जीवन का हामी है।

किसी भी जाति को आप विश्व प्रतियोगिता में टिका हुआ तभी देख सकते हैं, जब वह आत्मगौरव से भरी हो। इसका अभिप्राय है कि आप यदि किसी जाति को वैश्विक प्रतियोगिता से हटाना या मिटाना चाहते हैं, तो उसे आत्मगौरव के स्थान पर आत्महीनता के भावों से भर दो। दुर्भाग्यवश गांधीवादी कांग्रेसियों की राजनीति ने पहले दिन से ही इस देश के बहुसंख्यकों को आत्महीनता के भावों से भरने का ही प्रयास किया है। इन्होंने ईसाइयत और इस्लाम को प्रगतिशील धर्म कहा और हिंदू वैदिक धर्म की वैज्ञानिकता को एक ओर रखकर उसे रूढि□वादी सिद्ध किया। भारत के संस्कृत साहित्य का उपहास उड□ाया और बाइबिल व कुरान को सम्मान दिया। इस प्रकार की कांग्रेसी मानसिकता ने देश का बेड□ा गर्क कर दिया।

वीर सावरकर की हिंदूनिष्ठ राजनीति में 'स्व' को जागृत करने का हरसंभव प्रयास किया जाता। बाइबिल और कुरान को बिना अपशब्द कहे गीता के कर्म के प्रति समर्पण को इस देश के युवा के भीतर जोश जगाने के रूप में जागृत किया जाता। आज राजस्थान विश्वविद्यालय ने गीता को मैनेजमेंट के कोर्स में सम्मिलित कर एक प्रकार से वीर सावरकर के प्रति अपनी निष्ठा व्यक्त की है। गीता 'योग:कर्मसु कौशल' कहकर मनुष्य को पूर्ण कौशल के साथ कार्य करने की शिक्षा देती है और उसे प्रेरित करती है कि वह अपना व्यक्तित्व चमकाने के लिए कार्य को निरंतर और भी अधिक उत्तमता से करने के लिए प्रयास करता रहे। वीर सावरकर जी गीता के इस भाव को जीवन का शृंगार बनाकर उसे 'राजनीति के हिंदूकरण' के रूप में देश में प्रचारित-प्रसारित करना चाहते थे। इसमें कहीं भी तो साम्प्रदायिकता नहीं थी। पर उनके आलोचकों ने 'गीता' के प्रति असहिष्णुता दिखाई और उनकी राजनीति को साम्प्रदायिक कहा। यदि गीता का 'योग: कर्मसु कौशल' बाइबिल या कुरान में किसी प्रकार उल्लेखित होता तो

उसे स्वीकार किया जा सकता था, जिसे गांधीवादी कांग्रेसी प्रगतिशीलता के नाम पर सारे देश को अपनाने के लिए प्रेरित करते और इसे धर्मनिरपेक्षता का एक अच्छा उदाहरण भी मानते। यह तो भला हो प्रधानमंत्री मोदी का, जिन्होंने 'कौशल विकास' की बात कहकर गीता के विचार को आगे बढ□ा दिया है। हमारा मानना है कि प्रधानमंत्री मोदी 'कौशल विकास' की अपनी योजना को सीधे गीता के 'योग:कर्मसु कौशल' से जोड□कर प्रचारित प्रसारित करें। 'हिंदूनिष्ठ राजनीति' की दिशा में यह सचमुच उनका एक उत्तम प्रयास होगा। 'गुलगुले खायें और गुड□ से परहेज' वाली बात उचित नहीं है।

आजकल आत्महत्या के प्रकरण बहुत सुनने को मिल रहे हैं, यह निराशावाद की देन है। दूसरे शब्दों में इसे पश्चिम प्रेरित भारत की गांधीवादी राजनीति की देन भी कहा जा सकता है। पश्चिम ने भौतिकवाद को ही इस जीवन का अंतिम लक्ष्य मान लिया और यदि भौतिकवाद की दौड□ में कहीं भी कैसे भी पिछड□ गये तो एक ही रास्ता उनकी नजर में बचता है कि मर जाओ। मैं मानता हूं कि पश्चिम में ऐसे बहुत लोग हुए हैं, जिन्होंने सफलता के कीर्तिमान स्थापित किये हैं। बहुत से वैज्ञानिक आविष्कार भी उनकी झोली में डाले जाते हैं। पर यहां इन भौतिक आविष्कारों की या भौतिक उन्नति की बात नहीं हो रही है, यहां तो बात जीवन के नैराश्य का उपाय खोजने की हो रही है। जीवन के नैराश्य को तो ईश्वर का सामीप्य और आध्यात्मिक उन्नति से ही दूर किया जा सकता है और यह अध्यात्म भारत की पूंजी है, पहचान है, और भारतीयता की प्रतीक है। पश्चिम की उन्नति भौतिक सुख-समृद्धि दिला सकती है, आनंद नहीं दिला सकती, उसे तो केवल भारत के अध्यात्मवाद से ही प्राप्त किया जा सकता है। जीवन का आनंद प्राप्त करना जीवन जीने की कला का कौशल विकास है। उसकी चरमावस्था है। इस सारी प्रक्रिया को अपनाना और उसे मानव समाज के लिए लागू करना सावरकरजी के राजनीति के हिंदूकरण की प्रक्रिया के माध्यम से ही पूर्ण किया जा सकता है। इस प्रकार 'राजनीति का हिंदूकरण' एक पवित्र साधना है। इतनी ऊंची साधना कि जिसे अपनाकर मनुष्य को इहलोक की प्राप्ति और परलोक की सिद्धि हो जाए। 'जय हिंदू राष्ट्र' का अभिवादन करने वाले मेरे बंधु तनिक विचार करें कि इस अभिवादन के माध्यम से वह कितनी बड□ी साधना की ओर संकेत करते हैं। 'जय हिंदू राष्ट्र' का अभिप्राय 'मुस्लिम विहीन भारत' नहीं है, अपितु 'विकार विहीन भारत' है। इसी में भारत के 'योग: कर्मसु कौशल' का राज छिपा है और इसी में छिपा है जीवन की साधना का वह मर्म, जिसे छूते ही प्रेम का फव्वारा फूट पड□ता है। तनिक मेरे भारत की आत्मा के साथ तादात्म्य तो स्थापित कीजिए-आपको वीणा के हर स्वर से आनंद का संगीत फूटता दिखाई देगा। हम ऐसी विशाल वैदिक संस्कृति के उत्तराधिकारी हैं, जिसके विषय में स्वयं सावरकर जी ने 1937 में हिंदू महासभा के अधिवेशन को संबोधित करते हुए अपने अध्यक्षीय भाषण में कहा था- 'हिंदू वही है, जो सिंधु नदी से सिंधु पर्यन्त विस्तृत इस देश को अपनी पितृभू: मानता है। जो रक्त संबंध से उस जाति का वंशधर है, जिसका प्रथम उद्भव वैदिक सप्त सिंधुओं में हुआ और जो पीछे बराबर आगे बढ□ती, अंतर्भूत को पचाती और उसे महनीय रूप देती हिंदू जाति के नाम से विख्यात हुई। जो उत्तराधिकार संबंध से उसी जाति की उस संस्कृत भाषा में संचित और जाति के इतिहास, साहित्य, कला, धर्मशास्त्र, व्यवहार शास्त्र, रीति- नीति, विधि-संस्कार, पर्व-त्योहार, द्वारा अभिव्यक्ति हुई और जो इन सब बातों के साथ इस देश को अपनी पुण्यभू: अपने अवतारों और ऋषियों की अपने महापुरुषों और आचार्यों की निवासभूमि तथा सदाचार और

तीर्थ यात्रा की भूमि मानता है। हिंदूत्व के ये लक्षण हैं-एक राष्ट्र एक जाति और एक संस्कृति। (हिंदूनिष्ठ राजनीति के ये तीनों लक्षण लक्षण न होकर आधार स्तंभ हैं) इन सब लक्षणों का अंतर्भाव करके संक्षेप में यों कहा जा सकता है, कि हिंदू वह है जो सिंधु स्थान को केवल पितृभू नहीं पुण्यभू भी मानता है। हिंदुत्व के दो लक्षण राष्ट्र और जाति पितृभू: शब्द में आ जाते हैं और तीसरा लक्षण एक संस्कृति 'पुण्यभू' शब्द से मुख्यत: प्रकट होता है। क्योंकि संस्कृति में सब संस्कार आ जाते हैं और संस्कृति ही किसी भूमि को पुण्यभूमि बनाती है।'

गांधीजी की सोच में भारत में विभिन्न जातियां रहती हैं, विभिन्न संस्कृतियों का यहां मेला लगा है। उन्होंने उन लोगों की अपसंस्कृति को भी मानव संस्कृति का एक अंग माना, जिन्होंने सदियों से केवल मानवता का खून बहाने का शौक पाला और आज भी वही कार्य कर रहे हैं।

गांधीजी की अहिंसा की यह अद्भुत और विलक्षण प्रतिभा है कि वह घोर हिंसा को भी संस्कृति कहकर सम्मानित करने का साहस रखती है। सावरकर जी ने भारत को संस्कृतियों का मेला नहीं माना, उन्होंने भारत की संस्कृति को परम पवित्र माना और इस परम पवित्र संस्कृति को जिन लोगों ने क्षतिग्रस्त करने का प्रयास किया, उनके उस प्रयास को सांस्कृतिक हमला कहकर स्पष्ट किया। उनकी 'हिंदूनिष्ठ राजनीति' सदा ही इस बात की पक्षधर रही कि भारत को एक राष्ट्र, एक जाति और एक संस्कृति का देश माना जाए। वह वेद के संगठन सूक्त को सही अर्थों और संदर्भों में व्यवहार के धरातल पर उतारकर देखने के इच्छुक थे। जिसमें हम सबकी एक चाल, एक वाणी और एक मन होने की बात कही गयी है। एक चाल का अभिप्राय है कि आपको कोई जाति भौतिक रूप से एक दिशा में बढ□ती दिख रही है, एक वाणी का अभिप्राय है कि आपको वाणी दिखाई तो नहीं दे रही, पर आप वाणी (राष्ट्र) को अनुभव कर सकते हैं, जबकि एक मन का अभिप्राय है कि आप अपनी आत्मा से प्रेरित होकर सच्चे मन से (संस्कृति के पवित्रभाव भी ऐसे ही होते हैं) कोई कार्य कर रहे हैं। इस प्रकार एक चाल, एक वाणी और एक मन का अभिप्राय भी एक जाति, एक राष्ट्र और एक संस्कृति का सूचक है। इसे हिंदूनिष्ठ राजनीति का एक आवश्यक अंग बनाये बिना कोई भी विद्वान रह ही नहीं सकता।

जिस देश की संस्कृति को दिशा देने वाले और सही करके कहें तो एक स्वरूप देने वाले वेदों में ही एक संगठन सूक्त अलग से बनाकर देश की राजनीति को दिशा देने का महत्त्वपूर्ण कार्य किया गया हो, उस देश के लिए हर युग में केवल हिंदू (आर्य) निष्ठ राजनीति ही एक आदर्श हो सकती है।

इस महान देश को किसी विदेशी राजनीतिक दर्शन से कुछ सीखने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि यह सीखने वाला न होकर सिखाने वाला देश रहा है। कितना पवित्र है- राजनीति का हिंदूकरण। यह एक अभियान है, एक आह्वान है, एक पुकार है, एक आंदोलन है, जो सीधे मां भारती के अंत:करण से संबंध रखता है। इस अभियान को, आह्वान को, पुकार को और आंदोलन की आवाज को सुनना हर भारतीय का पावन कर्त्तव्य है। अपने विषय में तनिक सुनें, वीर सावरकर क्या कहते हैं-'यह धारणा कि 'हिंदू-हिंदुस्थान' शब्दों की उत्पत्ति मुसलमानों की द्वेष भावना से हुई है, सर्वथा असत्य और मूर्खतापूर्ण है।

जिस समय मुहम्मद का जन्म भी नहीं हुआ था, अरब नाम की जाति का धराधाम पर नाम-

निशान तक भी नहीं था, उन दिनों भी एक प्राचीन राष्ट्र सिंधु अथवा हिंदू नाम से सुविख्यात था। हम भी और बाहर वाले भी इस राष्ट्र को इसी नाम से संबोधित करते थे।

यदि यह नाम वस्तुत: तिरस्कार का सूचक होता तो हमारी जाति के पराक्रमी और श्रेष्ठ वीर पुरुष इसे कदापि स्वीकार नहीं करते। मुसलमान तो हमें 'काफिर' भी कहते आये हैं, तो क्या हम हिंदुओं ने इस नाम को स्वीकार कर लिया।' (हिंदुत्व पृष्ठ 79)

मित्रों, जब हमने सदियों से अपने लिए 'काफिर' नाम को स्वीकार नहीं किया तो इस पश्चिम प्रेरित, आत्मविनाशी दिशाहीन राजनीति को ही क्यों स्वीकार करें। संघर्ष तो हमारी रगों में छिपा हुआ एक संस्कार है, इसलिए इस संघर्ष का दामन मत छोड□ो। नये सवेरे की आशा मत छोड□ो। शांतमना एक तपस्वी की भांति एक राष्ट्र साधक की भांति आगे बढ□ो। तूफान मत बनो, गंभीर वायु बनो और उसी की भांति बहो। अंतिम जीत सत्य की होगी। 'तूफान' तो उतर जाते हैं, समाप्त हो जाते हैं, पर वायु सदा बहती है, इसलिए 'वायु धर्म' का निर्वाह करो। हमारा धर्म और राजधर्म हमें यही शिक्षा देता है।

ग्रामीण भारत, गांधी और सावरकर

भारत को खोजने के लिए आप क्या करेंगे? बस यही कि भारत के गांवों की ओर चले जाइये। भारत अपने आप मिल जाएगा। सावरकर के 'राजनीति का हिंदूकरण' की योजना का उद्देश्य भी यही था कि आप भारत को भारत के देहात में जाकर खोजने लगे। भारत को भारत के देहात में खोजने का अर्थ है-गांव की परंपराओं का, रीति-रिवाजों का, रहन-सहन का, और वहां के परिवेश का गहराई से अवलोकन किया जाए। इस अवलोकन में जो कुछ देखने और समझने को मिले, उसे भारत की उन्नति के लिए अपनाने का प्रयास किया जाए।

अब प्रश्न ये है कि क्या भारत के ग्रामीण आंचलों में ऐसा कुछ है, जो समस्त भारत की उन्नति के लिए अपनाया जा सकता हो? इसका उत्तर यही है कि भारत के देहात के पास अभी भी बहुत कुछ ऐसा है, जिसे अपनाया जाकर देश की उन्नति के लिए प्रयोग किया जा सकता हो। जैसे-

ग्रामीण लोग अपने को गरीब नहीं मानते

भारत का अधिकांश निर्धन वर्ग ग्रामीण भारत में मिलता है, पर वह गरीब होकर भी अपने आपको गरीब नहीं मानता। ग्रामीण गरीब लोग स्वस्थ रहते हैं एवं मस्त रहते हैं। उन्हें किसी प्रकार का तनाव नहीं होता। ऐसी स्थिति के कई कारण हैं। एक तो यह कि भारत के शहरी लोगों ने बहुत से तनाव अपने लिए अपने आप पैदा कर लिए हैं, जिनसे ग्रामीण व्यक्ति अभी कुछ दूर है। उदाहरण के रूप में शिक्षा को लें, चाहे स्वास्थ्य को या रहन सहन को लें या शहर की जीवन प्रणाली को लें। आपको सर्वत्र तनाव के कारण पांव पसारते मिलेंगे। इन लोगों ने (अर्थात शहरी लोगों के) अपने लिए बनावटी महंगाई खड□ी कर ली है। इन्हें अपने बच्चों की शिक्षा के लिए महंगा स्कूल या कॉलेज चाहिए, स्वास्थ्य के लिए महंगा चिकित्सक या अस्पताल चाहिए, रहन-सहन के लिए महंगा फ्लैट या प्लॉट चाहिए, महंगी गाड□ी चाहिए, ये सारे शौक नौकरी से पूरे नहीं होते तो उन्हें पूरा करने के लिए इनको भ्रष्टाचार से कमाया धन चाहिए। दूसरी ओर हमारे ग्रामीण भाई आज भी अपने बच्चों को सरकारी सस्ते स्कूल में शिक्षा दिलाते हैं, और खुशी की बात है कि उन स्कूलों से निकलकर भी बच्चे आईएएस तक बन रहे हैं। यह तब है, जबकि एक ग्रामीण व्यक्ति के बच्चों को आगे बढ□ने से रोकने के लिए हर प्रकार का षड्यंत्र और हथकंडा ऊपरी स्तर पर अपनाया जा रहा है। ग्रामीण लोग आज भी बड□ी संख्या में जंगली जड□ी-बूटियों से अपने आपको स्वस्थ रखते हैं। अब आप कॉलगेट को ही लें, इस पर एक शहरी परिवार वर्ष भर में यदि एक हजार रुपये खर्च करता है तो एक ग्रामीण परिवार इस पर एक रुपया भी खर्च नहीं करता। वह नीम, ढाक या अन्य किसी पेड□ की दातुन करता है और शहरियों से अधिक अपने आपको स्वस्थ रखता है। ग्रामीण लोगों का वैद्य किसी सरकारी संस्थान से डिग्री प्राप्त लुटेरा एमबीबीएस नहीं होता, वह नि:शुल्क वैद्यक सीखता है और नि:शुल्क ही लोगों का उपचार करता है। वह बीमार व्यक्ति का हाथ पकड□कर नब्ज से बताता है कि आपको रोग क्या है? आपने खाया क्या था? और उस खाने से आपको क्या कष्ट हुआ? और अब इस कष्ट का निवारण क्या है?

जबकि इसी कार्य के लिए शहरी लोगों को हजारों रुपया सीटी स्कैन आदि पर खर्च करना पड□ता है। इसके उपरांत भी नब्ज दिखाकर अपना उपचार कराने वाला अधिक प्रसन्न है, अपेक्षाकृत उस शहरी के, जो सीटी स्कैन से अपना 'फिजिकल चेकअप' कराता है।

एक ग्रामीण व्यक्ति अपने परिवार को बिना पैसे चलाता है, उसके पास कई-कई दिन तक ही नहीं कई-कई महीने तक भी कभी-कभी जेब में कोई पैसा नहीं होता, पर उसका जीवन चलता है। इसके लिए ग्रामीण लोगों ने प्राचीन काल से ही भारत की 'अपरिग्रहीता' की नीति को अपनाया हुआ है। इसका अभिप्राय है कि जितना शरीर पोषण एवं जीवन संचालन के लिए आवश्यक है, उससे अधिक धन रखना उचित नहीं है। ये लोग प्रात:काल अकसर दलिया दूध के साथ लेते हैं। दोपहर का भोजन ये गाय के दूध की छाछ से लेते हैं, उसके साथ अकसर लहसुन की चटनी होती है। शाम को ये लोग दाल-भात का प्रयोग करते हैं। इनका भोजन ऐसा होता है, जिसे आज का धनिक वर्ग ढूंढ□ता फिर रहा है। किसी भी विवाह समारोह में गरीब के भोजन को अमीर ढूंढ□ते आपको मिल जाएंगे। जो लोग ये सोचते हैं कि खाने पीने की महंगी वस्तुओं को देखकर किसी की अमीरी का अनुमान लगाया जा सकता है, तो वे भूल में हैं। यदि ऐसा होता तो हमारे धनी लोग निर्धनों के भोजन के लिए तरसते नहीं। इसका अभिप्राय है कि निर्धन के भोजन में कुछ बात है। पर इस देश में यह बात प्रचारित की गयी है कि धनी व्यक्ति का भोजन ऐसा होता है, जो मुंह में लार ला देता है। माना कि वह चटपटा होता है, उसमें कई बार सूखे मेवे भी होते हैं, पर वह चटपटा तला हुआ गरम मसालों से बना स्वास्थ्य नाशक भोजन धनी को स्वास्थ्य से कंगाल बनाता जा रहा है। वह इस स्वास्थ्य नाशक भोजन को लेते-लेते थक चुका है।

इसी प्रकार थोड□ा और विचार करेंगे तो गरीब की झोंपड□ी में जो आनंद है, वह धनी के भव्य प्रासादों में नहीं है। इस प्रकार गांव का व्यक्ति शिक्षा सस्ती लेकर अपनी प्रतिभा के बल पर आगे बढ□ रहा है। उसके साहस और पुरुषार्थ को नमन करना होगा। सस्ती चिकित्सा लेकर स्वस्थ रहता है, प्रकृति के साथ उसका समन्वय प्रशंसनीय है। सस्ते अवसरों में रहकर निश्चिंत रहता है, उसे अपने जीवन के लिए धनी व्यक्ति की भांति कोई संकट नहीं अनुभव होता, उसकी सादगी वंदनीय है।

शिक्षा, नि:शुल्क, चिकित्सा और सस्ते आवासों में रहना यह भारत की पहचान है। इसे भारत का दुर्गुण नहीं मानना चाहिए और ना ही इसे सामाजिक अभिशाप मानना चाहिए। इन तीनों बातों में भारत की सफल अर्थव्यवस्था और विश्वगुरु होने का उसका रहस्य छिपा है। यदि किसी देश ने इन तीनों चीजों को महंगा कर दिया तो वहां भ्रष्टाचार फैलेगा ही, भ्रष्टाचार से आपाधापी मचेगी, फलस्वरूप अराजकता उत्पन्न होगी। लोगों में परस्पर प्रेम कम होगा। क्योंकि सबका लक्ष्य पैसा कमाना हो जाएगा। हर व्यक्ति एक-दूसरे की जेब काटने की कला में निष्णात होने का प्रयास करेगा। व्यक्ति निराश और हताश होगा-उसमें आत्महत्या की प्रवृत्ति बढ□गी। भारत में आजकल पढ□-लिखे और शहरी वर्ग में यही सब कुछ हो रहा है। हर व्यक्ति पर्याप्त कमाई करने के उपरांत भी पैसे की तंगी अनुभव करता रहता है। जो कमाते हैं, वह बच्चों की महंगी शिक्षा पर व्यय हो जाता है, जो बचता है वह चिकित्सा पर व्यय हो जाता है। उससे भी जो बचता है, वह महंगे आवास पर व्यय हो जाता है, यदि इसके उपरांत भी हड्डी आदि शेष बचती है तो उन्हें शुगर खा जाती है। अंत में कुछ भी नहीं बचता।

हमारे यहां अध्यापक और वैद्य सादगी की प्रतिमूर्ति हुआ करते थे, लोग उनका हृदय से सम्मान किया करते थे। उनके आगमन पर लोग सम्मान से खड□ हो जाते थे। उनका 'अपरिग्रही' स्वरूप उन्हें समाज में सर्वोच्च स्थान दिलाता था। पर देश में कितनी शीघ्रता से मूल्यों में ह्रास आया है कि आज का टीचर और डॉक्टर ही सबसे अधिक धनी है। टीचर प्राइवेट स्कूल चलाकर देश को चूना लगा रहा है और डॉक्टर प्रा. नर्सिंग होम खोलकर धन कमा रहा है। टीचर ज्ञान में घालमेल कर रहा है, तो डॉक्टर हमें बीमार किये रखने का हरसंभव प्रयास कर रहा है। दोनों ही निजधर्म से भ्रष्ट हैं, धर्म इन्हें छोड□ चुका है।

हमारा राजधर्म धर्म की व्यवस्था का प्रतिष्ठाता हुआ करता था। सारी हिंदू राजनीति इसी धर्म व्यवस्था के मंडन का साधन थी। पर व्यक्ति अपरिग्रही हो और प्रकृति के साथ समन्वय बनाकर स्वयं के स्वास्थ्य का ध्यान रखने वाला हो, उसके आवास हवादार और पर्यावरण संतुलन को बिगाड□ने वाले ना हों, ऐसी व्यवस्था करना ही राज्य प्रबंधन में आता था। कहने का अभिप्राय है कि भारतीय राजधर्म ग्रामोन्मुखी और अंतत्योदयवादी था, जिस कारण समाज में सर्व समन्वय बना रहता था। राजा और रंक का कोई अंतर नहीं था। एक ही विद्यालय में 'कृष्ण' विद्याध्ययन करते थे, तो उसी में 'सुदामा' भी विद्याध्ययन करते थे।

गांधीजी ग्रामोन्मुखी भारतीय अर्थ व्यवस्था के समर्थक थे। उनके विचार को स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात से अब तक की सभी सरकारों ने भी अपने हर बजट में स्थान देने का प्रयास किया है। हम हर बार यही सुनते हैं कि यह बजट ग्रामोन्मुखी है और इसमें ग्राम्य विकास की हर संभावना पर विचार किया गया है। हम यह नहीं कहते कि आजादी प्राप्ति के पश्चात ग्राम्य विकास नहीं हुआ। हम मानते हैं कि ग्राम्य विकास हुआ है। अधिकतर गांवों को बिजली उपलब्ध करायी गयी है। सड□कों से जोड□ा गया है शिक्षा पर भी ध्यान दिया गया है और चिकित्सा के क्षेत्र में बहुत से अस्पताल भी गांवों में खोले गये हैं। पर हमारा मानना है कि बिजली, सड□क शिक्षा और स्वास्थ्य के इन चार बिंदुओं पर जो कार्य किया गया है, वह ही समग्र विकास नहीं है। इस विकास के साथ गांवों में एक बीमारी जा रही है, जो गांवों के शांत जीवन को अशांत कर रही है और वह बीमारी भारत की आत्मा को मार रही है। निश्चित रूप से हमारा संकेत मनुष्य की अपरिग्रहवादी प्रवृत्ति को 'परिग्रहवादी' बनते जाने की ओर है।

'राजनीति के हिंदूकरण' की जब बात की जाती है, तो उसका अभिप्राय होता है कि ग्रामीण भारत को रूढि□वादी और पिछड□ लोगों के समूह से काटकर उसे तिरस्कार भाव से देखने की अंग्रेजी मानसिकता को प्रतिबंधित करना है। उसके उपरांत उनके भीतर संस्कारप्रद शिक्षा का प्रसार करना है, जिससे उनको किसी भी प्रकार के रूढि□वाद से या पिछड□पन से छुटकारा मिले, तीसरे उन्हें स्वरोजगार उपलब्ध कराने हैं। उनके परंपरागत कुटीर उद्योगों को प्रोत्साहित कर स्वावलंबी जीवन जीने के लिए उन्हें प्रेरित करना है। चौथे गांव को गांव में रोकने की व्यवस्था करनी है-अर्थात वहां से प्रतिभा पलायन का हो और लोग ग्रामीण भारत में रहकर कार्य करने के लिए तैयार हों, ऐसी व्यवस्था करनी है। दिल्ली जैसे महानगरों की घुटनभरी जीवनशैली को 'लघुभारत' का नाम न देकर भारत के संस्कारों को झलकाने वाली प्रत्येक ग्राम्य इकाई को 'लघुभारत' की संज्ञा दी जाए-राजनीति के हिंदूकरण का यह पावन पवित्र उद्देश्य है।

हमारी केन्द्र सरकारें ग्राम्य विकास के लिए जितनी योजनाएं बनाती रही हैं, उनके लिए

आवंटित धनराशि में से 10 से 20 प्रतिशत ही गांवों तक जाता रहा है। इसका कारण है कि गांवों के विकास के नाम पर ऊपर बैठे लोगों को ही ग्राम्य विकास के लिए आवंटित धनराशि की जानकारी होती है। उसमें गांवों की सहभागिता नहीं होती। 'राजनीति के हिंदूकरण' की प्रक्रिया में ऐसी व्यवस्था सुनिश्चित की जाती है कि ग्रामीण क्षेत्र में रहने वाले लोगों के लिए प्रति हजार व्यक्ति के हिसाब से धनराशि आवंटित की जाएगी। जिसमें गांव के प्रधान के अतिरिक्त 5, 7 या 11 लोगों की एक विकास समिति होगी, जो उक्त धनराशि को ग्राम्य विकास के लिए व्यय कराएगी।

अत: राजनीति के हिंदूकरण का अभिप्राय है भारत का भारतीयकरण। शिक्षा का भारतीयकरण हो, उसमें फैले शिक्षा माफियाओं से उसे मुक्ति मिले, चिकित्सा क्षेत्र का भारतीयकरण हो, भारत के आयुर्वेद को देश की राष्ट्रीय चिकित्सा पद्धति घोषित किया जाए और आयुर्वेद के वैद्यों को प्रोत्साहित किया जाए, घनी आबादी की नारकीय नगरीय जीवनशैली को न अपनाकर प्रकृति के सान्निध्य में रहने वाली सुविधा संपन्न ग्रामीण जीवनशैली को अपनाया जाए, खान-पान में आ रहे बदलाव को रोका जाए, और भारतीय जलवायु के अनुसार अपने खानपान को रखने पर बल दिया जाए। जिस दिन राजनीति इस ओर कार्य करने लगेगी, उस दिन सावरकर जी का राजनीति का हिंदूकरण करने का संकल्प पूर्ण हो जाएगा और हमारा देश भ्रष्टाचार मुक्त हो जाएगा। साथ ही हमें तब पता चल जाएगा कि 'जय हिंदू राष्ट्र' के उद्घोष का अभिप्राय क्या है?

स्वदेशी चिंतन

सावरकर जी कहते हैं- 'वे कौन हैं, जिन्हें परमेश्वर ने भारतखण्ड को स्वदेश कहकर पुकारने का सौभाग्य प्रदान किया है? वे कौन हैं, जिन्हें सर्वशक्तिमान ने इस भारतभूमि को अपनी मातृभूमि मानने के अधिकार से गौरवान्वित किया है और जो इस भूमि के अमृतमय स्तन्य का दिव्यपान कर इसे 'ऐ मां!' कहकर पुकारने में धन्यता अनुभव करते हैं? यह कृतार्थता, धन्यता और गौरव हमें प्राप्त है- केवल हमें। भारतखण्ड को स्वदेश कहने का सौभाग्य प्राप्त कर हम भारतीय गौरवान्वित हैं।'

'राजनीति के हिंदूकरण' के माध्यम से स्वदेशी भावना को हमारे भीतर कूट-कूटकर भरने के लिए सावरकर जी आजीवन सक्रिय रहे। उन्होंने कहा था कि यह भारत' भूमि वशिष्ठ, नामदेव आदि ऋषियों द्वारा अभिमंत्रित जल से पवित्र की गयी है। महर्षि व्यास की वाणी और कृष्ण की गीता का ज्ञान इसकी उत्कट गंध है। रामायण हमारा क्षीर सागर है। दमयंती, सावित्री, गार्गी और सीता इस भूमि के उदर से उत्पन्न हुई। कणाद, कपिल, भास्कर, आर्यभट्ट, वराहमिहिर इत्यादि अन्वेषक, गौतम, महावीर, शंकर, रामानुज, नानक, दयानंद, विवेकानंद सरीखे धर्मवेत्ता इस धरती की यशगाथा से दिग्विजयी धर्मसम्राट बन गये। चित्तौड□ के प्रताप, बुंदेला के छत्रसाल, बंगाल के प्रतापादित्य, रामगढ□ के शिवा, पूना के पेशवा, पानीपत का रक्षा मैदान, सिंहगढ□ की खड□ी चट्टान, ज्ञानेश्वर की लेखनी, बिठोवा भक्त रामदास योद्धा हों या तत्ववेत्ता, शास्त्रविद् अथवा कवि, देशभक्त और राजनीति के धुरंधर सभी मिलकर जिसका स्तोत्र गा रहे हैं, उस महान भूमि का वंदन है, शत-शत अभिनंदन है।

इस प्रकार की उत्कृष्ट भाषण शैली और लेखन शैली में वीर सावरकर जी हमारा मार्गदर्शन कर स्वदेशी के माध्यम से 'राजनीति का हिंदूकरण' कर रहे थे।

गांधी जी का स्वदेशी अभियान

गांधीजी भी स्वदेशी के समर्थक थे। वह भी चाहते थे कि देश के लोग अपने देश के बने सामान का प्रयोग करें। अपने देश के प्राचीन गौरव को प्राप्त करें, और देशप्रेम की भावना को अपनाकर राष्ट्रीय एकता के प्रति समर्पित हों। गांधीजी देश के शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों के पूर्णत: आत्मनिर्भर बनने के भी समर्थक थे। गांधीजी का 'स्वदेशी आंदोलन' एक आध्यात्मिक आंदोलन था, जिसके माध्यम से वह सभी जीवधारियों में आध्यात्मिक एकता स्थापित करना चाहते थे। उनका यह चिंतन अच्छा था। गांधीजी आर्थिक, धार्मिक, राजनैतिक और सामाजिक क्षेत्रों में 'स्वदेशी' को बढ□ावा देते रहे, पर इस सबके उपरांत भी उनका स्वदेशी अभियान या स्वराज्य की परिकल्पना देश में राजनीति के हिंदूकरण की समर्थक नहीं थी। यही कारण है कि गांधीजी के भाषणों में या लेखन में भारत में अपनी स्वदेशी और स्वराज्य की परिकल्पना को साकार रूप देने के लिए उनकी स्पष्टता और उत्कृष्टता का सहारा नहीं लिया-जितनी स्पष्टता या उत्कृष्टता को सावरकर जी ने अपनाया। सावरकर जी सीधे 'जयहिंदू राष्ट्र' कहते थे और ऐसा कहने में उन्हें गौरव की अनुभूति होती थी। पर गांधी जी कभी 'जयहिंदू राष्ट्र' नहीं कह पाये थे।

नेहरूजी का दोगलापन

गांधीजी अपने ही सिद्धांतों और नीतियों पर अस्पष्ट रहे, उनके दोगलेपन को उनके राजनीतिक उत्तराधिकारी पंडित नेहरू ने और भी अधिक गंदला कर दिया। गांधीजी जहां जातिविहीन, शोषणविहीन और वर्गविहीन समाज की संरचना को लेकर कुछ करना चाहते थे- उनके उत्तराधिकारी नेहरूजी ने उनके इस विचार को और भी अस्पष्ट कर दिया या फिर इसे भाषणों में तो अपनाया, पर वास्तव में इसके विपरीत ही आचरण करते रहे। उन्हें 'राजनीति के हिंदूकरण' से घोर घृणा थी, क्योंकि नेहरूजी अपने आपको 'दुर्घटनावश बना हिंदू' मानते थे। इसलिए उन्होंने सावरकर जी की बात को तो छोडि□ए, अपने आदर्श गांधीजी के 'हिंदुत्व' को भी मानने से इंकार कर दिया।

'नन्साइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका' कहती है- 'सिद्धांतत: हिंदुत्व समस्त विश्वासों, श्रद्धारूपों और उपासना विधियों को समाविष्ट करता है, इसी कारण हिंदुत्व सभ्यता भी है और धार्मिक मान्यताओं का एक विराट संपुंजन भी है।'

किसने बंटवाया देश

हमारे शत्रु लेखकों या संस्थानों की हमारे विषय में ऐसी अच्छी सोच हो सकती है, परंतु दुर्भाग्य की बात रही है कि गांधीजी या उनके प्रिय शिष्य नेहरूजी की अपने विषय में ऐसी सोच नहीं थी। इन लोगों ने धर्म को देश से अलग करके देखने के लिए देशवासियों को प्रेरित किया! फलस्वरूप धर्म के आधार पर देश बंट गया। अपने धर्म (संप्रदाय) के प्रति समर्पित लोग देश बंटवा गये और अपने धर्म से विमुख होकर पीठ फेरकर खड□ होकर तत्कालीन नेताओं ने धर्म के आधार पर देश के बंटवारे को मान्यता दे दी। उसके उपरांत भी हमें हमारे नेता आज तक यही उपदेश देते आ रहे हैं कि राजनीति और धर्म का कोई मेल नहीं है। अब इन्हें कौन समझाये कि राजनीति और धर्म का मेल करके ईसाई लोग विश्व में अपने मत के 76 देश बनाने में और मुस्लिम 54 देश बनाने में सफल हो गये। जिनके पास एक भी देश नहीं था-वे आज विश्व में 76 और 54 देशों के स्वामी बन गये और जिनके पास संपूर्ण भूमंडल था, वे आज सिमटकर एक देश में कैद कर दिये गये हैं।

ऐसे में गांधीजी के शिष्य नेहरूजी का राजनीति और धर्म को अलग-अलग करके देखने का प्रवचन देशघाती सिद्ध हुआ। दु:ख की बात है कि हिंदू इस प्रवचन को अपने लिए 'ब्रह्मवाक्य' मानकर कार्य करते रहे। पर आज तो देश जागरण का समय है, अतीत की भूलों के प्रक्षालन का समय है-इसलिए सही दिशा में ठोस कार्य किया जाना अपेक्षित है।

'हमें देशभक्ति चाहिए देश विभक्ति नहीं।'

यह स्थिति भी चिंतनीय है कि देश में देशभक्त बढ□ रहे हैं और देश घट रहा है। ऐसे में 'हमें देशभक्ति चाहिए देश विभक्ति नहीं।' राजनीति का हिंदूकरण करके हम इस स्थिति को सहज रूप में प्राप्त कर सकते हैं।

राजनीति के हिंदूकरण से घृणा करने वालों ने और देश विभक्ति में विश्वास करने वालों ने देश को बांटने और तोड□ने का क्रम निरंतर अपनाये रखा है। सन 1911 ई. तक श्रीलंका

भारत का भाग था, सन 1935 तक बर्मा भी भारत का अंग था। 1947 ई. तक एक तिहाई भाग धरती पाकिस्तान को, चार माह बाद एक तिहाई कश्मीर, फिर पाकिस्तान को, सन 1950 में तिब्बत चीन को, सन 1954 में बेरूवाड□ी पूर्वी पाकिस्तान को, सन 1962 में 65 हजार वर्गमील भूमि चीन को, सन 1972 में कच्चा टीबू द्वीप श्रीलंका को, सन 1984 में अरुणाचल का बड□ा क्षेत्र चीन को, सन 1993 में तीन बीघा क्षेत्र बांग्लादेश को भूदान में दिया। 'राजनीति का हिंदूकरण' देश की इस दर्दनाक विभक्ति के प्रति हमारे भीतर आक्रोश उत्पन्न करता और हमारे नेतृत्व के प्रति देश में नकारात्मक परिवेश बनाता, पर हमें तो धर्मनिरपेक्षता की अफीम देकर सुला दिया गया और हमारे नेता लग गये देश की 'शल्य चिकित्सा' करने में। यह लोग देश के अंग काटते रहे और गिद्धों के सामने फेंकते रहे। किसी ने कुछ नहीं कहा, क्योंकि देश की चेतनाशक्ति (राजनीति का हिंदूकरण) को सुन्न कर उसे 'शून्य' में धकेल दिया गया था।

देशभक्ति को पुरस्कार दो और देशभक्ति का तिरस्कार करो

'राजनीति का हिंदूकरण' हमारे देशवासियों को बताता है कि देशभक्ति को पुरस्कार दो और देशभक्ति का तिरस्कार करो। गांधीजी 'देशभक्ति' के समर्थक हों या न हों, पर वे सदा देशविभक्ति के कार्यों में संलिप्त रहने वालों की 'जी हुजूरी' में लगे रहे और देश बंटवाते रहे। वह संकट से सावधान रहकर भी सही समय पर आंख बंद कर लेते थे, जबकि सावरकर संकट के प्रति चौकन्ने रहते थे और समय आने पर अपनी सामर्थ्य भर उसका प्रतिरोध भी करते थे। देशविभक्ति की प्रक्रिया को रोकने के लिए उन्होंने राजनीति के हिंदूकरण की बात कही और इसमें भी एक बात और जोड□ दी कि हिंदुओं का, भारत के प्रति समर्पित हर देशवासी का, सैनिकीकरण भी किया जाए।

भारत उपमहाद्वीप नहीं

अंग्रेजों ने भारत को एक उपमहाद्वीप के रूप में पढ□ाया और समझाया। उसका अभिप्राय था कि भारत एक महाद्वीप होने के कारण विभिन्न देशों से बना है। जिसका अभिप्राय है कि यदि ये देश समय आने पर अलग भी होना चाहें तो हो सकते हैं।

इस गहरे षड्यंत्र को असफल करने के लिए सावरकर जी उन व्यक्तियों में से थे, जिन्होंने 'भारत को एक राष्ट्र' मानने का उद्घोष किया, और इसे एक उपमहाद्वीप मानने से इंकार कर दिया। जबकि गांधीजी और नेहरूजी इसे आजीवन एक उपमहाद्वीप ही मानते रहे। वे दोनों ही ना तो 'देशभक्ति' में लगी शक्तियों के मंतव्य को समझ पाये और ना ही एक देश और एक उपमहाद्वीप के मध्य कोई अंतर ही कर पाये। 'हिंदूनिष्ठ राजनीति' इस अंतर को समझती है और इसे समाप्त करने के लिए देश के संविधान में भी अपेक्षित संशोधन करने की पक्षधर है।

संविधान में परिवर्तन की आवश्यकता

'हिंदूनिष्ठ राजनीति' की मांग है कि संविधान में भारत के स्थान पर 'हिंदू राष्ट्र' शब्द का प्रयोग किया जाए। क्योंकि हमारे वेदों में भी 34 स्थानों पर राष्ट्र शब्द का उल्लेख किया गया है। जब राष्ट्र ही नहीं रहेगा तो राष्ट्रीयता और राष्ट्रभक्ति की भावना देश की भावी पीढि□यों

में कैसे जागृत की जा सकेगी? गांधीजी वेद की राष्ट्रीयता को संभवत: समझ ही नहीं पाये, यदि वह वेद की राष्ट्रीयता को समझ गये होते तो उनकी अहिंसा, सत्य, अस्तेय, अपरिग्रह, ब्रह्मचर्य आदि की नीतियों का वही धर्म होता, जो इस देश को कभी ना तो बंटने देता और ना ही यहां राष्ट्रघाती लोगों को सिर उठाने देता।

गांधीवादियों ने देश में राष्ट्रवाद को हिंदुत्वनिष्ठ राजनीति का पर्याय मानकर इसे भी उपेक्षित करने का प्रयास किया है। यही कारण है कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 1 से लेकर 50 तक जहां अधिकारों का वर्णन है, वहां राष्ट्र कहीं नहीं है। अनुच्छेद 51 में जहां नागरिकों के कर्त्तव्यों का उल्लेख किया गया है, वहां राष्ट्र और राष्ट्रीयता की आवश्यकता स्वीकार की गयी है। जबकि उचित तो यही होता कि ये शब्द संविधान की प्रारंभिक धाराओं में ही-स्पष्ट करके रखे जाते। इस देश की मूल संस्कृति, जिसे संविधान में 'सामासिक संस्कृति' के नाम से अभिहित किया गया है-को प्रोत्साहित करके हेतु वैदिक धर्म की शिक्षा को अनिवार्य करने का प्राविधान संविधान की प्रारंभिक धाराओं में ही होना अपेक्षित था। पर इस प्राविधान को ना करके संविधान के अनुच्छेद 28(1) में प्राविधानित किया गया है कि राज्य विधि से पूर्णत: पोषित किसी शिक्षा संस्था में कोई धार्मिक शिक्षा नहीं दी जाएगी। जबकि यही अधिकार 'अल्पसंख्यक वर्गों के हितों का संरक्षण' के नाम पर धारा 29 में ईसाई व मुस्लिम आदि अल्पसंख्यक संस्थाओं को अपनी धार्मिक 'साम्प्रदायिक' शिक्षा देने का अधिकार दिया गया है।

व्यापक सुधारों की संभावना है

'हिंदूनिष्ठ राजनीति' में शिक्षकों के कल्याण के लिए उनकी नियुक्ति का अधिकार 'हिंदू प्रबंध मण्डल' को दिया जाना अपेक्षित है। हिंदुओं के धर्मांतरण को पूर्णत: गैरकानूनी घोषित किया जाना चाहिए, क्योंकि हिंदुओं का धर्मांतरण देश 'विभक्तिकारी शक्तियों' को बल प्रदान करता है। इसके अतिरिक्त देश में 'समान नागरिक संहिता' को लागू कराये जाएं। 10 मई, 1995 को सर्वोच्च न्यायालय ने देश में समान नागरिक संहिता लागू करने हेतु प्रधानमंत्री को निर्देश दिया था। न्यायालय का मानना था कि यह संहिता देश के सभी सम्प्रदायों पर समान रूप से लागू होनी चाहिए।

राजनीति के हिंदूकरण में देश के संविधान के अनुच्छेद 48 के अनुसार पूर्ण गोहत्या बंदी को लागू कराना अनिवार्य है। अनुच्छेद 120, में हिंदी को राजभाषा बनाया जाना अपेक्षित है। भारत की संसद में संविधान के अनुच्छेद 331 के अनुसार देश का राष्ट्रपति दो एंग्लो भारतीय समुदाय के लोगों को लोकसभा में मनोनीत कर सकता है।

यह व्यवस्था उचित नहीं है। इसी प्रकार अनुच्छेद 333 की वह व्यवस्था भी अनुचित है-जिससे किसी प्रांत का राज्यपाल एंग्लो भारतीय समुदाय के लोगों को नामित करने की शक्ति रखता है। मेघालय, मिजोरम आदि ईसाई बहुल प्रांतों में यदि कोई हिंदू चुनकर विधानसभा में न जा सके तो वहां के राज्यपाल को ऐसी परिस्थिति में किसी हिंदू को राज्य विधानसभा के लिए नामित करने की शक्ति नहीं है। इतना ही नहीं अंग्रेजों ने अपने समुदाय के लोगों के लिए नौकरियों में आरक्षण की व्यवस्था अनुच्छेद 336 (1) व 336 (2) में की। अनुच्छेद 337 में उन्होंने अपने लिए शैक्षिक अनुदान लेने की व्यवस्था करायी। सावरकरजी ऐसी व्यवस्थाओं

को ‘देश विभक्ति’ का प्रयास मानते थे और गांधी जी या नेहरू जी इनके समर्थक थे। समय ने सिद्ध कर दिया है कि सावरकर जी का चिंतन ही देश के अनुकूल और ठीक था।

संविधान की ये धाराएं किसकी देन हैं?

भारत संविधान के अनुच्छेद 343 के अनुसार भारतीय गणित के अंक 1, 2, 3... 9 को बदलकर अंतर्राष्ट्रीयता के नाम पर 1, 2, 3... 9 कर दिया गया है। इससे भारतीय के गणित के क्षेत्र में विश्व को देन विषय पर शोध करने की परंपरा बाधित हुई है। यदि भारतीय अंकों का विलोपीकरण न किया जाता तो हमारे विद्यार्थियों को अपने देश के विषय में जानने का और भी अधिक अवसर मिलता। यद्यपि अनुच्छेद 343 (3) में 15 वर्ष बाद अर्थात 1965 से देवनागरी अंकों के प्रयोग का निर्देश है, किंतु उसका प्रचलन आज तक नहीं हो पाया है। इस संबंध में संविधान के निर्देश का पालन किया जाना आवश्यक है।

न्यायालयों की भाषा और शासक वर्ग

'राजनीति के हिंदूकरण' की प्रक्रिया को लागू करने की और भी अधिक अनिवार्यता इस बात से प्राप्त हो जाती है कि मुगल काल में देश के न्यायालयों की भाषा फारसी थी, और ब्रिटिशकाल में अंग्रेजी थी। कहने का अभिप्राय है कि न्यायालयों की भाषा शासक वर्ग अपनी सुविधानुसार बनाया करता है। अब जबकि भारत स्वतंत्र है, तो न्यायालयों से अंग्रेजी का वर्चस्व समाप्त होना चाहिए और उसके स्थान पर शासन की ओर से हिंदी को प्राथमिकता दी जानी चाहिए। संविधान की धारा 344 राजभाषा हिन्दी के उन्नयन की बात कहती है, पर हमने अपनी राजभाषा हिन्दी के उन्नयन के लिए कोई ठोस कार्य नहीं किया है, और देश के न्यायालयों में अंग्रेजी का वर्चस्व आज भी यथावत बना हुआ है।

जम्मू-कश्मीर और धारा 370

देश के लिए जम्मू-कश्मीर राज्य का विशेष महत्त्व है, यहां एक वर्ग विशेष के हितों के रक्षार्थ संविधान की धारा 370 लगाई गयी है। इस पर हम पूर्व में भी बहुत कुछ लिख चुके हैं, यहां तो मात्र इतना ही स्पष्ट करना पर्याप्त है कि इस धारा को हटाने के लिए सावरकर जी प्रारंभ से ही सक्रिय रहे थे। वह नहीं चाहते थे कि देश के विभाजन के लिए उन्हें कोई नई संरचना रची जाए। जबकि गांधी जी की कांग्रेस इसी धारा के अंतर्गत जम्मू-कश्मीर में हिंदू हितों की बलि चढ□ाती आयी है। वहां से लाखों हिंदू (कश्मीरी पंडित) अपना घरबार छोड□कर देश में इधर-उधर भटक रहे हैं, अपने ही घर में शरणार्थी का अपमानजनक जीवन जीने के लिए ये लोग बाध्य हैं। राजनीति का हिंदूकरण करने का अभिप्राय संविधान में ऐसी कोई भी धारा का न होना होगा, जो देश की एकता और अखण्डता के लिए किसी भी प्रकार का कोई संकट उत्पन्न कर सकती हो। यह कितना दुर्भाग्यपूर्ण है कि 1947 में जो हिंदू शरणार्थी पाकिस्तान से आकर कश्मीर में बस गये थे, उन्हें आज तक इस प्रदेश की विधानसभा के चुनाव में मतदान करने का अधिकार नहीं दिया गया है। न केवल लोकसभा के चुनाव में अपना मत देने का अधिकार है। इतना ही नहीं 1947 में जो मुस्लिम शरणार्थी जम्मू-कश्मीर छोड□कर पाकिस्तान चले गये थे, उन्हें जम्मू-कश्मीर सरकार वापस बुलाकर हिंदू बाहुल्य जम्मू आदि क्षेत्रों में पुनर्वासित कर रही है। इस पर तुरंत प्रतिबंध लगाने की

आवश्यकता थी, परंतु देश विभक्ति की नीतियों पर काम करती रही, गांधीवादी कांग्रेसी सरकारों ने इस ओर कोई ध्यान नहीं दिया।

धारा 371 और भी अधिक खतरनाक

धारा 370 से अगली खतरनाक धारा 371 है। यह धारा ईसाई बहुल प्रदेशों नागालैंड, मिजोरम, मेघालय में कई स्थानों पर भूमि खरीदने का अधिकार केवल ईसाई नागाओं को प्रदान करती है। यह अधिकार हिंदुओं को नहीं दिया गया है। इससे इन प्रदेशों में अत्यंत प्राचीनकाल से निवास करते आये हिंदुओं को यहां रहकर जीवन यापन करना कठिन होता जा रहा है। उनके सामने अब दो ही विकल्प हैं कि या तो वे यहां से पलायन करें या फिर धर्मांतरण करें। लोकतांत्रिक देश में संविधान के द्वारा ऐसी व्यवस्था करना व्यवस्था को अन्यायकारी बनाता है। जबकि हिंदूनिष्ठ राजनीति ऐसी किसी भी व्यवस्था की घोर विरोध है। उसका मंतव्य नागरिकों के मध्य समानता स्थापित करना है, और राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक न्याय लोगों को प्रदान करना है। कांग्रेस ने देश की एकता और अखण्डता को दांव पर रखकर संविधान की इस अन्यायकारी धारा को बनाये रखना आवश्यक समझा है। उसका दृष्टिकोण वोटों की राजनीति करना रहा है। तुष्टिकरण को उसने गांधीवाद का नाम दिया है। अत: स्पष्ट है कि इस गांधीवाद ने देश को कितना कष्ट दिया है?

भारतीय अर्थव्यवस्था

कौटिल्य का कथन है कि- 'सुखस्य मूलं धर्म:। धर्मस्य मूलं अर्थ:।' अर्थात सुख का मूल धर्म है और धर्म का मूल अर्थ है। अर्थ की पवित्रता को धर्मानुकूल बनाने की भावना पर हमारी प्राचीन अर्थव्यवस्था को खड□ा किया गया, गांधीजी यद्यपि अर्थ की शुचिता पर बल देते थे, पर वह उसे भारत के प्राचीन अर्थतंत्र से अथवा कौटिल्य के अर्थशास्त्र से जोड□कर नहीं देखते थे। कौटिल्य का कहना है- 'आन्वीक्षकी त्रयीवार्त्ता दण्डनीतिश्चेति विद्या' अर्थात चारों पुरुषार्थों धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को प्राप्त करने के लिए आन्वीक्षकी, त्रयीवार्त्ता और दण्डनीति ये चारों विद्याएं आवश्यक हैं।

भारत के विषय में विद्वानों की मान्यता रही है कि- 'हिंदू धर्म व्यवस्था के पास भारत के निवासियों को निर्धन और निरक्षर बनाये रखने का कोई ब्लूप्रिंट नहीं है, किंतु संसार में समृद्धतम देशों में अग्रणी भारत सहस्रों वर्षों तक यदि विश्व के चक्रवर्ती सम्राटों का केन्द्र रहा तो उसका श्रेय केवल हिंदू पद्धति की हिंदू अर्थनीति सिद्धांतकारों को ही प्राप्त होता है, अन्य किसी को नहीं। हिंदू अर्थनीति अर्थात स्वर्णयुग का भारत, विदेशी अर्थनीति अर्थात कंगाल भारत (प्लास्टिक युग का भारत) है।'

अत: राजनीति का हिंदूकरण वास्तव में व्यवस्था का हिंदूकरण है, जिसमें व्यक्ति को केन्द्रित करके नीतियां बनाई जाती हैं और व्यक्ति के समग्र विकास को लक्षित किया जाता है।

विश्वेश्वरैया का प्रबंधन

आधुनिक औद्योगिक नीति नियामक प्रसिद्ध अभियंता विश्वेश्वरैया का कहना है कि (1)

मनुष्य, (2) माल, (3) मुद्रा, (4) मशीन, (5) प्रबंधन- मैनेजमेंट, (6) शक्ति और (7) मांग। इन सातों (Men, Meterial, Money, Machinery, Management, Motiv Power, Market) के समन्वित प्रयास से ही उद्योग में सफलता मिलती है।

हिंदू राजनीति इसी आदर्श को लेकर आगे बढ□ना चाहती है। हिंदू राजनीति देश में बहुराष्ट्रीय कंपनियों के बढ□ते जाल को किसी भी दृष्टिकोण से उचित नहीं मानती है। विदेशी कंपनियां देश की अर्थव्यवस्था को चौपट कर रही हैं। उनसे देश को मुक्त करना देश के लिए आर्थिक स्वतंत्रता की नई लड□ाई लड□ने के समान है। इन कंपनियों ने देश के राजनैतिक दलों को अपने माया मोह में जकड□-सा लिया है।

देश की विदेश नीति का हिंदूकरण

विश्व में 76 देश ईसाई होकर तथा 54 देश मुस्लिम होकर अपनी विदेश नीति को अपने ढंग से लागू करते हैं। उन्हें अपने संप्रदाय की बात अंतर्राष्ट्रीय मंचों से करने में भी कोई हिचक नहीं होती, पर हमारी सरकारों को प्रारंभ से ही अपने आपको हिंदू राष्ट्र कहने में संकोच रहा है। सावरकर जी का चिंतन था कि यदि ईसाई और मुस्लिम लोग अपना साम्प्रदायिक गुट विश्व में बना सकते हैं, तो भारत को भी विश्व मंचों पर अपने समान विचारधारा के देशों का गुट बनाना चाहिए। उनका मानना था कि भारत, नेपाल, मॉरीशस, सूरीनाम, गुयाना आदि 10 देशों में हिंदू लोग बहुलता से मिलते हैं। इन्हें साथ लेकर चलना भारत की विदेशनीति का अंग होना चाहिए। जबकि इन 10 देशों के अतिरिक्त 29 बौद्ध देश हैं, जिनमें प्रमुख हैं- चीन, जापान, लंका, ब्रह्मदेश, थाईलैंड इत्यादि। इन सबको धार्मिक ऊर्जा भारत से ही मिलती है और ये देश भारत को अपने लिए तीर्थस्थल मानते हैं। सावरकर का मानना था कि इन देशों को साथ लेकर अंतर्राष्ट्रीय मंचों को हिलाने और अपने अनुसार चलाने के लिए भारत को अपनी शक्ति का प्रयोग करना चाहिए। यह नीति बड□ी ही व्यावहारिक कही जा सकती है क्योंकि आज कल अंतर्राष्ट्रीय राजनीति सांप्रदायिक गुटबाजी का शिकार है। एक ही विचारधारा के देश साम्प्रदायिक आधार पर बड□ी तेजी से एक मंच पर आ जाते हैं, इसी नीति पर यदि भारत प्रारंभ से ही चीन के साथ चलता तो अन्य बौद्ध धर्मावलंबी देश भी यथाशीघ्र भारत के साथ आ जाते और भारत की बात को अंतर्राष्ट्रीय मंचों पर गंभीरता से सुनना आरंभ कर देते हैं।

नेहरू जी ने प्रारंभ से ही ईसाई देश ब्रिटेन, या बाद में रूस का साथ देना आरंभ कर दिया था। उन्हें बौद्ध या किसी हिंदू देश को साथ लगाने में कुछ अधिक ही संकीर्णता दिखाई पड□ती थी। फलस्वरूप भारत को अंतर्राष्ट्रीय मंचों पर कुछ अधिक ही समस्याओं का सामना करना पड□ा। गांधीजी यद्यपि महात्मा बुद्ध की हिंसा की नीति पर चलने वाले थे परंतु उन्हें बौद्धों को साथ लगाने में अधिक रुचि नहीं थी। हां, वह हर स्थिति में मुस्लिमों को साथ रखने के समर्थक थे। उन्होंने अपना अलग राज्य बनाया और फिर अंतर्राष्ट्रीय मंचों पर उसी अलग बने देश पाकिस्तान ने भारत के लिए कष्टकारी परिस्थितियों का तानाबाना बुनना आरंभ कर दिया।

सावरकर जी धार्मिक आधार पर चीन आदि देशों से संबंध बनाने के समर्थक थे, परंतु इसका अभिप्राय यह नहीं था कि वे बुद्धवादी अहिंसा को अपनी विदेशनीति का आधार बना

लेना चाहते थे। नहीं, वह विदेशनीति के लिए अपनी शुद्ध हिंदू राजनीति के प्रबल पक्षधर थे। 10 मई 1957 को 1857 की क्रांति के सौ वर्ष पूर्ण होने के अवसर पर उन्होंने दिल्ली में कहा था- 'हमारे देश को पाकिस्तान व चीन से धमकियां और चुनौतियां मिलती रही हैं। ऐसे समय में हमारे सम्मुख दो आदर्श हैं। एक आदर्श है बुद्ध का, दूसरा है युद्ध का। हमें बुद्ध या युद्ध में से एक को अपनाना होगा। ये हमारी दूरदर्शिता पर निर्भर है कि हम बुद्ध की आत्मघाती नीति को अपनाएं या युद्ध की विजय प्रदायिनी वीरनीति को अपनाएं।'

जब तक भारत आधुनिकतम शस्त्रास्त्रों से युक्त शक्तिशाली राष्ट्र नहीं बनेगा, इसकी सीमाएं खतरे में पड□ी रहेंगी। अत: राष्ट्र को सैन्य के क्षेत्र में शक्तिशाली बनाने के कार्य को प्राथमिकता दी जानी चाहिए।

बेडि□यां तोड□ दो

'सावरकर विचारदर्शन' में सावरकर जी ने हिंदू समाज के उत्थान और हिंदू राष्ट्र की मजबूती के लिए बड□ पते की बात कही है। वह कहते हैं कि जातिभेद का उन्मूलन करने के लिए हमें सात बेडि□यां तोडनी हैं, ये हैं- 'वेदोक्तबंदी, व्यवसायबन्दी, स्पर्शबन्दी, सिन्धुबन्दी, शुद्धिबन्दी, रोटीबन्दी और बेटीबन्दी।'

इन सात बेडि□यों को तोड□कर सावरकर हिंदू राष्ट्र निर्माण करने के पक्षधर थे। वह वेदादि शास्त्रों को पढ□ने का सबको समान अधिकार देना चाहते थे। व्यवसाय के क्षेत्र में हर हिंदू को कोई भी व्यवसाय चुनने का अधिकार होना चाहिए। यहां तक कि मंदिर का पुजारी भी किसी भी जाति का व्यक्ति हो सकता है। ऐसी समानता सावरकर जी चाहते थे। इसके लिए अस्पृश्यता निवारण वह अनिवार्य मानते थे। वह सिन्धुबन्दी से विदेश गमन के निषेध को मिटाना चाहते थे। वह चाहते थे कि जो हिंदू विदेशों में बसे हैं उनसे हमारे भावनात्मक संबंध बने रहने चाहिए। वह परधर्मी बन गये लोगों की घर वापसी को सरल बनाने के पक्षधर थे। आपातकाल में मुस्लिमों का या ईसाईयों का खाना खाने पर लेने पर हिंदू को जाति बहिष्कृत करने की सामाजिक बुराई को वह जड□ से उखाड□ देना चाहते थे। ऐसे बहिष्कृत लोगों को वह घर लाने के पक्षधर थे। विधर्मी से शादी कर लेने पर भी कुछ लोग निजबंधुओं को बहिष्कृत कर देते थे। सावरकर जी इसे भी अनुचित मानते थे। वह अहिंदू को हिंदू बनाकर विवाह कराने के समर्थक थे। निश्चय ही इन सातों बेडि□यों का टूटना हिंदू राजनीति के लिए बहुत ही आवश्यक हैं।

राष्ट्रविरोधियों के खिलाफ चिंतन

गीता में श्रीकृष्णजी के सारे उपदेश का सार केवल ये है कि हर मनुष्य को संसार में आकर सज्जनों के कल्याण=परित्राण और दुष्टों के विनाश (परित्राणाय साधूनाम् विनाशाय च दुष्कृताम) में लगे रहना चाहिए। यदि हर व्यक्ति इस उद्देश्य के साथ जीवन संग्राम में उतरेगा तो प्रथम तो बुराई आ ही नहीं सकती और यदि आएगी तो हर व्यक्ति के सजग रहने के कारण उसको शीघ्र ही मिटा दिया जाएगा। जब हर व्यक्ति इसी लक्ष्य के प्रति समर्पित हो जाएगा तो विश्वशांति अपने आप ही स्थापित हो जाएगी।

'परित्राणाय साधूनाम' का फल

'परित्राणाय साधूनाम' से पवित्रता और वैचारिक समभाव का विस्तार होता है, लोग एक दूसरे के प्रति सहयोगी और सद्भावी बनते हैं और एक दूसरे के जीवन का सम्मान करना सीखते हैं। प्राणिमात्र के प्रति दया भावना प्रदर्शित करना उनकी प्रवृत्ति बन जाती है। इससे समाज में सकारात्मक विचारों की ऊर्जा का प्रवाह तीव्रता से होता है और विनाशकारी शक्तियों को सिर उठाने का अवसर ही नहीं मिलता। हमारी राज्य व्यवस्था का भी अंतिम लक्ष्य 'परित्राणाय साधूनाम् विनाशाय च दुष्कृताम' ही रहा है। इसी बात को वेद ने सृष्टि प्रारंभ में ही हमारे संविधान (वेद) के सारतत्व के रूप में 'इंद्रंवर्धन्तो अप्तुर: कृण्वन्तो विश्वमार्य्यम् अप्घ्नन्तो अराव्ण:।' कहकर हमारे समक्ष प्रस्तुत किया है। इसमें वेद की आज्ञा है कि अच्छे लोगों का सम्मान और वृद्धि होने से तथा दुष्टों का संहार करने से ही विश्व को आर्य बनाया जा सकता है।

रामचंद्र जी समुद्र के किनारे खड□ हैं। समुद्र से बार-बार मार्ग देने का अनुरोध कर रहे हैं, पर समुद्र (संबंधित क्षेत्र का कोई ठेकेदार जैसा व्यक्ति) रास्ता देने को तैयार नहीं होता है। तीन दिन इसी अनुनय विनय में बीत जाते हैं। तब रामचंद्रजी लक्ष्मण जी से कहते हैं:-

'विनय न मानत जलधि जड□ गये तीन दिन बीत।
लक्ष्मण बाण संभालेहुं भय बिन होइ न प्रीत।।'

गीता, वेद, रामायण तीनों एक ही बात को अपने-अपने शब्दों से कह रहे हैं कि शांति के लिए दुष्टों का विनाश और सज्जनों का कल्याण करना आवश्यक है। दुष्ट बिना भय के सीधे रास्ते पर नहीं चल सकता, वह तभी प्रीत करेगा जब उसे आपके हाथ में डण्डा दिखाई देगा।

गांधीजी का वेद ज्ञान

गांधीजी वेदों के विद्वान नहीं थे, पर वह गीता अवश्य पढ□ते थे और देश में रामराज्य लाने की बात भी करते थे। ऐसे में उनसे वेद के आदेश को न मानने की अपेक्षा तो की जा सकती थी पर गीता और राम के वचनों की उपेक्षा की अपेक्षा नहीं । परंतु सच यही है कि गांधीजी ने 'गीता' और राम के वचनों की उपेक्षा की। वह बुराई को मिटाना तो चाहते थे परंतु

बुराई के सामने मौन खड□ रहकर मिटाने का अतार्किक प्रयास कर रहे थे। यद्यपि पाकिस्तान उनकी इसी नीति के कारण बन गया, जिसे उन्होंने अपनी आंखों से देखा, पर फिर भी वह अपनी नीति को छोड□ने को तैयार नहीं थे।

इधर सावरकर वेद, गीता और रामायण के तत्वज्ञान को भली प्रकार समझते थे, इसलिए वह उन्हीं के निर्देशों का पालन करते हुए बुराई के विनाश के लिए मैदान में उतरे। फलस्वरूप सावरकर ने 'राजनीति का हिंदूकरण और हिंदुओं का सैनिकीकरण' करने की बात कही। उनके इस उद्घोष के दो पक्ष हैं- (1) राजनीति का हिंदूकरण और (2) हिंदुओं का सैनिकीकरण। राजनीति का हिंदूकरण उनके उद्घोष का आध्यात्मिक पक्ष है या कहिए कि यह तैयारी है बुराई से लड□ने की। इसे वेद के 'इंद्रं वर्धन्तो अप्तुर:' के साथ समायोजित करके देखना चाहिए और गीता के 'परित्राणाय साधूनाम' के साथ समायोजित करके देखना चाहिए। सावरकर का 'राजनीति का हिंदूकरण' करने का अभिप्राय वही है जो वेद के 'इंद्रं वर्धन्तो अप्तुर:' और गीता के 'साधूनाम् परित्राणाय' का है। इसी प्रकार तुलसीदास जी राम जी के मुंह से 'लक्ष्मण बाण संभालेहुं' कहलवा रहे हैं, यह भी 'राजनीति का हिंदूकरण' है क्योंकि इसका अंतिम लक्ष्य भी दुष्ट की दुष्टता का अंत कर प्रीत=शांति स्थापित करना है। इस प्रकार समीकरण यों बना:-

वेद= इंद्रं वर्धन्तो अप्तुर:
गीता= साधूनाम परित्राणाय
रामायण= लक्ष्मण बाण संभालेहुं
सावरकर= राजनीति का हिंदूकरण।

अब यह देखना है कि यह समीकरण क्यों बन रहा है? इस पर हम प्रारंभ में ही प्रकाश डाल चुके हैं कि दुष्टों के संहार के लिए और शांति व्यवस्था स्थापित करने के लिए। अत: वेद, गीता, रामायण (रामचरित मानस) सावरकरजी इस पर क्या कहते हैं? यह भी इस समीकरण से स्पष्ट हो जाता है,

वेद= अष्नन्तो अराव्ण:
गीता= विनाशाय च दुष्कृताम
रामायण= भय बिन होय न प्रीत
सावरकर= हिंदुओं का सैनिकीकरण।

इस समीकरण में 'हिंदुओं' शब्द के स्थान पर आप 'सज्जनों' शब्द रखिए। जिससे अर्थ और भी अधिक स्पष्ट हो जाएगा। इससे बना 'सज्जनों का सैनिकीकरण', अर्थात संगठनीकरण। सज्जन शक्ति का संगठनीकरण हर युग की आवश्यकता रही है, आज भी है और कल भी रहेगी। यदि यह मिट गयी तो समाज से बुराई समाप्त नहीं की जा सकेगी। सावरकरजी ने भारत में संदर्भ में इतिहास का बड□ा सूक्ष्मता से अध्ययन किया था। उन्होंने इतिहास के सच को समझकर ही राजनीति का हिंदूकरण और हिन्दुओं का सैनिकीकरण करने का उद्घोष किया था। वे भारत देश के आध्यात्मिक पक्ष (अर्थात विश्व की सज्जनशक्ति का संगठनीकरण) = राजनीति का हिंदूकरण करके उसे भौतिक पक्ष अर्थात हिंदुओं का सैनिकीकरण = (दुष्टों के संहार का उपक्रम, सैनिकीकरण का अभिप्राय किसी वर्ग विशेष के

विरूद्ध युद्ध की तैयारी कदापि नहीं था) के साथ जोड□ देना चाहते थे।

1955 में जोधपुर में हिंदू महासभा के अधिवेशन में भाषण देते हुए सावरकर ने कहा था- 'जब तक देश की राजनीति का हिंदूकरण और हिंदुओं का सैनिकीकरण नहीं किया जाएगा, तब तक भारत की स्वाधीनता, उसकी सीमाएं, उसकी सभ्यता व संस्कृति सुरक्षित कदापि नहीं रह सकेगी। मेरी हिंदू युवकों से यही अपेक्षा कि वे अधिकाधिक संख्या में सेना में भर्ती होकर सैन्य विद्या का ज्ञान प्राप्त करें, जिससे समय पड□ने पर वे अपने देश की स्वाधीनता की रक्षा में योग दे सकें।'

हिंदुओं के सैनिकीकरण की बात सावरकर क्यों कह रहे थे? इसका उत्तर यही है कि प्राचीन काल से ही हिंदू स्वराष्ट्र की सेवार्थ स्वेच्छा से अपने आपको सैनिक रूप में तैयार रखता था। जब देश पर विदेशी आक्रमण आरंभ हुए तो हमारे राजाओं को उनका सामना करने के लिए इन स्वयंसेवी सैनिकों की सेवाएं अपने-आप नि:शुल्क मिल जाया करती थी। ये ऐसे सैनिक होते थे जिन्हें विशेष प्रशिक्षण की भी आवश्यकता नहीं होती थी। कारण कि शस्त्र निर्माण और धनुर्विद्या हमारे विद्यालयों के पाठ्यक्रम में एक अनिवार्य विषय होता था, जिसे प्रत्येक बालक अनिवार्यत: सीखता था। आचार्य लोग शास्त्रों की ऐसी सात्विक विद्या दिया करते थे, जिससे वह स्वयं की तथा दूसरों की संकटकाल में प्राणरक्षा कर सकें और निजदेश को शत्रु से सुरक्षित रख सकें। तुर्कों और मुगलों के आक्रमण के समय ऐसे कितने ही अवसर आए थे जब हमारे देश के युवाओं और योद्धाओं ने राजा की आज्ञा की प्रतीक्षा किये बिना ही या राजा के मारे जाने पर स्वयं सेना बनाई और शत्रु से भिड□ गये। देश के लिए बच्चा-बच्चा सैनिक बन गया। उस 'सैनिकीकरण' की प्रक्रिया को अपनाने से ही भारत पर्याप्त क्षति उठाकर अपना और अपने धर्म की रक्षा कर सका था।

कालांतर में जब अंग्रेज इस देश में आये तो उन्होंने 1857 की क्रांति के समय देखा कि लोग घरों में हथियार बना-बनाकर उनसे अंग्रेजों का संहार कर रहे थे। तब उन्होंने इस देश में हिंदू के नि:शस्त्रीकरण की प्रक्रिया प्रारंभ की। इसी समय से भारत में हिंदू के लिए शस्त्र लाइसेंस की प्राप्ति अनिवार्य की गयी, देशी हथियारों को अवैध घोषित किया गया। हमारे लिए अनिवार्य किया गया कि अंग्रेजों की कंपनी से बने हथियार ही खरीदें, यदि कोई हथियार घर में बना मिलता है तो उसे अवैध घोषित किया जाएगा और ऐसे हथियार रखने वाले व्यक्ति के विरुद्ध कानूनी कार्यवाही की जाएगी। यहां से हिंदू का सैनिकीकरण अभियान बाधित हो गया। यदि हम थोड□ा अपने क्रांतिकारी इतिहास पर नजर डालें तो पता चलता है कि हमारे क्रांतिकारियों ने हिंदू के सैनिकीकरण अभियान को निरंतर जारी रखा। उसी के परिणामस्वरूप देश के हजारों लाखों युवकों में आजाद हिंद फौज जैसी कई छोटी-बड□ी सेनाएं तैयार कर लीं। परिणामस्वरूप अंग्रेजों को देश छोड□कर भागना पड□ा।

किसी भी देश को और उसकी संस्कृति को खतरा सदा ही बना रहा है। देश की स्वतंत्रता के पश्चात गांधीजी और उनकी कांग्रेस को लगा था कि अब संकट टल गया है, पर संकट टला नहीं था।

वह नये रूप में हमारे सामने खड□ा था। जिसके समाधान के लिए सावरकरजी ने इस देश के युवाओं का आह्वान किया कि देश की रक्षा के लिए अधिकाधिक संख्या में सेना में जाएं।

जिससे समय पड□ने पर वे अपने देश की स्वाधीनता की रक्षा में योग दे सकें।

सावरकर जी का हिंदुओं के सैनिकीकरण का उद्देश्य भारत देश की संस्कृति और धर्म की रक्षा करना था- 'प्रत्येक विद्यापीठ, विद्यालय, महाविद्यालय में अनिवार्य सैनिक शिक्षा की व्यवस्था की जानी चाहिए, जिससे हमारे युवक नाविक वैमानिक तथा सैनिक क्षेत्रों में निपुणता प्राप्त कर सकें।' (वीर वाणी पृ. 78)

15 जनवरी, 1961 को उन्होंने पुणे में आयोजित स्वागत समारोह में कहा था- 'मुझे राष्ट्राध्यक्ष होने की किंचित भी अभिलाषा नहीं है, फिर भी कल्पना करो कि सत्ता हस्तगत हुई और जनता ने साथ दिया तो केवल दो वर्ष के अंदर-अंदर भारत को रूस से भी प्रबल व शक्तिशाली कर दिखाऊंगा। आधुनिकता शास्त्रास्त्रों से लैस सेना से देश की शक्ति बढ□ाऊंगा, फिर यदि वैसा ही समय आया तो आवश्यकता पड□ने पर जिस प्रकार दृश्चेव ने राष्ट्रसंघ में अपना जूता हाथ में लिया था ठीक उसी प्रकार अपना बूट हाथ में लूंगा। किसी देश की धाक उसकी सैनिक क्षमता पर निर्भर करती है। दृश्चेव व रूस की धाक रूस के अणुअस्त्रों के कारण ही है।''

नायक को ऐसी ही ओजस्वी वाणी से राष्ट्र का संबोधन और मार्गदर्शन करना चाहिए। दुर्भाग्य रहा इस देश का कि कांग्रेसी सरकारों के किसी भी प्रधानमंत्री ने ऐसी ओजस्विता का प्रदर्शन कभी नहीं किया। विशेषत: नेहरूजी ने तो कभी नहीं। वह तो गांधीजी की अहिंसा के दीवाने थे इसलिए पूरे देश के लिए ही 'नि:शस्त्रीकरण' की प्रक्रिया लागू कर बैठे। उन्हें लगता था कि अहिंसा से जैसे आजादी ले ली वैसे ही देश की रक्षा भी हो जाएगी। उपरोक्त समारोह में सावरकर जी ने कहा था- 'देश स्वतंत्र हुआ किंतु आगे क्या होगा? यह प्रश्न आज हम सबके समक्ष खड□ा है। प्राप्त स्वतंत्रता की रक्षा का दायित्व देश के नवयुवकों पर है। देश के नौजवान जल सेना, थल सेना और वायुसेना में प्रयत्नत: प्रवेश करे अद्यावत शस्त्रास्त्र उपलब्ध है, उन्हें आत्मसात करें स्वयं नवीन अस्त्रों की खोज करें, भीरू या डरपोक लोग यह नहीं कर सकेंगे। हम आज नवीन कारखाने खोल रहे हैं सड□कें बना रहे हैं, परंतु राष्ट्र पर संकट के समय आधुनिकतम शस्त्रास्त्रों की ही आवश्यकता होगी। शक्तिशाली सेना है काम आएगी। हम जनतंत्र की बातें कर रहे हैं, किंतु प्रबल सेना के बिना तो जनतंत्र भी नहीं टिक पाएगा।'

कितना व्यावहारिक दृष्टिकोण था सावरकर जी का, जिस बात को वह वर्षों पूर्व समझ रहे थे, उसे गांधीजी और नेहरूजी जीवन भर नहीं समझ पाये। जब 1962 में चीन से ठोकर लगी तो फटे पांव को पकड□कर रोने लगे। अच्छा होता कि समय रहते चेत जाते और सावरकर जी की बात मान लेते। दूरदृष्टा सावरकर को नमन।

* * *